ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना प्रकाशन

वर्ष : 5, अंक : 19
अक्टूबर-दिसम्बर 2020
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

लड़कियाँ हँस रही हैं

कुमार अनुपम

लड़कियाँ हँस रही हैं
इतनी रँगीली और हल्की है उनकी हँसी
कि हँसते-हँसते
गुबारा हुई जा रही हैं लड़कियाँ
हँस रही हैं लड़कियाँ
लड़कियाँ हँस रही हैं
कि खुल-खुल पड़ते हैं बाजूबंद
पायल नदी हुई जा रही है
हार इतने लचीले और ढीले
कि शरद की रात
कि लड़कियों की बात
कि पंखों में बदल रहे हैं
सारे किवाड़, सारी खिड़कियाँ
लड़कियाँ हँस रही हैं

लड़कियाँ हँस रही हैं
इस छोर से
उस छोर तक
अँटा जा रहा है इंद्रधनुष
रोर छँटा जा रहा है
धुली जा रही है हवा
घटा चली आ रही है मचलती
तिरोहित हो रहा है
आकाश का कलुष
धरती भीज रही है उनकी हँसी में
उनकी हँसी में
फँसा जा रहा है समय
रुको
रुको चूल्हा-बर्तनो
सुई-धागो रुको
किसी प्रेमपत्र के जवाब में
उन्हें हँसने दो!

शिवना प्रकाशन जुलाई 2020 सेट की पुस्तकें

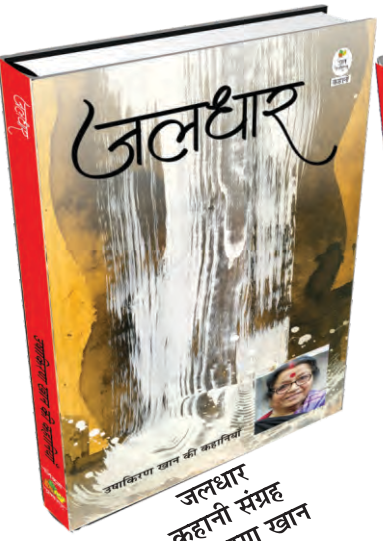

जलधार
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

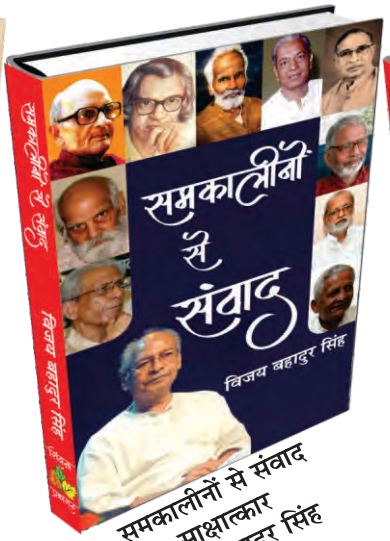

समकालीनों से संवाद
साक्षात्कार
विजय बहादुर सिंह

विमर्श दृष्टि - पंकज सुबीर की
कहानियाँ (आलोचना)
डॉ. राकेश कुमार

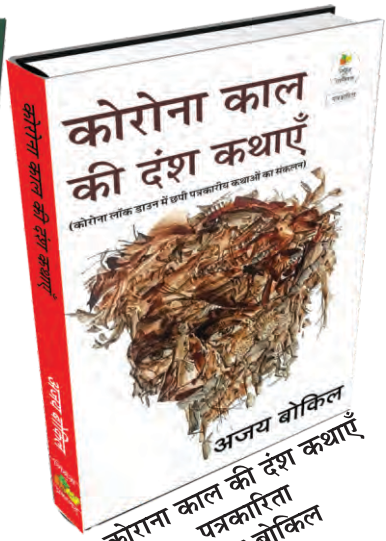

कोरोना काल की दंश कथाएँ
पत्रकारिता
अजय बोकिल

भूरी आँखें घुँघराले बाल
कहानी संग्रह
अनुपमा तिवाड़ी

काग भुसण्ड
उपन्यास
राजीव तनेजा

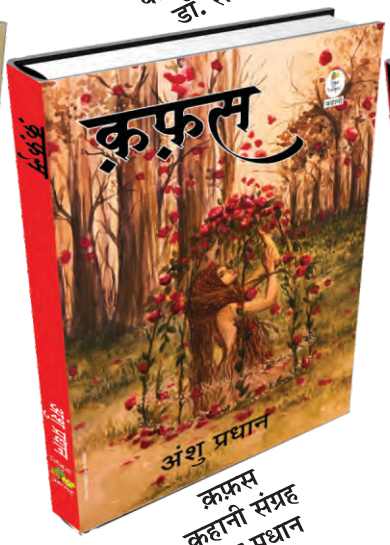

क़फ़स
कहानी संग्रह
अंशु प्रधान

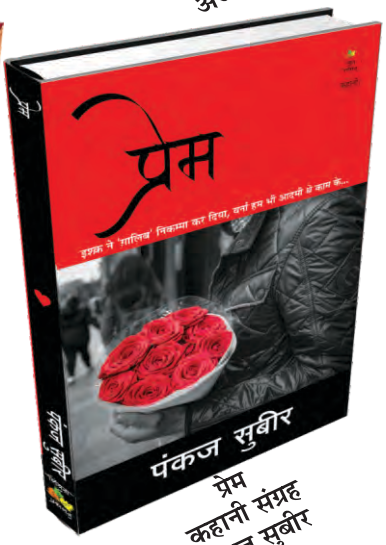

प्रेम
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

कुछ चर्चित किताबें के प्रथम पेपरबैक संस्करण

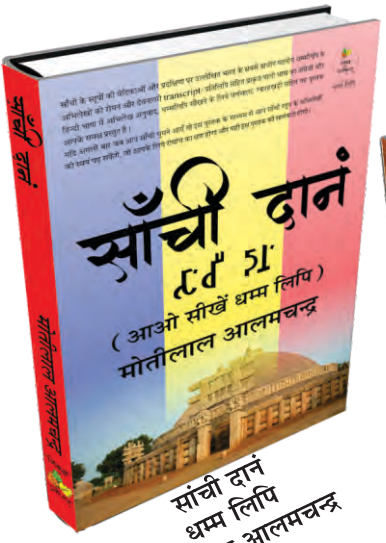

सांची दानं
धम्म लिपि
मोतीलाल आलमचन्द्र

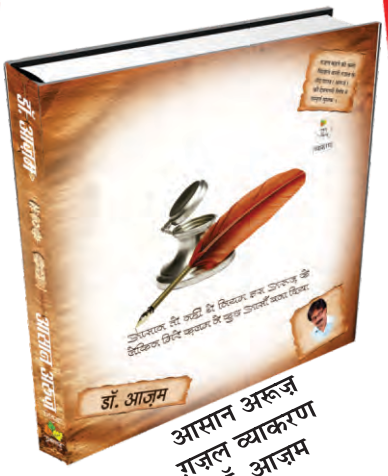

आसान अरूज़
ग़ज़ल व्याकरण
डॉ. आज़म

कसाब.गांधी एट यरवदा.इन
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

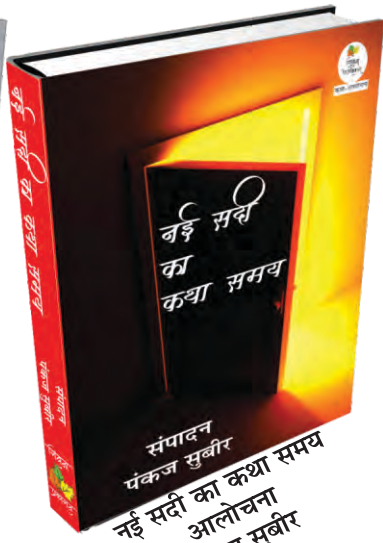

नई सदी का कथा समय
आलोचना
पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda, Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 5, अंक : 19, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2020
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

आवरण कविता
कुमार अनुपम

इस अंक में

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 5, अंक : 19
त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2020

इस अंक में

आवरण चित्र / पंकज सुबीर
आवरण कविता / कुमार अनुपम
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

किताबें जो इन दिनों पढ़ी गईं

अटकन-चटकन, स्वर्ग का अंतिम उतार, मीठे चावल
सुधा ओम ढींगरा / 13

पुस्तक समीक्षा

तिल भर जगह नहीं
डॉ. उमा मेहता / चित्रा मुद्गल / 5
पुकारता हूँ कबीर
सुनील कुमार / भरत प्रसाद / 15
ख़ुद से गुज़रते हुए
डॉ. नीलोत्पल रमेश / संगीता कुजारा टाक / 18
हँसो हँसो यार हँसो
नरेंद्र मोहन / प्रेम जनमेजय / 20
कमरा नंबर 103
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा / सुधा ओम ढींगरा / 23
मैं बंदूकें बो रहा
वेदप्रकाश अमिताभ / अशोक अंजुम / 27
कोरोना काल
दीपक गिरकर / आकाश माथुर / 33
साक्षात्कारों के आईने में
डॉ. सीमा शर्मा / डॉ. रेनू यादव / 35
शब्द गूँज
कैलाश मण्डलेकर / अरुण सातले / 37
जलती रेत पर नंगे पाँव
मनीष वैद्य / दुर्गाप्रसाद झाला / 39
बारिश तथा अन्य लघुकथाएँ
हीरालाल नागर / सुभाष नीरव / 41
अटकन-चटकन
दीपक गिरकर / वंदना अवस्थी दुबे / 43
कोशिशों की डायरी
गोविंद सेन / सोनल / 45
अम्लघात
दीपक गिरकर / सुधा ओम ढींगरा / 47
शिलावहा
अनिल प्रभा कुमार / किरण सिंह / 52
सफ़र में धूप बहुत थी
दीपक गिरकर / ज्योति ठाकुर / 54
बस कह देना कि आऊँगा
डॉ. नीलोत्पल रमेश / नंदा पाण्डेय / 63
सुबह अब होती है तथा अन्य नाटक
मधूलिका श्रीवास्तव / नीरज गोस्वामी / 65
होली
अनीता सक्सेना / पंकज सुबीर / 76
प्रेम
पारुल सिंह / पंकज सुबीर / 78

केन्द्र में पुस्तक

पुस्तक : स्वर्ग का अंतिम उतार
समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, दीपक गिरकर, डॉ. सीमा शर्मा
लेखक : लक्ष्मी शर्मा / 28
पुस्तक : खिड़कियों से झाँकती आँखें
समीक्षक : युगेश शर्मा, डॉ. लता अग्रवाल, प्रतिभा सिंह
लेखक : सुधा ओम ढींगरा / 56
पुस्तक : जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
समीक्षक : गोविंद सेन, सूर्यकांत नागर, तरसेम गुजराल
लेखक : पंकज सुबीर / 67

नई पुस्तक

जलधार / उषाकिरण खान / 19
कोरोना काल की दंश कथाएँ / अजय बोकिल / 22
वो क्या था / गीताश्री / 38
वैश्विक प्रेम कहानियाँ / सुधा ओम ढींगरा / 42
विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियाँ / डॉ. राकेश कुमार / 44
नज़रबट्टू / ज्योति जैन / 51
काग भुसण्ड / राजीव तनेजा / 55
द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए / आदित्य श्रीवास्तव / 62
भूरी आँखें घुँघराले बाल / अनुपमा तिवाड़ी / 66
क़फ़स / अंशु प्रधान / 75

संपादकीय

स्वागत है इस लौटते हुए पाठक का

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

एक समय ऐसा भी आया था जब ऐसा लगने लगा था कि अब किताबों के पाठक नहीं बचे हैं। किताबों की बिक्री अब वैसी नहीं बची है जैसी हुआ करती थी। विशेषकर हिन्दी की किताबों को लेकर तो ऐसा कहा ही जाने लगा था। मगर कोरोना काल की एक अच्छी बात यह हुई है किताबों के संदर्भ में कि किताबों के पाठक लौटते हुए दिख रहे हैं। विशेषकर ऑनलाइन पोर्टल्स पर अब पाठकों की आवाजाही से रौनक होने लगी है। चूँकि कोरोना काल के लॉकडाउन समय में यह ऑनलाइन पोर्टल्स ही किताबें ख़रीदने के लिए एकमात्र स्थान बचे हुए थे, इसलिए पाठकों का रूझान इस तरफ़ हो गया। यह बात तो भविष्य के गर्भ में है कि यह जो पाठक आया है, यह स्थायी रूप से आया है या बस कोरोना काल के चलते आया है। जो भी हो बात तो कुल मिलाकर यह है कि किताबों और पाठकों का संबंध फिर से स्थापित हो गया है। इसके पीछे केवल कोरोना ही एक कारण नहीं है। बहुत से कारण हैं। टॉकीज़ों का बंद हो जाना, टीवी पर वही घिसे-पिटे कार्यक्रम, समाचार चैनलों पर वही एकरसता, इन सब के कारण हुआ यह कि समय काटने के लिए एक बार फिर किताबों की सार्थकता सिद्ध हो गई। हालाँकि यह भी सही है कि हिन्दी में पिछले दिनों उन विधाओं को भी एक बार फिर से महत्त्व मिलना प्रारंभ हो गया, जो विधाएँ भुला दी गई थीं, मगर पाठक जिन्हें बहुत पसंद करते थे। यात्रा संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, निबंध, और ऐसी ही बहुत सी विधाएँ जो कहानी, कविता और उपन्यासों की आँधी में अपना वजूद खो बैठी थीं, उनकी भी वापसी हुई है। ज़ाहिर सी बात है कि अपनी पसंदीदा विधाओं की वापसी के स्वागत में पाठक भी लौट आया है। शिवना प्रकाशन ने कोरोना के लॉकडाउन के शिथिल होने के बाद कई महत्त्वपूर्ण किताबों का प्रकाशन किया है। और इन किताबों को पाठकों का अच्छा प्रतिसाद भी मिला है। मज़े की बात यह है कि पत्रकारिता, भाषा, निबंध जैसी विधाओं में आई हुई किताबों को अच्छा प्रतिसाद पाठकों का मिला है और ये किताबें ऑनलाइन पोर्टल्स पर बेस्ट सेलर की लिस्ट में बनी हुई हैं। उल्लेखनीय है कि ऑनलाइन पोर्टल्स पर जो बेस्ट सेलर्स की लिस्ट होती है, वह पूरी तरह से बिक्री के आधार पर ही होती है। यहाँ कोई भी ऐसा तरीक़ा नहीं है कि आप अपनी किताब को जोड़-तोड़ कर बेस्ट सेलर में ले आएँ। जितना बिकता है उतना ही यहाँ ऊपर चढ़ता है। तो बात यह हो रही थी कि यह जो लौटता हुआ पाठक है, यह हिन्दी की किताबों के लिए लाइफ लाइन की तरह आया है। असल में हुआ यह था कि हिन्दी साहित्य में पाठक को बिलकुल ही नगण्य मान लिया गया था। वह नहीं लिखा जा रहा था, जो पाठक पढ़ना पसंद करता था। उसके ऊपर वह थोपा जा रहा था, जो लेखक को पसंद था। कोरोना काल के कुछ पहले से ही कुछ लेखकों ने इस तरफ़ ध्यान दिया और पाठकों को पसंद आने वाली विधाओं में लिखा। किताबों का भरपूर स्वागत हुआ। पाठक तो चाहता ही था कि लेखक कम से कम उसे तो समझने की कोशिश करे। कोरोना काल से पहले ही पाठक की वापसी की भूमिका बन सी गई थी। कोरोना काल में तो बस यह हुआ कि उस पर मोहर लग गई। गुणग्राहक कला की किसी भी विधा के लिए सबसे आवश्यक हैं, नहीं तो उस कहावत की तरह स्थिति हो जाएगी कि जंगल में मोर नाचा किसने देखा। हिन्दी के बहुतेरे लेखक वर्षों से जंगल में ही मोर नचा रहे थे। हैरत की बात यह है कि जंगल में नचाए गए मोर को ढेरों पुरस्कार और सम्मान भी मिलते रहे। मगर समय अब बदल गया है, अब तो वह हालत हो गई है कि जंगल में भी मोर नाचेगा तो सब देख लेंगे और कह देंगे कि भाई मोर इतना अच्छा तो नहीं नाचा था कि इसे इतने पुरस्कार और सम्मान दे दिए जाएँ। मोर तो इससे अच्छा कोई दूसरा ही नाचा था जिसे आपने ध्यान देने योग्य ही नहीं समझा। साहित्य की दुनिया में यह एक प्रकार से प्रजातंत्र का आगमन है, पाठक के प्रजातंत्र का आगमन.....।

आपका ही

शहरयार

व्यंग्य चित्र- काजल कुमार kajalkumar@comic.com

पुस्तक समीक्षा

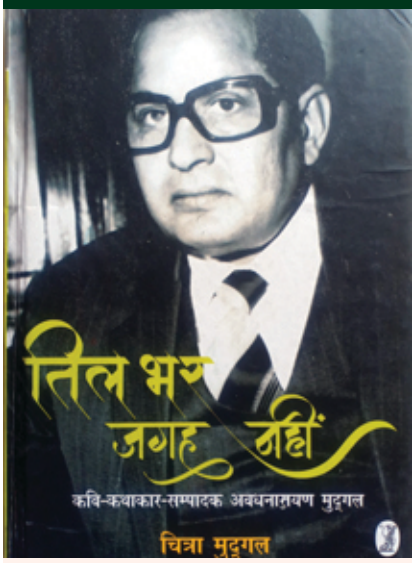

तिल भर जगह नहीं

(संस्मरण)

समीक्षक : डॉ. उमा मेहता

लेखक : चित्रा मुद्गल

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. उमा मेहता
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
एम.पी. शाह आर्ट्स एन्ड सायन्स
कॉलेज, सुरेन्द्रनगर-363001 गुजरात
मोबाइल- 9429647368

चित्रा मुद्गल जी द्वारा रचित संस्मरण 'तिल भर जगह नहीं' कवि, कथाकार और संपादक अवधनारायण मुद्गल के जीवन संघर्षों की परतें खोलता हैं। 'तिल भर जगह नहीं' किताब की शुरूआत में चित्रा मुद्गल जी ने अवध जी का परिचय दिया गया हैं, फिर कुल नौ भागों में अवधनारायण मुद्गल जी के विविध आयामों को उजागर किया है। अंत में उपसंहार और फोटो एलबम के द्वारा कुछ संवेदनशील पलों को सहेजकर पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अवधनारायण मद्गल के जीवन को बहुत करीब से देख, परख और समझ कर बड़ी सूक्ष्मता से उनके जीवन के विभिन्न प्रसंगों को, उनकी विशेषताओं को, उनके साहित्यिक जीवन को, संपादन कार्य की ज़िम्मेदारियों को, खिलंदड़ेपन को, पढ़ाई के लिए किए गए संघर्षों को चित्रा मुद्गल जी के अलावा किसी ओर के द्वारा इन्हें सहेज पाना संभव नहीं था। क्योंकि पत्नी पति की हर विशेषता व कमजोरी से परिचित होती है, अत: चित्रा जी ने जिस बारीक अवलोकन क्षमता के माध्यम से उनके प्रेम और संवेदनशीलता को महसूस कर बड़ी प्रामाणिकता से उकेरा है, वह क़ाबिले-तारिफ़ है। फिर भी इस किताब के आरंभ में चित्रा जी बड़ी स्वाभाविकता से स्वीकार करती हैं कि – 'तुमको समेट पाना एक बँधे-बँधाए खाँचे में... सम्भव है मेरे लिए!' किन्तु 'तिल भर जगह नहीं' किताब को पूर्ण करने पर पता चलता है कि लेखिका ने अवध जी के संपूर्ण जीवन संधर्ष की महागाथा को समेटने का भरसक प्रयास किया है और वह उसमें सफ़ल भी हुई हैं।

इस संस्मरण की भूमिका में चित्रा जी अवधनारायण मुद्गल की कविता 'नाग यज्ञ और मैं' के विशेष संदर्भ को देखते हुए उदास हो जाती हैं। चित्रा जी सहृदयी बनकर अवध जी की पीड़ा का मंथन करते हुए लिखती हैं कि 'कहीं यह कविता उनकी निजी आत्मपीड़ा और विदीर्ण कर देने वाले जीवन संघर्ष की पराकाष्ठा से उपजी वह बेचैनी और तड़प की परिणति तो नहीं है जो चाहती थी जीवन में मुट्ठी-भर सुकून पाने के लिए तिल भर जगह, जहाँ वह अपना हवनकुण्ड स्थापित कर सके! जी सके जीवन को उस तरह से जिस तरह से जीने के आकांक्षी थे वे।' दरअसल अवध नारायण मुद्गल समस्याओं और संघर्ष के जिन खाँचे में 'फिट' बैठ गए थे, वहाँ से अपनी ज़िम्मेदारियों के चलते अपने स्थान से तिल भर भी खिसक पाना मुमकिन नहीं था। अत: चित्रा जी ने इस किताब का शीर्षक 'तिल भर जगह नहीं' रखा है, वह अवध जी और उनके जीवन को केंद्र में रखते हुए बिल्कुल विषयानुकूल, निश्चयबोधक व सार्थक है। चित्रा जी भाव के ताने-बाने बुनने में सिद्धहस्त हैं, अत: भाव को केन्द्र में रखकर चिंतनात्मक शैली में सहज, सरल, निष्पक्ष ढंग से अवध जी के जीवन के हर मोड़ को करीब से देखकर आलेखित

करते हैं। कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप से अवध जी के उदात्त व्यक्तित्व के हर पक्ष को उद्घाटित किया हैं। भाषा की स्वाभाविकता ध्यानाकर्षक है।

चित्रा जी ने अवध जी के व्यक्तित्व के विभिन्न रूप बड़ी सहजता से उजागर किए हैं। पति के रुप में, प्रेमी के रूप में, पिता के रूप में, एक सामाजिक का रूप, सम्पादक के रूप में, कवि के रूप में उनके व्यक्तित्व के प्रत्येक पक्ष को बिना चूके तटस्थ भाव से अभिव्यक्त किया है। बिना किसी लाग-लपेट के जीवन-संघर्षों को यथार्थ की भूमि पर उतारा है। जो अपने आप में कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। यहाँ लेखक की प्रामाणिकता व सच्चाई से पाठकों का सामना होता है, जो सही को सही और ग़लत को ग़लत कहने का साहस रखता हैं। फिर चाहे वह उसका अपना ही क्यों न हो! यहाँ चित्रा जी ने अवध जी के जीवन के न मात्र गुण वरन् उनकी ग़लतियाँ और भूलों का वर्णन भी उसी नैतिकता से किया है। अवध जी का अपनी गलतियों को स्वीकार करना और चित्रा जी का एक सुलझी हुई पत्नी की तरह अवध जी को उनकी ग़लतियों का आईना दिखा कर उन्हें माफ़ कर देना सचमुच रोमांचक व प्रेरणादायी प्रसंग हैं।

अवध नारायण मुद्गल एनमपुरा गाँव, पोस्ट बाह, जिला आगरा में पंडित गणेश प्रसाद मुद्गल और श्रीमती पार्वती देवी के पुत्र के रूप में २८ फरवरी १९३६ में जन्मे थे। जबकि स्कूल में उनके अध्यापक ने उनकी जन्मतिथि १ जुलाई १९३६ लिखी हैं। इस तरह चित्रा जी अवध नारायण जी की वास्तविक जन्मतिथि से भी पाठकों को अवगत करा देती हैं, ताकि आगे चलकर उनकी इन दोनों जन्म तिथियों को लेकर भ्रांति ना रहे। चित्रा जी ने अवध जी के बचपन की शरारातों का और उनके खिलंदड़ेपन का वर्णन किया है, अवध जी ने बचपन में सहपाठियों के उकसाने पर प्रधानाध्यापक को छेड़ दिया की 'ले कपना, लेमन चूस ले।' तब प्रधानाध्यापक ने अवध जी की जमकर पिटाई की। रोते चिल्लाते अवध जी को बचपन में ही यह शिक्षा मिल गई कि अपने से बड़ों का आदर करना चाहिए। उनके साथ शरारत कर उनका अपमान नहीं करना चाहिए। इसके बाद अवध जी के मन में अपने प्रधानाध्यापक के लिए मान और बढ़ गया और अपने घर के सभी छोटे-बड़े प्रसंगों में वह उन्हें निमंत्रित करने लगे। अवध नारायण के पिताजी चाहते थे कि वह पढ़ाई में भी आगे बढ़े और साथ-साथ खेती बारी में भी अपना मन लगाए। किंतु अवध जी का खेती बारी के कामों में मन न लगा तो नहीं लगा। जान-बूझकर वह गठरियों को गिरा देते ताकि दुबारा उन्हें काम सौंपा न जाए।

अवध नारायण जी गाँव के निर्दोष बच्चों की बातें बड़े रस से सुनाया करते थे, उन प्रसंगों को भी चित्रा मुद्गल जी ने बड़े रसप्रद रूप से उभारा है। अवध जी के बड़े भाई श्याम बिहारी मुद्गल पर कबड्डी खेलते वक्त पीपल वाले भूत बाबा का उन पर सवार होने का अंधविश्वास से भरपूर मज़ेदार प्रसंग निरूपित किया है। शरारती अवध जी के बचपन के मार्मिक प्रसंग भी इस किताब में क़ैद करने का चित्रा जी ने सार्थक प्रयास किया हैं – एक दिन चूहे के काटने पर अवध जी ने घर के सभी लोगों को बताया कि उन्हें साँप ने काट लिया है। इसका ज़हर तब तक नहीं उतरेगा जब तक पूरे गाँव के लोगों को खाना न खिलाया जाए। फिर क्या था गाँव के लोगों को खाना खिलाया गया, लेकिन इस पर घर की माली हालत और ख़राब हो गई। तब कहीं जाकर उन्हें अपनी भूल का पता चला। इसके अलावा गाँव के अखाड़ा में कुश्ती लड़ने का भी प्रसंग है। इस प्रकार गंभीर व्यक्तित्व के धनी अवध जी बचपन में शरारती और खिलंदड़े स्वभाव के थे। अवध जी बचपन के इन विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से अनुभवों की शिक्षा हासिल करते चले गए, इन अनुभवों ने उनके जीवन को गढ़ने का काम किया क्योंकि अनुभव से बड़ी और कोई शिक्षा नहीं होती।

अवध जी तीन भाई और एक बहन में सबसे छोटे थे। बहन शरबती मुद्गल, श्याम बिहारी मुद्गल, राजनाथ मुद्गल और सबसे छोटे अवध नारायण मुद्गल। इनमें मंजले भैया राजनारायण मुद्गल का १६ साल की उम्र में ही डबल निमोनिया की वजह से असामयिक निधन हो गया था। बाकी बचे बड़े भाई श्याम बिहारी मुद्गल और अवध नारायण मुद्गल। बड़े भैया किसी के भी बहकावे में आकर अवध जी को कभी भी पीट देते थे। अवध जी होलीपुरा में 'दामोदर मेमोरियल कॉलेज' में पढ़ते थे, तब छुट्टी के समय वह अपने पिताजी के पास पुराकनेरा पहुँच जाते। शनि-रवि जब वह पिता के पास पहुँचे तो पिता गाँव गए हुए थे। गणेश प्रसाद मुद्गल कनेरा में सब पोस्ट मास्टर थे, जो उनके गाँव से दो-चार कोस की दूरी पर था। उनके मित्रों ने मिलकर ठंडाई और भंग भवानी का कार्यक्रम बना लिया। सबके साथ साथ अवध जी ने भी भंग पी ली। भंग पी तो इतनी चढ़ी कि उन्हें अपनी स्थिति का भान ही न रहा। पिता के बेतहाशा पीटने पर भी उन्हें पता न चला। तब जाकर पिता को पता चला कि भंग अधिक चढ़ गई थी। नींबू अचार चटाकर भंग उतारने के प्रयास किए गए, पर भंग न उतरी। तीन दिन तक अवध नारायण को होश न आया, बाकी मित्र तो उन्हें कब के छोड़ कर चले गए थे। तब जाकर अवध जी ने निर्णय किया कि भविष्य में अब कभी भंग न पिएँगे।

अवध जी ने संस्कृत प्रथमा, विशारद, और उत्तमा पास कर ली थी, यह उनकी अध्ययनशीलता ही प्रदर्शित करती है। दसवीं कक्षा तक कोई दिक्कत नहीं आई। फिर ग्यारहवीं के लिए विज्ञान की पढ़ाई के लिए बाह तहसील में कोई व्यवस्था नहीं थी। इसलिए आगरा में ही फिज़िक्स और कैमिस्ट्री विषय के साथ राजपूत कॉलेज में प्रवेश लिया। परिवार के लोग चाहते थे कि अवध जी इंजीनियर बनें। लेकिन वहाँ जाकर सिनेमा देखने का शौक इतनी हद तक बढ़ा कि उन्होंने फीस के पैसे भी सिनेमा को देखने में लगा दिए। फीस न भरने की वजह से पहले वर्ष का परिणाम रोक दिया गया, तब परिवार के लोगों ने फेल समझ कर उन्हें घर पर ही बिठा दिया। लेकिन अवध नारायण अपने स्वभाव के चलते घर बैठने वालों में से नहीं थे। चित्रा जी ने लिखा है कि अवध नारायण ने अपने एक साक्षात्कार में अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा है-'व्यक्ति जब कुछ ठान लेता है तो

वह स्वयं को बदलने की कोशिश करता है। बेचैन अवध घर में ना बैठ सके।' बाह के एक कमरे में रहकर ट्यूशन पढ़ाने लगे। किंतु मित्रों के उकसावे में आकर यहाँ रहकर सिनेमा देखने के शौक पर नियंत्रण लगाया तो कुश्ती के नए शौक ने जन्म लिया। इससे हुआ यूँ कि ट्यूशन के सारे पैसे कुश्ती की भेंट चढ़ जाते और मित्रों के खाने-पीने का खर्च भी उदार मना अवध नारायण ही उठाते। मेले में जाते। मेले में अपने साथियों के साथ फिल्में न देखने के प्रण को फिर से तोड़ दिया। बाह में अपने साथियों के साथ अड्डे बाज़ी को देखकर घरवाले फिर से चिंता करने लगे। सोचने लगे कि यह लड़का अब पढ़ाई नहीं करेगा। अत: इसे खेती बारी में ही लगा दिया जाना चाहिए। बड़े भैया उसे किसी तरह बाह से गाँव वापस ले आए। हल चलाना, बुवाई-कटाई करना इत्यादि मन से विपरीत खेती के कामों में अवध नारायण का मन बिलकुल न लगा।

अवध नारायण अब पछताने लगे कि समय व्यतित किए बिना उन्हें पढ़ाई फिर से शुरू करनी चाहिए। दृढ़ निश्चय किया कि पढ़ाई पूरी करेंगे। उनकी बात सुनकर घर के लोग नाराज़ हो गए। उन्होंने अवध नारायण पर ज़बरदस्ती शुरू कर दी। बेटे को कमरे में बंद कर दिया गया और आवश्यकताओं को छोड़कर कमरा खोला जाता। यह सब देखकर उनकी माँ बहुत दुखी होती। एक शाम पाखाने जाने के बहाने अवध नारायण ने अपने घर को छोड़ दिया। इटावा जाने के लिए आख़िरी बस जा चुकी थी। जेब में आठ आने, पैरों में रबड़ सोल वाली चप्पलें दो चीज़ ही साथ थीं और कुछ नहीं था। यहाँ रुकना ख़तरनाक था, इसलिए इटावा जाने के लिए पैदल ही चल पड़े। चल पड़े तो जीवन के अलग-अलग पड़ाव आते गए जो उनके जीवन संघर्षों को और समस्याओं को उजागर करते हैं। जिन्हें लेखिका ने इस किताब में प्रस्थान-१ में इटावा से कानपुर और फिर कानपुर से लखनऊ तक के सफ़र के पड़वों को साझा किया हैं। इस सफ़र ने उनमें साहित्यिक माहौल की नींव डालने का कार्य किया। इटावा जहाँ से शुरू होता है, वहीं एक मंदिर में अवध नारायण रुके। शाम तक वहीं बैठे रहने पर वहाँ के पुजारी के पूछने पर अवध नारायण ने सब बता दिया कि वह पढ़ने के लिए बनारस जाना चाहते हैं। लेकिन बनारस जाने के लिए पास में पैसे तो थे नहीं। पुजारी ने उन्हें स्थानीय वकील दीक्षित के यहाँ भागवत सप्ताह का काम दिलवा दिया। इससे पहले भी अवध जी ने यादव परिवार में कानपुर में भागवत सप्ताह किया था। दीक्षित जी के यहाँ भागवत सप्ताह पर खूब चढ़ावा मिला। सोने की बालियाँ भी और चाँदी का कुछ सामान भी मिला। फिर वहाँ से पुजारी जी के आशीर्वाद लेकर करहल में अपनी बहन और जीजा से मिलकर बनारस जाने के लिए निकल पड़े। जीजा जी के कहने पर कानपुर के किसी विद्यालय में स्वामी ने अवध जी की नि:शुल्क पढ़ाई की व्यवस्था करवा दी। कानपुर बिहारी जी के मंदिर में पहुँच कर स्वामी जी को अपने साथ घटी समग्र घटना व प्रसंग कह सुनाए। स्वामी जी की सहायता से उन्होंने 'बलदेव सहाय संस्कृत महाविद्यालय' में प्रवेश पा लिया। गुरुजी से संपूर्ण मध्यमा पूर्ण करने की इच्छा व्यक्त की, जो आसान काम न था। गुरु जी ने संपूर्ण मध्यमा में प्रवेश पाने से पहले 'रघुवंश' की परीक्षा रखी। उस में उत्तीर्ण होने पर ही अवध जी को संपूर्ण मध्यमा में प्रवेश मिलेगा। मन के पक्के अवध जी ने कठोर परिश्रम से वह परीक्षा पास कर संपूर्ण मध्यमा में प्रवेश पा लिया। विलक्षण स्मृति के धनी अवध जी ने मध्यमा की परीक्षा संस्कृत माध्यम से द्वितीय श्रेणी में पास की। वहाँ उनके रहने व खाने-पीने की व्यवस्था भी हो ही गई थी। बाद में एकाग्र चित्त से साहित्य से शास्त्री करने का मन बना लिया।

उसी दौरान पिताजी अवध जी को लेने आ जाते हैं, गुरुजी से पिता की बातचीत हुई। बहला कर अवध जी को गाँव लाया गया, लेकिन यहाँ आकर पिताजी ने तो उन्हें घर के कमरे में बंद कर दिया। अवध नारायण को अपनी पढ़ाई पूर्ण करनी थी। कमरे से बाहर निकलने की तरकीब सोचने लगे। वह कमरे में चिल्लाने लगे कि अम्मा साँप आ गया। जैसे ही कमरा खुला तो बाहर निकाल कर माँ ने उन्हें खिलाया पिलाया। पिता की अनुपस्थिति में अवध नारायण फिर गाँव से इटावा और इटावा से कानपुर चले आए। कानपुर पहुँच कर स्वामी जी और गुरु जी से सारी कटु परिस्थितियों का उन्होंने वर्णन किया। गुरु जी उनके पिता के इस व्यवहार से नाखुश हुए। वह सोचने लगे कि बेटा इतना प्रतिभाशाली है, पढ़ना चाहता है, फिर भी उसके पिता उसे पढ़ाना क्यों नहीं चाहते? जबकि यहाँ अवध को कोई खर्चा भी तो नहीं करना है। अवध जी पहले की भाँति विद्यालय में रहकर पढ़ाई करने लगे। अवध जी शास्त्री में भी पास हो गए। फिर इंटरमीडिएट में भी द्वितीय श्रेणी से पास हो गए। साथ में कुछ ट्यूशन भी किए। अवध जी की इस लगन को देखकर गुरु जी खुश हुए। आगे संस्कृत में आचार्य न करके लखनऊ जाकर बी.ए. करने की इच्छा गुरुजी से व्यक्त की। इस संदर्भ में उनके मित्र शरद नागर जो अमृतलाल नागर के पुत्र थे, उन्होंने सारी व्यवस्था कर दी थी। अवध नारायण के संबंध अमृतलाल नागर से गहरे व पारिवारिक थे। वह अमृतलाल नागर को बाबूजी कहकर पुकारते थे। अवध जी अमृतलाल नागर का पत्र पाकर लखनऊ पढ़ाई के लिए चले आए। यहाँ उनके लिए रहने की, खाने पीने की व ट्यूशन की व्यवस्था करवा दी। ताकि ट्यूशन करने पर वह अपना खर्च स्वयं चला सके। अवध नारायण ने वहाँ बी.ए टेक्नोलॉजी, हिंदी, सोशल साइंस और जनरल इंग्लिश से किया। फिर एम.ए.भी कर लिया। तब तक अवध नारायण का परिचय अन्य लोगों तक भी बढ़ने लगा। उनके चार मित्रों में शरद नागर, रामजीदास गुप्त, डॉ. रामविलास शर्मा का पुत्र विजय और मदनलाल गुप्त का समावेश होता है, जिनका ज़िक्र वह अक्सर किया करते थे। यहाँ रहकर पीएॅच.डी. के नोट्स बनाने का काम लिया गया, जिससे उन्हें साठ रुपए मिल जाते थे। फिर 'कंचना' रेस्टोरेंट के मालिक पंडित रामनारायण शुक्ल से उनका परिचय हुआ। हिन्दी फ़ोटोग्राफ्स के मालिक रमेश गुप्त के संपर्क में भी आए। 'कंचना' ग्रुप के लोगों को अवध जी की कविताएँ बहुत पसंद आया करती थी।विष्णु

त्रिपाठी और दिवाकर तो कवि सम्मेलनों में भी जाया करते थे। दिवाकर के कहने पर अवध जी भी कवि सम्मेलनों में रचना पाठ कर आते। यहाँ चित्रा मुद्गल जी स्पष्ट करते चलते है कि-"साहित्यिक संस्कार अवध को अपने परिवार से नहीं मिले। उनके परिवार में तब साहित्य से नाता रखने वाला दूर-दूर तक नहीं था। यह संस्कार उन्हें बाहर के परिवेश से मिला। हालाँकि कविताएँ पढ़ने का शौक़ अवध को प्रारम्भ से था। उनके लेखन की शुरूआत कविता से ही हुई।....लखनऊ पहुँचकर उनका साहित्यकार स्वरूप विकसित हुआ।"

लखनऊ में १९५८ से १९६० तक अमृतलाल नागर जी के सहयोगी रहे। यहाँ उन्हें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, ठाकुर प्रसाद सिंह और लखनऊ विश्वविद्यालय की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. तेजी गुप्त से परिचय हुआ। ठाकुर प्रसाद सिंह ने हिन्दी समिति में किताबों के प्रकाशन में संपादक मंडल में उन्हें रख लिया। चित्रा जी लिखती हैं कि- वह अवध नारायण की पहली नौकरी थी, जिससे उनका आर्थिक पक्ष मज़बूत हुआ। अवध जी कवि कमलेश के साथ किराए के कमरे में रहने लगे। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना भी उन्हें कभी कभार रेडियो पर काव्य पाठ के लिए बुला लेते थे। यहीं से एक तरह से उनके साहित्यिक जीवन का सफ़र शुरू होता है, जो निरंतर चलता रहता है। यह एक तरह से प्रस्थान ही तो है। इन्हीं दिनों हिन्दी समिति छोड़कर शिव वर्मा के संपर्क में आए और सन् १९६१ में 'जनयुग' में काम किया। बाद में शिव वर्मा के कहने पर यशपाल के घर उन्हें किताबें पढ़कर सुनाना, डिक्टेशन लेना, पत्रों के उत्तर लिख कर देना इत्यादि काम करते थे। क्योंकि यशपाल को मोतियाबिंद होने की वजह से उन्हें पढ़ने लिखने में दिक्कतें महसूस होती थीं। इस दौरान अवध जी का वीर राजा, श्री लाल शुक्ल और कुँवर नारायण के साथ मिलना हुआ और उनसे घनिष्ठता भी हो गयी। लखनऊ में 'कंचना' और 'बंटूश' के अलावा कुँवर नारायण और मुद्राराक्षस के घर पर भी साहित्यिक गोष्ठियाँ होती और साहित्यिक मुद्दों पर जो चर्चा होती उसकी प्रतिध्वनि अन्य साहित्यकारों तक भी पहुँचती। इन सब में अवध जी उपस्थित रहते थे।

प्रस्थान-२: लखनऊ से मुम्बई पहुँच कर साहित्यिक पत्रिका 'सारिका' के उप संपादक बनने के बाद साहित्य में पूरे आकंठ डूब गए। 'सारिका' में तकरीबन २६ साल तक काम करके बतौर उप-संपादक और फिर संपादक के रूप में उन्होंने एक नए ही युग का प्रतिनिधित्व किया। लखनऊ से मुंबई आकर उनका परिचय धर्मवीर भारती से हुआ। अब तक उनकी प्रथम कहानी '...और कुत्ता मान गया' 'धर्मयुग' में प्रकाशित हो गई थी। इसी वजह से वह धर्मवीर भारती के संपर्क में आए।

हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेज़ी के ज्ञाता अवध नारायण चंद्रगुप्त विद्यालंकार के संपर्क में आए जो उस वक्त 'सारिका' के संपादक थे। सन् १९६४ में अवध नारायण परीक्षा और इंटरव्यू देकर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की पत्रिका 'सारिका' के उप- संपादक नियुक्त किए गए। इस तरह अवध नारायण लखनऊ से मुंबई पहुँच गए। छह महीने बाद अवध की मुलाकात चित्रा ठाकुर अर्थात् चित्रा मुद्गल से हुई। जो मुंबई विश्वविद्यालय की के. जे. सोमैया कॉलेज की छात्रा थी। चित्रा जी अपने गुरु अनंत राम त्रिपाठी की प्रेरणा से अपनी रचना 'सारिका' के उप- संपादक को देने के लिए जाती हैं, वहाँ उनसे अवध जी की पहली मुलाकात होती हैं। फिर दोनों के बीच घनिष्ठता बढ़ती गई और सन् १९६५ में दोनों ने विवाह कर लिया। इस दौरान उन्हें मुंबई से दिल्ली आना पड़ता है, परिस्थितियों वश उन दोनों को सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजेंद्र यादव और मन्नू भंड़ारी के घर कुछ दिनों रहना पड़ा। इस विवाह से नाराज़ चित्रा जी के पिता के आश्वस्त करने पर वह दोनों मुंबई लौट आए। चित्रा जी ने यह भी खुलकर स्वीकार किया है कि 'उनके पिताजी ने चित्रा और अवध को अलग करने के भरसक प्रयास किए, किंतु यह संभव न हो सका।' यहाँ चित्रा जी की हिम्मत और साहस के दर्शन होते हैं, एक सशक्त स्त्री से पाठकों का परिचय होता हैं। यहीं माण्डुप में रहते हुए ही सन् १९६६ में बेटा राजीव का जन्म हुआ और १९६९ में बेटी अपर्णा का। आज बेटा फ़िल्म मेकर और एनिमेशन विशेषज्ञ है। बेटे राजीव का विवाह प्रख्यात पटकथा लेखक और 'फ़िल्म इंडस्ट्री जर्नल' के एडिटर शब्द कुमार जी की बेटी शैली से हुआ। राजीव और शैली को पुत्र शाश्वत और दो जुड़वा पुत्रियाँ अनघा और आद्या है। बेटी अपर्णा का विवाह प्रख्यात कथाकार मृदुला गर्ग के छोटे बेटे शशांक से हुआ। किंतु दु:खद बात है कि सन् १९९३ में वह दोनों एक दुर्घटना में नहीं रहे। सन् १९७२ से १९७७ तक अवध जी पत्रकार कॉलोनी में पूरे परिवार के साथ रहे।

अचानक 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' ने 'सारिका' को दिल्ली स्थानांतरित करने का निर्णय लिया। अत: १९७८ में अवध जी दिल्ली पहुँचे। यहाँ दिल्ली में रहकर अवध जी ने 'सारिका' के विभिन्न विशेषांक निकालकर निरंतर 'सारिका' को ऊपर उठाने की कोशिश की। 'सारिका' के पाठकों की संख्या अन्य पत्रिकाओं की तुलना में सबसे अधिक थी। इसके लिए अवध नारायण की दिल से काम करने की इच्छा ही कारण भूत रही है। इसी क्रम में दिल्ली में मार्च १९८५ में उन्हें संपादक बना दिया गया। सन् १९९० के दिसम्बर तक यह काम चला। अवध जी को 'सारिका' में उप- संपादक से मुख्य उप-संपादक, सहायक संपादक और 'सारिका' का स्वतंत्र प्रभार भी सौंप दिया गया। अंत में मार्च १९८५ में संपादक बना दिए गए। 'सारिका' में यह उनकी यात्रा रही है। इस प्रकार अवध जी सन् १९६४ से १९९० तक पूरे २६ वर्ष 'सारिका' को समर्पित रहे। चंद्रगुप्त विद्यालंकार, कमलेश्वर और कन्हैया लाल नंदन इन तीनों संपादकों के साथ काम किया और अंत में खुद संपादक भी बने। किंतु इस दौरान किसी अन्य पत्रिका में वह नहीं गए। चित्रा जी उनके समर्पित व्यक्तित्व और काम के प्रति लगन के संदर्भ में कहती हैं कि 'अगर मैं ग़लत नहीं हूँ तो साहित्य पत्रकारिता के इतिहास में अवध एक मिसाल है।' इस प्रकार अवध नारायण मुद्गल जी के संपादकत्व में 'सारिका' का खूब प्रसार हुआ और यह काम उन्होंने पूरी

लगन और मेहनत से किया। 'सारिका' से मुक्त होकर उन्होंने 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस' से प्रकाशित 'छाया मयूर' वार्षिकी का संपादन संभाला।

अवध नारायण मुद्गल डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' को अपना कवि गुरु मानते थे। स्कूल के दिनों से ही अवध जी रामगोपाल शर्मा के व्यक्तित्व एवं उनकी कविताओं से बहुत प्रभावित थे। उनके साहित्यिक जीवन की शुरूआत कविता से ही हुई। शुरूआत में लिखी बहुत सारी कविताएँ और सौ चतुष्पदियाँ अर्थात् सोनेट कहीं प्रकाशित नहीं हुए। ऊपर से कहीं छूट गए। उनकी पहली कविता सन् १९५३ में आगरा से लघु पत्रिका में प्रकाशित हुई। कालांतर में अवध जी ने कहानियाँ लिखना भी शुरू किया। किंतु शुरूआती दौर की कहानियाँ उन्हें संतोषप्रद न लगने के कारण दो से तीन दर्जन कहानियाँ लिखकर नष्ट कर दी थीं। सन् १९६१ में 'दस्तकें' और 'बेतुका आदमी' कहानियाँ लिखी गईं। सन् १९६२ में प्रकाशित कहानी ' ...और कुत्ता मान गया' को 'धर्मयुग' के पाठकों द्वारा खूब प्रसिद्धि प्राप्त हुई। एक संयोग यह भी हैं कि 'बेतुका आदमी' कहानी सन् १९६३ में 'निहारिका' में प्रकाशित हुई, जबकि वह लिखी गई थी ' ...और कुत्ता मान गया' से पहले और 'दस्तकें' की रचना 'बेतुका आदमी' से भी पहले हुई लेकिन इसका प्रकाशन वर्ष 'बेतुका आदमी' से बाद का है। कायदे से उनकी पहली कहानी 'दस्तकें' ही मानी जाएगी, भले ही उसका प्रकाशन बाद में हुआ हो। इस प्रकार अवध नारायण मुद्गल जी कहानी लेखन की ओर अग्रसर हुए। इसके बाद 'कबन्ध', 'पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर', 'टूटी हुई बैसाखियाँ', 'रिटायर अफ़सर', 'शताब्दियों के बीच', 'सम्पाती', 'चक्रवात', 'गन्धों के साए','आवाज़ों का म्यूज़ियम' इत्यादि अधिकतर रचनाएँ मुंबई में लिखी गईं। 'कबन्ध', 'सम्पाती' और 'बेतुका आदमी' की विषयगत और शिल्पगत समीक्षा करके चित्रा जी ने पाठकों को इन कहानियों के उद्देश्य से परिचित करवाया है। 'सम्पाती' मिथकीय प्रतीक को लेकर चलती है, जो १९७१ में प्रकाशित हुई थी, तो 'कबन्ध' बिना सिर वाले धड़ वाला आदमी है, जो दिल से काम नहीं ले पाता मात्र उसका धड़ ही काम करता है। यह कहानी सन १९७२ में प्रकाशित हुई थी। 'चक्रवात' अनाथ बच्चों की समस्या को उजागर करती कहानी है। जिस पर चित्रा जी ने विस्तार से आलोचना कर इस कहानी की समस्या को उधेड़ा है। प्रकाशन के क्रम में कुछ कहानियाँ 'पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर', 'टूटी हुई बैसाखियाँ', 'गन्धों के साए', 'रिटायर अफ़सर', 'शताब्दियों के बीच', 'सम्पाती', 'कबन्ध', 'चक्रवात', 'एक एहसास शताब्दियों पहले का', 'अँधेरे से अँधेरे तक', 'आतंक के बीच उभरती शक्लें', 'राजनीति की शवयात्रा', 'परिवर्तनवादियों के बीच', 'अन्धे सूरज का अनुशासन', और 'जून की एक शाम' का समावेश होता है। उनकी कुछ रचनाओं में 'अकहानी' का स्पर्श भी नज़र आता है। अवध नारायण जी गाँव में रहे हैं, फिर भी उनकी कहानियों में कहीं भी किसान जीवन नहीं मिलता 'नॉस्टैल्जिया' नज़र आता है। शहर में रहते हुए मध्यमवर्गीय शहर की स्थितियाँ व उनके कुंठाग्रस्त चरित्र ही नज़र आते हैं। कस्बे से मुंबई पहुँचने वाले अवध नारायण के अनुभव जगत् का विस्तार होता है। उनका यही अनुभव जगत् कहीं ना कहीं उनकी कहानियों में स्पष्ट नजर आता है। उनकी कहानी 'टूटी हुई बैसाखियाँ' मदन के ऊहापोह को व्यक्त करके बताती है कि ठंडे व मुर्दा संबंधों को जबरन बनाए रखने वाली भावुकता का अंत होना चाहिए। 'गन्धों के साए' चरित्रों के मनोविज्ञान को खोलती है। 'रिटायर अफ़सर' भी मन:स्थितियों को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानी है। अवध जी ने 'शताब्दियों के बीच' उपन्यास को ही कहानी का रूप दे दिया है। यह कहानी 'इंडियन लिटरेचर' में अंग्रेजी में अनूदित होकर प्रकाशित हुई, तब पाठकों द्वारा इस कहानी को खूब सराहा गया।

जीवन संघर्ष और विभिन्न परिस्थितियों की मार की वजह से उनके कथा लेखन में बार-बार अंतराल आ जाता है। इसीलिए उनकी रचनाएँ क्रमश: न आकर अंतराल के बाद आती नज़र आती हैं। चित्रा जी अपराध-बोध महसूस करती हैं "कहते हुए अपराध-बोध से मुक्त नहीं हो पा रही हूँ कि कतिपय कामकाजी दबावों से बचे रहते तो अवध हिन्दी कहानी में एक क्लासिक पहचान अवश्य बन जाते। हालाँकि विशिष्टताओं के चलते उनकी रचनात्मकता का मूल्यांकन जिस दृष्टि से हिन्दी आलोचना में मूल्यांकन की माँग करता है, उस पर ग़ौर किया जाना ज़रूरी लगता है। यह भी सर्वविदित है कि अवधनारायण मुद्गल ने अपने कुछेक समकालीनों की तरह अपनी रचनात्मकता की पक्षधरता में कोई हवा नहीं चलायी। जबकि उनके लिए ऐसा कर पाना कोई मुश्किल काम नहीं था। पत्रिका के रूप में उनके पास हमेशा एक सशक्त मंच मौजूद रहा। लेकिन उसका उपयोग उन्होंने अपनी सृजनात्मकता को रेखांकित करने की बजाय हिन्दी साहित्य की युवा पीढ़ी को खड़ा करने में किया।" अवध नारायण मुद्गल ने 'सारिका' के माध्यम से लघुकथाओं के विशेषांक निकाल कर उन लघुकथाकारों के नाम पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर छाप कर लघुकथा के विकास में और उसे पुनर्जीवित करने में अपना योगदान दिया। उन्होंने भी न सिर्फ लघुकथाएँ लिखी हैं, बल्कि लघुकथाओं पर आलोचना भी लिखी। उनकी प्रमुख लघुकथाओं में 'पीले पत्ते: मुरझाये गुलाबों की गन्ध', 'कुतुब की छत से', 'सिसीपस', 'प्रमथ्यु', 'सावित्री नंबर तीन' और 'जंगल' विशेष उल्लेखनीय हैं।

अवधजी ने 'सारिका' पत्रिका में अपने जीवन का अधिकतम समय दिया है और उसे पूर्ण समर्पित रहे हैं। यहाँ रहकर काम के दबावों के बीच उनके अंदर का रचनाकार दब जाता है। तभी तो उनके लेखन कार्य में अंतराल बार-बार दिखता है, जो निश्चित तौर पर उनकी व्यस्तता और काम के दबाव को स्पष्ट करता है। मुद्गल जी वर्तमान में जीने वाले लेखक हैं। तभी तो उनके साहित्य में से उनके बचपन के जीवन संघर्ष लुप्त है, जबकि वर्तमान परिदृश्य शहरी मध्यम वर्ग ही अधिक खुलता नज़र आता है। चित्रा जी के कुरेदने पर अवध जी की दृढ संकल्पनिष्ठता दृष्टव्य है,

वह कहती हैं कि-"अनेक बार उनकी मन: स्थितियों को खोदने, कुरेदने के मेरे प्रयास को उन्होंने यह कहकर टालने की कोशिश की, कि जिन परिस्थितियों और दबावों का मक़सद ही आपको घेरकर अपने मुताबिक़ जीने के लिए बाध्य करने का हो, उन्हें स्वीकार करने का अर्थ होता, मैं वह होता जो वह चाहते थे, वह नहीं जिस रूप में मैं स्वयं को गढ़ना और देखना चाहता था। जहाँ तक साहित्यिक माहौल का प्रश्न है, वह परिवार में दूर-दूर तक कहीं नहीं था।"

चित्रा जी पति के रूप में अवध जी के व्यक्तित्व का आकलन करती हैं, तो स्वीकार करती हैं कि पति के रूप में अवध जी बेजोड़ आदमी हैं। जब मुम्बई से उन्हें दिल्ली आना पड़ा तो उनके हृदय में परिवार को लेकर निरंतर चिंता बनी रहती। वह जब भी दिल्ली से पति के रूप में चित्रा जी को पत्र लिखते तो उसमें 'चित्तुल' संबोधन करते। और अपने पत्रों में जीवन की दिनचर्या की छोटी सी छोटी बात, अपने दर्द व बातों का वर्णन करने से नहीं चूकते थे। पत्र लिखते वक्त अवध जी इतने विकल हो जाते कि महेश दर्पण और महावीर प्रसाद जैन का लेटर हैड उठाकर उस पर चित्रा जी को पत्र लिख डालते। व्यस्तता के चलते समय पर चित्रा जी के पत्र न लिख पाने पर उन्हें वादे याद दिलाते थे। अपने अकेलेपन के संदर्भ में भी वह चित्रा जी को खत में लिख देते और अपने मिलने की बात और यादें साझा किया करते थे। पत्रों पर Q. M. S. लिखना ही स्पष्ट करता है कि वह बहुत जल्द अपने पत्रों के माध्यम से अपने दिल की बातें चित्रा जी तक पहुँचाना चाहते थे। एक दूसरे की राज़ी- नाराज़ी, आर्थिक संकट इत्यादि का वर्णन भी उनके पत्रों में होता था। इन सबके बीच में भी चित्रा जी के लेखन के संदर्भ में भी वह पूछना ना भुलते। मतलब पति के रूप में वह हर छोटी बात व्यक्त करते थे और हर छोटी बात पर वह पत्रों में राय देते, पूछते नज़र आते हैं। फ़ोन पर ठीक से बात न होने पर घर आकर रोते रहते। बासमती चावल और हरियाणा का पचरंगा अचार दिल्ली से मुम्बई बिटिया के लिए भिजवाते। अवध जी पति के रूप में बहुत भावुक नज़र आते हैं, चित्रा जी भी अवध जी को अपने जीवन का सबसे अनमोल हासिल मानती हैं। अवध जी स्वीकार करते हैं, कि वह चित्रा जी की हिम्मत और हौसला अफ़जाई से ही जीवित हैं। काम का जुनून और चित्रा जी से फोन पर बात करने के लिए अवध जी छुट्टी के दिनों में भी ऑफिस चले जाते थे। विशेषांकों को प्रतिमान बनाने के लिए खुद को उस में झोंक दिया था। थकान और तनाव की वजह से अवध जी का वजन भी कम हो गया था। ऐसी स्थिति में चित्रा जी भी बेबस थीं, कि गर्मी की छुट्टियों के अलावा वहाँ न जा पाती थीं। इसलिए अवध जी की समुचित देखभाल का अभाव रहता था।

मुम्बई से दिल्ली पहुँचने पर कार्यभार की वजह से वह लेखन में एकाग्र नहीं हो पा रहे थे। उन्होंने स्वयं अपने पत्रों में चित्रा जी को लिखा था। जिनका उल्लेख करना चित्रा जी नहीं भूलतीं, देखिए- "तुम्हारी शिकायत से इन्कार नहीं, लेकिन मुझे बताओ मैं अपने लिए समय कहाँ से लाऊँ? फ़िलहाल 'सारिका' का काम इतना बढ़ा हुआ है कि कोई और काम करने की शक्ति शेष नहीं रहती। फिर भी कुछ न कुछ तो कर ही रहा हूँ। एक-दो महीने तक इसी तरह सिलसिला और चलेगा, तब तक 'सारिका' अपना निश्चित रूप ले लेगी। समय पर भी आ जाएगी। कुछ भी हो, मुझे अपने काम तेज़ी से निपटाने है और लेखन में जो सात साल पिछड़ गया हूँ, उस दूरी और पिछड़ेपन को भी आगामी चार महीनों में पूरा कर लेना है।" चित्रा जी की कहानीयों पर भी अवध जी अपनी तटस्थ प्रतिक्रिया देते थे, उसका ज़िक्र करना भी इस किताब में चित्रा जी नहीं भूलतीं। चित्रा जी की कहानी 'बावजूद इसके' कहानी के संदर्भ में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए एक पत्र में अवध जी लिखते हैं, कि 'यह कहानी अधिक समय की माँग कर रही थी तुमने इसे बहुत कम समय दिया है।' इस तरह अवध जी के मानदंड बड़े ऊँचे थे। अवध के साथ रहते हुए उन्हें अवध जी के कई रूपों से रूबरू होने का मौका भी मिला। बचपन में पारिवारिक दबाव और बंधनों को तोड़कर घर से निकलने वाले अवध जब अपने परिवार (चित्रा जी, बिट्टू और गुड्डू) से अलग होते हैं, तो उन्हें बहुत तकलीफ होती है। जहाँ हमें अवध जी की संवेदनशीलता को समझते देर नहीं लगती। आर्थिक दबाव के बावजूद अपने परिवार की ज़िम्मेदारियाँ बखूबी निभाकर भी परिवार से दूर दिल्ली में रहने की वजह से कभी-कभी वह आत्मग्लानि महसूस करते हैं। यह बात वह चित्रा जी को पत्रों के माध्यम से खुलकर व्यक्त करते हैं।

अवध जी चित्रा जी के प्रेमी पहले थे और पति बाद में बने। जब उनके संबंध अलग ही मोड़ पर मुड़ने लगे तब उन दोनों ने शादी कर ली। मुंबई में रहकर व्यस्तता के चलते जब चित्रा जी अवध जी को को पत्र नहीं लिख पाती तो अवध नारायण जी बेचैन हो उठते। प्रेमी के रूप में अवध नारायण जब चित्रा जी को पत्र लिखते तो उसमें चित्रा जी के प्रति अपनी भावना, प्रेम, विश्वास, बेचैनी, अकेलापन और छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बातें भी व्यक्त करना न भूलते। चित्रा जी का पत्र उन्हें मिल जाता तो बड़े प्रसन्न चित्त हो उठते और फिर से काम में लग जाते। चित्रा जी अवध जी के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करती हैं कि 'हम पति पत्नी के बीच प्रेमी-प्रेमिका वाला भाव कभी ख़त्म नहीं हुआ।' चित्रा जी को हर मोड़ पर अवध जी से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा। लेकिन यहाँ चित्रा जी तटस्थ रहकर यथार्थ को केंद्र में रखकर अवध जी की भूलों से भी पाठकों का साक्षात्कार करवाना नहीं भूलते। उन्होंने खुद स्वीकार भी किया है कि- आर्थिक दबावों से मुक्त होने के लिए अवध जी घोड़ों की दौड़ों में मन लगाने लगे। जुए की लत लग गई थी। किंतु सशक्त और सक्षम गरिमामयी व्यक्तित्व के धनी चित्रा जी ने अवध जी की उँगली पकड़कर इन भूलों का परिष्कार करने का मौका दिया। खुद अवध नारायण जी ने भी अपनी भूल स्वीकार कर सही राह पर चलने का मन बना लिया। अपने पति पर तटस्थ रहकर लिखना और भूलों को प्रामाणिकता से स्वीकार करना उनका निस्संग होकर लिखना ही तो हैं। चित्रा जी ने अवध जी

पर लिखने की चुनौती स्वीकार कर सत्य की कसौटी पर इस कठिन कार्य को सफल बनाया हैं। उनमें कहीं दंभ नहीं हैं, इस संस्मरण के माध्यम से खुद को आजमाकर देखते हैं-"... निस्संग होने की मेरी कोशिश कितनी सफल होती हैं, स्वयं को आजमाना चाहती हूँ! जानती हूँ, कितना कठिन है मेरे लिए अवध पर लिखना। लेकिन चुनौती तो स्वीकार कर चुकी हूँ। यह चुनौती लेखक और लेखक के बीच की चुनौती हैं...।" अपने प्रेमी पति को समर्पित उनकी कविता 'कई-कई दिन' भाषा संस्कृति, २०१६ मे प्रकाशित हैं। जिसका ज़िक्र इस कृति में कर चित्रा जी पाठकों को यह कविता पढ़वाना चाहती हैं। अवध जी का प्रेम उन्हें जिस रूप में भी मिला वही प्रेम आज उनके लिए साँसों का सँबल है -

"न टूटा ठिठके पाँवों का हठीला असमंजस
न फूटे ओठों से मनौवल के दो बोल
सेंध लगाती न हैं आस
तुम ऐसे रूठ गए...!"

अवध जी बेटा राजीव (गुड्डू) और बेटी अपर्णा (बिट्टू) को बहुत प्यार करते थे। चित्रा जी के साथ-साथ वह अपने बच्चों को भी अलग पत्र लिखते थे। उन्हें खेल प्रतियोगिता, पढ़ाई वगैरह के लिए प्रेरित करते थे। बच्चों को होमवर्क के दौरान जब भी चित्रा जी उन्हें डाँटतीं तो वह गुस्सा हो उठते और धैर्य रखने को कहते। अपने मित्र की अचानक मौत से क्षुब्ध राजीव को तीन दिन तक सीने से लगाकर उसे संबल प्रदान किया। बेटी अपर्णा को जब पिकनिक पर जाने के लिए १००० रुपयों की आवश्यकता थी, तो बेटी के एक ही पत्र पर और फ़ोन करने पर उसके नाम मनी ऑर्डर भेज दिया गया। खुद हींग, जीरे वाला पराँठा और नींबू का अचार खा कर पैसे बचाकर बच्चों की माँग को पूरा करते। अंतत: ५ मई १९८३ में दिल्ली, मयूर विहार, फ़ेज वन में चित्रा जी सहित पूरा परिवार यहाँ रहने आया तो अवध जी बहुत ही खुश हुए। बाद में १० दिसम्बर, १९९२ को अपर्णा और शशांक का विवाह करवा दिया गया। शादी के ९ महीने बाद एक कार दुर्घटना में उन दोनों की मृत्यु के बाद अवध जी बहुत ही टूट गए थे। घर की उदासी को राजीव की पत्नी शैली ने ही सँभाला। शैली अपर्णा की हमउम्र और उसकी गहरी सहेली भी थी। उनके पोते, पोतियों ने अवध जी के सूनेपन को भरपूर भरने की कोशिश की। लेकिन पिता का संवेदनशील हृदय इस पीड़ा से न उबर पाया। अवध जी ने बेटी के न रहने का दर्द' एक खत गुमशुदा बेटी के नाम' से कविता लिखकर अभिव्यक्त किया है-

"प्यारी बेटी
तुम जब से गयी हो
यहाँ के दिन कुछ ज़्यादा ही बड़े होने लगे हैं।
शायद गर्मियों की-
लू में लिपटी दोपहर से भी ज़्यादा...।"

उन्होंने 'टुकड़े-टुकड़े यादें', 'कभी कभी ऐसा होता है...', 'हमें क्या पता था', 'खोया हुआ एहसास' जैसी कविताओं में उनका दर्द और बेटी के प्रति उनका अनहद प्रेम बयाँ होता है। बेटी के जाने के दर्द से वह इतना टूट चुके थे कि फिर सँभले ही नहीं। लेकिन शब्द कुमार जी की बेटी शैली ने आकर घर को तथा अवध जी सँभाला और उन दोनों को माता-पिता जैसा सम्मान व आदर दिया। अवध जी भी अपनी बहू शैली को अपर्णा की तरह बेटी मानते थे और उसे बेटी जैसा ही प्यार दिया।

ममता कालिया भी कहती हैं कि उन जैसा दोस्त मिलना सँभव नहीं हैं। वह अपने दोस्तों के लिए कुर्बान भी हो जाते थे। दिल्ली में अवध जी ने और उनके मित्रों ने मिलकर 'सीटी फोरम' सामाजिक संस्था की स्थापना की थी। गरीब वर्ग के लोगों के लिए मुफ़्त दवाईयाँ भी उपलब्ध करवाई जाती थीं। इस तरह दिल्ली जैसे महानगर में रहकर भी अवध जी का सामाजिक रूप उभर कर सामने आता हैं, जो न मात्र उन्हें अपने परिवार के प्रति संवेदनशील साबित करता है, बल्कि समाज के हर उन पिछड़े वर्गों के प्रति भी उनकी संवेदनशीलता उतनी ही तीव्र थी यह साबित करता है।

सम्पादक अवध जी के संदर्भ में भी चित्रा जी लिखती हैं कि 'सारिका' के संपादक बनने के बाद 'सारिका' को निरंतर उपर उठाने के एवं उसका पाठक वर्ग बढ़ाने के हर संभव प्रयास अवध जी ने किए। साथ में उनकी सम्पादकीय टीम भी सशक्त थी, जिसमें रमेश बत्रा, सफरेश उनियाल, बलराम, महेश दर्पण, आनन्द वर्धन और वीरेन्द्र जैन जैसे युवा कथाकार शामिल थे। अवध जी की विभिन्न योजनाएँ काम करने लगीं और 'सारिका' का पाठक वर्ग भी बढ़ गया। विभिन्न विषयों पर विशेषांक निकाल कर अवध जी ने 'सारिका' में नए विषयों और नए प्रयोगों का दौर चलाया। इन सबके लिए वह दिन-रात जुटे रहते थे। अवध जी ने अपने संपादन काल के दौरान नये युवा कथाकारों को 'नवलेखन अंक' के अंतर्गत स्थान देकर पूरी समर्थ कथा-पीढ़ी तैयार की। उनका सम्पादकीय 'अपनी बात' में उनकी अध्ययनशीलता, दूरदर्शिता और अनुभव दृष्टि के विभिन्न आयाम खुलते नज़र आते हैं। अवध जी एक निडर और प्रयोगधर्मी सम्पादक रहे हैं। 'सारिका' से मुक्त होकर उन्होंने 'छाया मयूर' का संपादन कार्य सँभाला, इसके विशेषांक भी बहुत प्रसिद्ध रहे।

कवि के रूप में भी चित्रा जी ने अवध जी के व्यक्तित्व को उभारा है। अवध जी पाँचवी कक्षा से ही कविताएँ लिखने लगे थे। उनकी पहली कविता किसी लघु पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, जिसका नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता। कमलेश्वर जी के कहने पर कुछ मॉडल के रूप में ग़ज़लें लिखी। अवध जी ने नव्यगीत और मिथकीय प्रतीकों की कविताएँ भी लिखी। इनमें 'महाभारत का जन्म', 'प्रमथ्यु: एक विकेन्द्रित आग', 'सिन्धु, मैं और शक्ति-संन्तुलन', 'नाग यज्ञ और मैं', तथा 'कर्ण: एक नीति परिदृश्य' उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं में उनका आधुनिक संदर्भ कविता को पढ़कर स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'नाग यज्ञ और मैं' काव्य के माध्यम से चित्रा जी अवध जी के काव्यों का आधुनिक संदर्भ स्पष्ट करती हैं। देखिए -

"मैं
नागों की भीड़ में

यज्ञ के सारे मन्त्र भूल गया हूँ
तिल भर जगह नहीं
जहाँ मैं
अपना हवन कुण्ड स्थापित कर लूँ।"

अवध जी से हुए साक्षत्कारों के माध्यम से यह पता चलता है, कि वह नवलेखन को ज्यादा महत्त्व देते थे और अपने साथी युवा रचनाकारों को वह सदैव आगे रखते थे। उन्होंने कभी स्वयं को आगे नहीं किया, किन्तु दूसरों को ही आगे रखकर अवसर देते चले गए। यही उनके चरित्र की महत्त्वपूर्ण विशेषता हैं। साथ ही जैनेन्द्र, यशपाल, नयी कहानी के दौर के कथाकारों पर अपने आलोचकीय निष्कर्ष भी दिए। उनकी आलोचकीय दृष्टि ने नई कहानी और पुरानी कहानी को लेकर तथा भाषा की समस्या को लेकर बहुत गहराई से अपने विचार व्यक्त किए हैं। अवध जी का 'भारतीय आज़ादी के पचास वर्ष का विहंगम परदृश्य' बहुत महत्त्वपूर्ण आलेख है। अवध जी को लिखित शब्दों के प्रति आस्था थी और बदलते जा रहे परिवेश में वह यह मानते थे, कि लोग लिखित शब्दों की ओर फिर से मुड़ेंगे। इस कृति में अवध जी रूपान्तरकार या अनुवादक के रूप में भी सामने आते हैं। उन्होंने बहुत सारी कृतियों के श्रेष्ठ अनुवाद भी किए हैं। उनमें चित्रा जी के अनुसार उनका अनुवादों में सर्वश्रेष्ठ संस्मरण अन्ना ग्रीगोरीव्ना द्वारा लिखा गया हिन्दी में अनुवाद सबसे आकर्षक है। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी अवध जी एक कुशल साक्षात्कार कर्ता भी थे। उन्होंने कई देशी-विदेशी लेखकों से साक्षात्कार लिए। साथ-साथ कुछ शोधार्थियों के द्वारा उनका अपना भी साक्षात्कार लिया गया था। तब उनका व्यक्तित्व अलग ही रूप में उभरकर सामने आता। यानी कि साक्षात्कार लेते वक्त अलग अंदाज़ में और साक्षात्कार देते वक्त अलग ही रूप में दृष्टिगत होते थे। उन्हें बिहार राजभाषा पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली का 'साहित्यकार सम्मान', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ का 'साहित्य भूषण सम्मान' भी प्रदान किए गए। २००८ में महेश दर्पण द्वारा संपादित 'अवधनारायण मुद्गल समग्र' दो खंडों में किताबघर प्रकाशन से प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। अवध जी के आधुनिक विचारों के संस्पर्श ने, शाश्त्रीय समझने, उनकी सहजता और सादगी ने ही उन्हें रचनाकारों का सहयात्री बनाया था।

उन्होंने संपादन के यज्ञ में अपने रचनाकार की आहुति सहजता से दे दी। यह कोई सामान्य कार्य नहीं है। तभी तो चित्रा मुद्गल जी यह कहती हैं कि उन्हें अपनी ज़िम्मेदारियों के चलते तिल भर जगह नहीं थी अपनी जगह से खिसकने के लिए। यही कारण है कि चित्रा मुद्गल जी ने इस विनिबंध का नाम 'तिल भर जगह नहीं' रखा है, जो विषयानुकूल व निश्चयबोधक है। उन्हें खुद के लिए कोई फुरसत के पल नहीं मिले, जिसमें वह अपनी इच्छानुसार कुछ लिख पाए या कुछ नया कर पाए। गौर करने लायक बात हैं कि अवध जी के प्रयासों से युवा पीढ़ी के कथाकारों की प्रतिभा निखर कर सामने आई। जो आज प्रतिष्ठित कथाकार के रूप में हिन्दी साहित्य में प्रस्थापित हो चुके हैं। यह वह दौर था, जिसमें युवा लेखकों को गढ़ने का काम किया जाता था, उन्हें प्रेरणा व प्रोत्साहन दिए जाते थे। यह सारे कार्य अवध जी ने अपना दायित्व समझ कर बतौर संपादक के रूप में युवा लेखकों को समुचित अवसर प्रदान किए। यही वजह हैं कि अवध जी इन सबके चलते अपना हवनकुण्ड स्थापित न कर सके ' मैं नागों की भीड़ में यज्ञ के सारे मन्त्र भूल गया हूँ, तिल भर जगह नहीं जहाँ मैं अपना हवनकुण्ड स्थापित कर सकूँ।' अपने दायित्वों के चंगुल से निकल कर उन्हें जितना लिखना था वह समयाभाव के चलते न लिख पाए। फिर भी उन्होंने इस बीच समय निकाल कर जो लिखा है, उसमें उनके गहन चिंतन व अध्ययनशीलता के दर्शन होते हैं। अवधनारायण मुद्गल जी का कवि, कथाकार और संपादक के रूप में यह योगदान अविस्मरणीय रहेगा...! चित्रा जी ने बहुमुखी प्रतिभा के धनी अवधनारारायण मुद्गल के उपर 'तिल भर जगह नहीं' संस्मरण लिखकर हिन्दी साहित्य की समृद्धि में वृद्धि की है...!

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

किताबें जो इन दिनों पढ़ी गईं

अटकन-चटकन

(उपन्यास)

लेखक : वंदना अवस्थी दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

स्वर्ग का अंतिम उतार

(उपन्यास)

लेखक : लक्ष्मी शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

मीठे चावल

(कविता संग्रह)

लेखक : शशि सहगल

प्रकाशक : इंडिया नेट बुक्स, नई दिल्ली

समीक्षक : सुधा ओम ढींगरा

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

अटकन चटकन- वंदना अवस्थी दुबे

गत दिनों पुस्तकों के दो पैकेज मिले। एक मेरी पुस्तकों का और एक चर्चित पुस्तकों और दोस्तों की पुस्तकों का। सबसे पहले मैंने वंदना अवस्थी दुबे का 'अटकन-चटकन' उपन्यास पढ़ा। दो बहनों को लेकर मैंने कई लेखकों की कहानियाँ पढ़ी हैं। किशोरावस्था में भगवती चरण वर्मा और शिवानी के दो बहनों को लेकर लिखे गए उपन्यास पढ़े हैं। अमेरिका में आकर नैन्सी पर्ल का 'टू सिस्टर्ज़ एंड ए गोल्डन पोंड' उपन्यास पढ़ा। सभी में दो बहनों की ईर्ष्या, एक के प्रेमी या पति को दूसरी बहन का छीनना, एक की ख़ुशी के लिए दूसरे की कुर्बानी, जो झुकता है उसे झुकाते चले जाना इत्यादि।

पर अब जब अटकन चटकन पढ़ा तो अलग आनंद आया। दो बहनों की मानसिकता का खूबसूरती से मनोविश्लेषण किया गया है। सबसे बड़ी बात है, इस उपन्यास ने खुद को पढ़वा लिया। सरल, सादा प्रवाहमयी भाषा में बुंदेली भाषा का छौंक उपन्यास को और भी रसमयी बना देता है। कुंती और सुमित्रा जैसे चरित्र घर -घर मिलते हैं। मनोविज्ञान के अनुसार सुमित्रा जैसे चरित्र में आत्मविश्वास की कमी होती है, जिसे भोलापन कह दिया जाता है। दबंग चरित्र से ऐसे लोग हमेशा दबते हैं और भीतर ही भीतर प्रभावित रहते हैं, तभी कुंती का सुमित्रा कभी विरोध नहीं करती और कुंती की ज़्यातियों पर भी कुछ नहीं कह पाती। दरअसल सेल्फ़ स्टीम की कमी होती है। दो बहनों के भिन्न -भिन्न व्यक्तित्व और उनके विकास के कारणों की पड़ताल लेखिका ने बखूबी की है। मैं कहानी नहीं बताऊँगी, चाहती हूँ कि पाठक उपन्यास पढ़ें। अटकन चटकन नाम ही पढ़ने के लिए आकर्षित करता है।

अंत में कुंती का प्रायश्चित दिखला कर लेखिका ने सकारात्मक अंत किया है। सुमित्रा की सहनशीलता के साथ पाठक कुंती की ज़्यादतियों को सहते-सहते अंत में चैन की साँस लेता है।

अक्सर देखने में आया है कि कुंती जैसे चरित्र बदलते नहीं। मैंने कुंती जैसे कई चरित्रों को जीवन के अंतिम दिनों में वृद्ध आश्रम में अकेले मरते देखा है, पर व्यवहार और स्वभाव में कोई अंतर नहीं आता, सामने वाले की कमज़ोरी से खेलकर उन्हें जो आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है, उसी में जीते रहे और उसी में मरना चाहते हैं।

८८ पृष्ठों का उपन्यास अटकन चटकन, शिवना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है और पठनीय है। वंदना अवस्थी दुबे और प्रकाशक दोनों को बधाई!!!

000

स्वर्ग का अंतिम उतार-लक्ष्मी शर्मा

बहुत दिनों बाद मैंने एक ऐसा उपन्यास पढ़ा, जिसने मुझे बेहद समृद्ध किया। लेखिका की बेहतरीन कृति, आकार में लघु किन्तु अपने फलक में विशाल उपन्यास। इसके शिल्प को जिस कुशलता से रचा और परिष्कृत भाषा से सँवारा गया, उपन्यास के हर पन्ने को पलटते हुए लेखिका के लेखन कौशल की सराहना मुँह से निकली।

बद्रीनाथ-केदारनाथ की यात्रा को निकले छगन की जगह मैंने कब ले ली, मुझे पता ही नहीं चला। रमणीक स्थलों का अद्भुत वर्णन, रम्य स्थलों के सौंदर्य के जीवंत चित्रण में खो गई। यात्रा के अनोखे विवरण में बँधी लेखिका की लेखनी की उँगली पकड़ प्रकृति से अठखेलियाँ करने लगी। प्रकृति की सुंदरता के काव्यात्मक रूप में रमी उन्हीं वादियों में टहलती रही, जहाँ यह खूबसूरती बरस रही थी-

"धारासार बरसते मेघों का रूप और नाद-सौंदर्य जितना मोहक होता है उससे ज़्यादा

सम्मोहक होती है आसमान से बरस चुकी लेकिन धरती पर आने के बीच कहीं ठहर गई बूँदों की ध्वनियाँ एवं छवियाँ। चीड़ की नुकीली पत्तियों के जाल के बीच से रौशनी के साथ छम-छम छमकती बूँदें इठलाती परियों सी उतरती हैं।"

तीर्थयात्राओं का महत्त्व और आकर्षण भारतीय जनमानस में भिन्न-भिन्न अर्थों में पाया जाता है, जिसका अंतर और वर्णन इस उपन्यास में लेखिका ने बखूबी किया है। वर्षों से मेरी इच्छा है कि बद्रीनाथ-केदारनाथ जाऊँ, पर कभी संयोग ही नहीं बना। 'स्वर्ग का अंतिम उतार' पढ़ने के उपरांत ऐसा महसूस हुआ कि मैंने इन तीर्थों की यात्रा बेहद रोचक तरीके कर ली।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यात्रा में खोए, प्राकृतिक नज़ारों में मग्न मन और तन पर अचानक सामाजिक विषमता के बादल मँडराने लगते हैं। इससे पहले कि तन मन को कुछ समझ आए, वे गरजते हैं और बरस कर चले जाते हैं। बड़ी सहजता से लेखिका ने अमीर के कुत्ते और ग़रीब छगन के रहन-सहन से समाज के एक बड़े अंतर को स्पष्ट कर दिया। कई अंतर्कथाओं और घटनाओं ने समाज की इस खाई को और भी स्पष्ट किया है।

मालकिन और बेटी का छगन के प्रति घटिया व्यवहार, धनाढ्य वर्ग का ग़रीबों को तुच्छ दृष्टि से देखने के परिणाम का चित्रण है। कंचन को नौकरानी बना कर लाने की योजना और मालकिन की मीठी-मीठी बातों के वर्णन से लेखिका ने शहरी सभ्यता और अमीरों की धूर्तता को उकेरा है।

लेखिका की लेखनी की तेज़ धार ने जहाँ पहाड़ों के प्राकृतिक नज़ारों के अनुपम वर्णन को पढ़ने वालों की दृष्टि में उतारा है, वहीं पहाड़ी जीवन की कठिनाइयों और निर्धनता को भी उनके हृदय तक पहुँचाया है। नदियों पर बांधों के निर्माणों से होने वाली क्षति और पर्यावरण के प्रति संवेदना भी दर्शाई है। एक छोटे से आकार वाले उपन्यास ने कितना कुछ समेट लिया। मालवी संस्कृति, रीति-रिवाज़ों और लोक गीतों के पुट ने कथा के प्रवाह को मनोरंजक और विशिष्ट बना दिया।

उपन्यास के समाप्त होने पर भी पाठक की खोज और यात्रा जारी रहती है, यही उपन्यास को अनूठा बनाती है। १०४ पृष्ठों का उपन्यास पठनीय है और शिवना प्रकाशन से छपा है। लक्ष्मी शर्मा और शिवना प्रकाशन को भाषा और शिल्प में बेहतरीन उपन्यास के लिए बधाई!!

000

मीठे चावल तथा अन्य कविताएँ - शशि सहगल

मीठे चावल तथा अन्य कविताएँ लेखिका शशि सहगल का चौथा कविता संग्रह है। लेखिका कहती है-"कविता जीते हुए मैं उसे लिखने नहीं बैठती। लिखने बैठना भी ग़लत प्रयोग है। कविता जीते हुए वह स्वयं ही इतना दबाव बना लेती है कि मुझे लिखने के लिए बिठा देती है और कविता हो जाती है। परिवार, समाज और उसकी रवायतें ही मेरी कविताओं में ख़ुद- ब- ख़ुद चली आती हैं। केवल उनका बखान कर देना ही कविता को कविता नहीं बनाता है बल्कि उन्हें प्रश्नांकित करके किसी नए विमर्श की ओर संकेत करना ही उसे कविता बनाता है। यह संकेत जीवनानुभवों से ही जुड़े होने के कारण ही पाठक के मानस से सहज ही जुड़ जाते हैं। केवल जुड़ते ही नहीं, उसकी स्मृति में कहीं ठहरे रहते हैं। अधिकतर मेरा मन घर, परिवार और समाज के रिश्तों, द्वंद्वों, मूल्यों के टूटने-बनने के बीच मनुष्यता के रेखांकित कर पाने के साथ ही जुड़ता है। ऐसी ही ध्वनियाँ आपको मेरी कविताओं में मिलेंगी।" पूरा कविता संग्रह पढ़ते हुए मुझे कविताओं में ऐसे ही ध्वनियाँ सुनाई दीं।

पहली कविता 'मीठे चावल' ही लीजिए, ये पंक्तियाँ सुनिए-

कल बहू को रसोई पकानी है / मीठे चावल पकाने की रीत है। / लड़की को रसोई की दहलीज़ पार कराई जाती है / जब बर्तनों को देखती है / इससे तो उनकी कोई पहचान नहीं। / थालियों पर पड़े निशान / बच्चों के प्यार का नतीजा है / इस घर में प्यार का इज़हार/ क्या निशान डालकर ही किया जाता है / जले तले का पतीला / उससे ख़ुशी माँगता है / लड़की का अन्तर्यामी मन, सोचता है / यह मामूली रसोई नहीं, एक महाकाव्य है / और हर बर्तन एक अध्याय।

***

बर्तनों की खनखनाहट, रिश्तों की चुभन, मूल्यों की टूटन की ध्वनियों के बीच नारी मन की अकुलाहट भी सुनाई देती हैं,'तलाश- ख़ुद की' कविता में-

तुम्हारे घर में मैं /इतनी उलझ गई हूँ / कि ख़ुद से बेगानी हो / ढूँढ़ती हूँ अपने को ठौर-कुठौर। / कभी खँगालती हूँ / अलमारी की अनखोली तहों में / कही पड़े हो पटोले मेरे / शायद मुझसे मेरी पहचान करा दें।

'पुराना बड़ा सन्दूक 'पढ़कर आँखें नम हो गईं। मेरे जैसी कइयों की भावाभिव्यक्ति है यह कविता। बहुत नॉस्टेल्जिक कर देती है-

आज भी पड़ा है वो संदूक /गुमसुम, उदास / हर हलचल से बेख़बर, निर्विकार / वानप्रस्थ भोक्ता / घर के ख़ालीपन की माला फेरता। / क्या कहूँ/ उस पर हाथ फेर /आज भी मिलती है मुझे अपनी पहचान / और मन-मरुस्थल का / कोई कोना हरिया जाता है।

नारी मन का विरोध, विद्रोह, पीड़ा, अंतर्द्वंद्व, अन्याय और सामाजिक प्रताड़ना से प्रताड़ित भीतर की संवेदनाएँ, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश गाँधारी- १ से ६ कविताओं में भरपूर मिलता है।

मैं खुद को तुम से अलग नहीं कर पाती / शायद इसी कारण / कभी कहा था तुमने / 'तुम क्यों गाँधारी बन जाती हो?'-गाँधारी-१

मेरा मन तो तुम्हें श्राप देने को होता है / करोड़ों अज्ञानी और मूढ़ नारियों को तुमने / अपने इस महासती के आदर्श तले दबा दिया-गाँधारी-२

इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रकाशित, शशि सहगल की ४७ कविताओं और ८७ पृष्ठों वाले मीठे चावल तथा अन्य कविताएँ वाले कविता संग्रह को पढ़ते हुए घर, परिवार, रिश्तों की ध्वनियों के साथ, नारी मन की अंतर ध्वनियाँ सुनते-सुनते मैं भावनाओं के सैलाब में बह गई। पाठकों को यह संग्रह पसंद आएगा।

000

पुस्तक समीक्षा

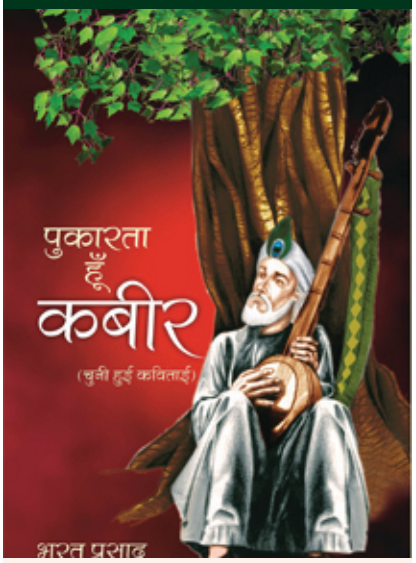

पुकारता हूँ कबीर

(कविता संग्रह)

समीक्षक : सुनील कुमार

लेखक : भरत प्रसाद

प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर

सुनील कुमार
हिन्दी विभाग, नेहू
शिलांग-793022, मेघालय
मोबाइल- 8617301842

युवा कवि, कथाकार, आलोचक भरत प्रसाद की चुनी हुई कविताओं का संग्रह 'पुकारता हूँ कबीर' समाज के कई मुद्दों को आईना दिखाती हुई नज़र आता है। अमन प्रकाशन से प्रकाशित इस काव्य संग्रह की प्रत्येक कविता में समाज से टकराहट की अनुगूँज सुनाई पड़ती है। महात्मा कबीर केवल संत कवि ही नहीं थें उन्होंने समाज सुधारक के रूप में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। कबीर के आदर्श, जीवन-दर्शन और संस्कार आज भी साहित्य एवं समाज में उपस्थित हैं। यह समय है उन्हें तलाशने और समझने का। कवि भरत प्रसाद इन बातों एवं महात्मा कबीर के उन सभी गुणों से भली-भाँति वाक़िफ़ हैं। कविता और कविकर्म फक्कड़ता और बेफिक्री से उत्पन्न होता है। कबीर में भी वही अंदाज़ था जिसे फक्कड़ता, अक्खड़पन और बेफिक्री कहा जा सकता है। इसी कारण उनकी कविताई में समाज, सामाजिक सच्चाई की परत दर परत उघड़ती हुई नज़र आती है। युवा कवि भरत प्रसाद ने भूमिका में अपनी कविता की ज़मीन तलाशने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'प्राय: कविदृष्टि का यह अलहदापन उसकी 'साहसिक बेफिक्री' से जन्म लेता है। इतना ही नहीं इस बेमिसाल अलहदेपन के लिए एक फक्कड़पन, एक बेखुदी और आत्म साक्षात्कार का दुस्साहस अत्यावश्यक है। कवि के भीतर स्वयं को द्रष्टा या साक्षी की तरह देख पाने की आग प्रज्वलित हो। इस अंतर्ज्वाला के विस्तार में वह देखता है- दिशा-दिशा में उड़ते हुए अनकहे अर्थ, अव्यक्त प्रतीक और बिम्ब, आवाजाही मचाए हुए प्राणवंत विचार और सृष्टि को आधार देने वाले चैतन्य सूत्र' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, भूमिका से)। इसी दृष्टि से कवि जीवन के मर्म एवं सच्चाई को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह 'पुकारता हूँ कबीर' में कुल सत्तावन कविताएँ संकलित हैं। इन सभी कविताओं में जीवन के प्रति सच्चा दर्शन तथा अनुभव छिपा हुआ है। पुस्तक की पहली कविता 'मन की बाँसुरी पर तन का विलाप' में नष्ट होती प्रकृति के प्रति कवि के विलाप को देखा जा सकता है। कवि का प्रकृति के क्षरण के प्रति विद्रोह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य ने जब-जब प्रकृति को नुकसान पहुँचाया है तब-तब उसने इसका हर्जाना चुकाया है- 'नदियों की नाभि में / मृत्यु की ऐंठन होने लगी है /अनादि काल से खड़े-खड़े पहाड़ / ढह रहे हैं स्मृति में बेतरह / दरख्तों के शरीर से' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.१४)

कवि की प्रकृति के प्रति छटपटाहट एवं प्रकृति को बचा लेने की ललक को 'मुझे बचाओ' कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है- 'जीवन से भरी हुई धरती देखने का सुख / लूटने के लिए / मुझे अव्वल दर्जे का पागल हो जाने दो / मुँह के बल चाहे बार-बार गिरूँ / चटक ही क्यों न जाएँ घुटने की हड्डियाँ / उसे देखने के लिए / फिर तड़प कर उठूँ' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.३४)

प्रतिदिन प्रकृति पर मँडराते ख़तरों को भाँपते हुए कवि प्रस्तुत काव्य संग्रह में सतर्क नज़र आते हैं। 'पृथ्वी को खोने से पहले' कविता में पृथ्वी के क्षरण की कहानी बयाँ की गई है। कवि इन ख़तरों को जानते हैं। इनकी संवेदना जायज़ है और एक बड़ी समस्या की ओर इशारा करते हैं। इनकी टीस को इस कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक प्रकृति प्रेमी की इच्छा है कि वह प्रकृति एवं पृथ्वी को नष्ट होने से पहले उसे जी भर कर देख लेना चाहता है- 'पृथ्वी को खोने से पहले / जी भर कर जी लेना चाहता हूँ / एक-एक दिन / सुन लेना चाहता हूँ / जड़ चेतन में धड़कती / पृथ्वी का हृदय / पी लेना चाहता हूँ / सृष्टि के सारे अलक्षित मर्म' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.६३)

गंगा निर्मलीकरण के लिए देश स्तर पर कई तरह के प्रयास किए जा रहे हैं। नए विभाग बनने के बाद भी गंगा की जमीनी हकीकत क्या है, इससे गंगा और सामान्यजन वाकिफ हैं। गंगा की पीड़ा कवि की पीड़ा बनकर 'गंगा का बनारस' जैसी मार्मिक कविता में उभरी है। कविता के प्रत्येक पंक्ति में गंगा के खून से सिंचित आँसू नजर आते हैं। जल एवं नदी प्रदूषण पर लिखी गई इस कविता में गंगा के दुख साधारणीकरण कर पाठक से उसका एकाकार कराया है- 'पछाड़ खा-खाकर/ रात-दिन / खून के आँसू रोती / आँचल पसर कर प्राण की भीख माँगती / ज़हर का घूँट पी-पीकर / मौत के एक-एक दिन गिनती / पराजय की मूर्ति बन गई है गंगा / अरे! तुम्हारे छूते ही गंगा का पानी / काला क्यों हो जाता है' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.६८)

प्रकृति एवं पर्यावरण को बचाने के लिए कवि की चिंता सहज समझने लायक है। प्रकृति के प्रति कवि की बेचैन एवं झकझोर देने वाली व्यथा को इस कविता में देखा जा सकता है- 'भटकती है आत्मा / प्रकृति के भीतर बैठी / हज़ारों हज़ार माँओं के लिए / खोजती फिरती हैं आँखें- / कहीं तो प्राण का प्राण हासिल हो जाय'(पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.२१)

कवि की चिंता केवल प्रकृति को बचाने की नहीं है। उनकी पैनी नज़र सामाजिक विषमताओं और सामाजिक गतिविधियों पर भी पड़ती है। जैसा कि पुस्तक का नाम है 'पुकारता हूँ कबीर'। कबीर जिस तरह से सांसारिक विषमताओं एवं अव्यवस्थाओं पर बेबाक राय देते हैं। उन्हें समाज के शीर्ष एवं तथाकथित उच्च वर्ग से भय नहीं था। ठीक इसी तरह कवि भरत प्रसाद भी व्यवस्था के दोहरे चरित्र पर अपनी राय बहुत ही बाहादुरी एवं ईमानदारी से देते हैं। विगत दिनों गोरखपुर अस्पताल में ऑक्सीजन के अभाव में मारे गए बच्चों की कोमल स्मृति को समर्पित कविता 'जीवन @ ऑक्सीजन' में कवि उन माँओं और बच्चों को पीड़ा से याद करते हुए एवं ऐसी व्यवस्था का प्रतिकार करते हुए दिखते हैं- 'हम फिर लौटेंगे! / कई माँओं की कोख में / कई अमिट, सवाल बनकर / लेकर रहेंगे एक-एक मौत का उत्तर / अपने मौलिक अधिकार की तरह / माँगेंगे तुमसे दफन हो चुकी एक-एक साँस का हिसाब' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.२३)

विगत दिनों बुद्धिजीवियों पर होते हुए हमले ने यह साबित कर दिखाया कि बुद्धि, बल से काफी ताकतवर होता है। कलबुर्गी, दाभोलकर, पंसारे, गौरी लंकेश जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं की हत्याओं ने देश के प्रगतिशील पक्ष को झकझोर कर रख दिया। जब लोग बोलने में डरते हैं, ऐसे समय में गौरी लंकेश की हत्या को समर्पित कविता 'मौत का नया पता' के माध्यम से सच कहने की ताकत को कवि ने दिखलाया है- 'मौत अब तुम्हारी साँसों पर दावा करती / तुम्हारी धड़कनों को छीनती हुई आएगी / यह मौत हर सही कदम के खिलाफ / निर्णायक फ़ैसले की तरह आयेगी' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.२४)

भारत केवल माटी का एक हिस्सा नहीं है। यह सवा सौ करोड़ देशवासियों के लिए अरमान एवं एहसास है। देश पर कई विदेशी आक्रमण हुए। विदेशियों ने इस देश को कई बार लूटा और बर्बाद किया। आज आतंकवाद के कई क्रियाकलापों ने देश को सहमा कर रख दिया है। पूरा विश्व इस समस्या से जूझ रहा है। विश्व विजय की कामना रखने वाले सिकंदर की क्या गति हुई यह पूरा विश्व जनता है। इस प्रसंग पर भरत प्रसाद की यह कविता काफी सटीक बैठती है- 'पृथ्वी अटूट धैर्य और अमर संतुलन के साथ / अथाह आकाश में नृत्य कर रही है / तुम्हारी समूची लड़ाइयों के साथ / अनगिनत महायुद्धों के साथ / वह तब भी नहीं काँपी' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.३१)

अभाव एवं लाचारी मनुष्य को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर देती है, जहाँ से वह पीछे लौटकर वापस भी नहीं जा सकता। देश की कुल पूँजी पर कुछ ही परिवारों का ही कब्ज़ा है। ग़रीबी और ग़रीबी रेखा और लंबी खींचती चली जा रही है। 'कूड़ाखोर' कविता में एक ऐसी ही तस्वीर कवि ने खींची है- 'कूड़ा उसके लिए कूड़ा नहीं / बुझते हुए जीवन की अंतिम उम्मीद है / डूबते हुए सुख का आखिरी तिनका / पराजय की आख़िरी शरण स्थली / वह नि:शेष उम्र के लिए कूड़ाखोर बन चुका है' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. ३८)

तथाकथित सभ्य समाज जिस समुदाय को त्याग कर एक विशेष नाम 'वेश्या' देता है, वह भी समाज का अभिन्न हिस्सा है। उनको भी समाज में रहने-जीने का, पेट पालने का, अन्य संसाधनों आदि का उपयोग करने का उतना ही अधिकार है जितना अन्य लोगों को। वे भी चाहते हैं उनके बच्चे भी कान्वेंट स्कूलों में पढ़ें। समाज के इन ठेकेदारों को किसी की इज़्ज़त से खेलने, उनपर लांछन

लगाने का कोई अधिकार नहीं है। वे अपनी दुख को तथाकथित सभ्य समाज से नहीं कहती हैं। यह है रेड लाइट एरिया में रहने वालों की इंसानी हक़ीक़त। इस हक़ीकत को समाज को स्वीकार करना ही पड़ेगा। कवि भरत प्रसाद की कविता 'रेड लाइट एरिया' इस प्रसंग पर बहुत कुछ कहती है- 'कोई देखे ज़रा / सब-कुछ लुट जाने के बावजूद / उसकी आँखों में अभी कितना पानी शेष है / यकीन नहीं होता कि / वह अब भी हँस सकती है / रो सकती है, नाच सकती है, खुश हो सकती है' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. ५०)

अंधविश्वास की बेदी पर हज़ारों-लाखों निरीह बेजुबान पशु-पक्षियों को देश में बली के नाम पर मौत के घाट उतार दिया जाता है। कबूतर को शांति का दूत कहा जाता है। इन कबूतरों को छटपटाने से भी कोई फायदा नहीं हो सकता है। इन पक्षियों और पशुओं की ववेदना को भी कई साहित्यकारों ने साहित्य में स्थान दिया है। भरत प्रसाद की 'कामाख्या मंदिर के कबूतर' कविता में उन पशु पक्षियों के आह को, हृदय को बेध देने वाली चित्कार को बखूबी सुना जा सकता है- 'कौन समझाये इन मोहान्ध कबूतरों को कि / लाख तड़फड़ाएँ, अहक-अहक कर मरें / माँ को ढूँढ़ती नन्हीं आँखें / अब इन्हें नहीं दिखाई देंगी' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ.५६)

अंधविश्वास एवं मनुष्य की व्यक्तिगत लालसा के कारण वन्यजीव एवं पालतू पशुओं को मौत के घाट उतार दिया जाता है। इन पशुओं और जीवों की आंतरिक भावना कैसी होगी इसका अनुमान कवि ने प्रस्तुत कविता के माध्यम से किया है। जीवों पर दया एवं जीवों के आंतरिक भावधारा को कवि ने 'मैं सूअर हूँ' कविता में बहुत ही मार्मिकता से चित्रित किया है- 'जानवर को कभी माँ नहीं होना चाहिए / मेरा बाँझ रहना / अपनी आँखों के सामने / बच्चों की हत्या देखने के पाप से बच जाना है' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. ७३)

कवि केवल महात्मा कबीर के आदर्श, जीवन दर्शन के प्रति ही कृतज्ञ नहीं हैं, वे उस माटी, फसल, उन हवाओं, उन शब्दों आदि के प्रति भी कृतज्ञ हैं जो इनकी धमनियों में रक्त की तरह दौड़ रहा है। 'मैं कृतज्ञ हूँ' कविता में इसकी झलक साफ-साफ दिखाई पड़ती है- 'मैं कृतज्ञ हूँ उन शब्दों का /जिसने मुझको गढ़ा-तराशा / तोड़ा-मोड़ा, ज़िंदा रखा / मैं कृतज्ञ हूँ उस माटी का /जिसने मुझको साँसें सौंपी / पाला-पोसा बड़ा कर दिया'(पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. ८९)

शब्द की ताक़त कलम से निकलती है। कलम कई मायनों में शब्द को और शब्द संसार को समृद्ध करती है। आज़ादी के समय कलम की ताक़त को स्वतंत्रता सेनानियों एवं तत्कालीन समय के लेखकों ने पहचान लिया था। इस बात को और कलम की ताक़त के प्रति कृतज्ञता को भी कवि ने बड़े ही गंभीरता से स्वीकार करते हुए 'कलम' कविता में लिखा है- 'सभ्यता, संस्कृति, इतिहास /अपना न्याय पाने के लिए / इसी कलम पर निर्भर हैं- / इसका निर्णय ही /वास्तव में अंतिम निर्णय है।' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. १०२)

आतंकवाद एवं सांप्रदायिकता के ज़हर से समस्त विश्व समस्याग्रस्त है। यह समस्या प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इस समस्या से साहित्य एवं साहित्यकार भी प्रभावित हुआ है। इस प्रभाव को साहित्य की कई विधाओं में देखा जा सकता है। कवि भरत प्रसाद ने इस गंभीर समस्या को कविता में स्थान देते हुए 'कश्मीर के बच्चे' में लिखा है- 'इतने वर्षों से उत्तर की / शांत और सुंदर घाटी में, / तोपों, गोलों, बंदूकों का / खूनी शासन गूँज रहा है!' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. १११)

इसी प्रसंग पर ठीक ऐसा ही चित्र कवि ने 'गुजरात की रात' कविता में भी खींचा है- 'दो हाथ, मज़हबी जोश भरे / आतंकमुखी विस्फोटक से / प्यासे शस्त्रों की फौज लिए / बढ़ते हैं अंधड़ हो जैसे!' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. ११५)

मनुष्य अंत समय में आदमी और आदमियत की परिभाषा को समझता है। उसके सामने अतीत के सारे चित्र उभरने लगते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित एकांकी 'औरंगजेब की आख़िरी रात' में औरंगजेब के द्वारा किए गए सारे कृत्यों को शय्या पर याद करते हुए दिखलाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य अपने सभी कामों का मूल्यांकन अंतिम समय में अवश्य करता है। कविता 'रवीन्द्रनाथ के आँसू' में कवि ने इसी सत्य की ओर इशारा किया गया है- 'रोगशय्या पर पड़े / अपने भाई-बंधुओं को आस-पास / उदास-उदास सा देख कर / ममत्ववश रो पड़ने वाले गुरुदेव! / तुमने बता दिया कि / सारी उपलब्धियों के बावजूद / आँसुओं से बढ़कर / आदमियत की कोई परिभाषा नहीं!' (पुकारता हूँ कबीर, भरत प्रसाद, पृ. ९९)

'पुकारता हूँ कबीर' काव्य संग्रह उन सभी घटनाओं, सामाजिक विषमताओं और व्यवस्था के रूप का जीवंत दस्तावेज़ है। कवि व्यवस्था की विद्रुपताओं के खिलाफ मुखरता से खड़ा होता है।

कवि भरत प्रसाद ने लोकतंत्र पर हो रहे निरंतर हमले से लेकर आतंकवाद, सांप्रदायिकता तक के आख्यान को बहुत ही रोचकता से वर्णित किया है। समाज में जब बुद्धिजीवी एवं साहित्यकार प्रथम पंक्ति में खड़ा होकर व्यवस्था से दो-दो हाथ करता है तब यह भालिभाँति समझ लेना चाहिए कि व्यवस्था का रुख सही नहीं है।

युवा कवि, कथाकार, आलोचक भरत प्रसाद की इस संग्रह की कविताओं में मार्मिकता का विलक्षण रूप देखने को मिलता है। इनकी कविताओं की विशेषता है कि यह पाठक को एक ऐसे भावलोक का विचरण करवाती हैं जहाँ आत्मा उच्चता की शीर्ष पर पहुँचती है।

कवि के प्रकृति एवं पृथ्वी प्रेम, असहाय तथा हाशिए पर के लोगों से आत्मीय लगाव को इस काव्य संग्रह में सर्वत्र देखा जा सकता है। काव्य संग्रह 'पुकारता हूँ कबीर' महात्मा कबीर को याद करने का एक नया तरीका ईजाद करता है।

000

ख़ुद से गुज़रते हुए

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : संगीता कुजारा टाक

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला- हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल - 09931117537
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

'ख़ुद से गुज़रते हुए' संगीता कुजारा टाक का पहला कविता-संग्रह है जिसमें एक सौ तीन कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो कर प्रशंसित हो चुकी हैं। इन कविताओं में कवयित्री ने खुद को रख कर समाज के विभिन्न पहलुओं पर अपनी प्रतिक्रिया दी है। यह कवयित्री का निजी मामला भले हो सकता है लेकिन कवयित्री ने जिन रगों पर उँगली रखी है वह हम सबके लिए विचारणीय है। कवयित्री खुद से गुज़रते हुए अपने प्रिय, घर- परिवार, समाज, आस-पड़ोस और प्रेम में पड़े लोगों से साक्षात्कार करती हैं। इस दौरान वह जो कुछ भी महसूस करती है। उसे हू-ब-हू कविताओं में रूपांतरित कर देती हैं। कवयित्री ने 'अपनी बात' में लिखा है कि "कब अनकहा कहा हो गया, कब अनलिखा शब्दों में बदल गया और कब औरों का मेरा हो गया, पता ही नहीं चला। पता अब चला है जब इनकी शक्ल एक किताब की हो गई है। मेरे लिए कविताएँ वो रिकॉर्डिंग ग्राफ पेपर है जिन पर मेरे भाव का, सोचों का और मेरी चेतना का ग्राफ बना हुआ है। जो मुझसे मेरा ही मूल्याँकन करवाता रहता है"।

डॉ. अशोक प्रियदर्शी ने शुभाशंसा में संगीता कुजारा टाक की कविताओं के बारे में लिखा है कि "मुझको भरोसा है यह संकलन पाठकों का प्यार पाएगा और खूब पढ़ा जाएगा। इसमें आपको साहिर की जादूगरी का भी स्वाद मिलेगा और अमृता प्रीतम के प्यार की गर्मजोशी भी"।

'हैशटैग' कविता के माध्यम से कवयित्री ने अपने समर्पण की भावना को अभिव्यक्त किया है। साइंस ने पुष्टि की है कि ब्लैकहोल के पास रिपल्शन काम नहीं करता है क्योंकि वहाँ पहुँची हुई चीज़ कभी वापस नहीं आती है। वह उसी में समा जाती है। उसी प्रकार कवयित्री अपने प्रिय के लिए ब्लैकहोल बनना चाहती हैं। वह उनमें एकाकार होकर जीवन जीना चाहती हैं। कवयित्री ने लिखा है-

"साइंस ने पुष्टि की है / कि ब्लैकहोल के पास / काम नहीं करता / रिपल्शन /मैं / तुम्हारी / 'ब्लैकहोल' / बनना चाहती हूँ।"

'वो कौन है?" कविता के माध्यम से कवयित्री अनेक प्रश्नों के उत्तर के लिए विभिन्न प्राकृतिक-अप्राकृतिक चीज़ों से सामना करते हुए गुज़रती हैं लेकिन अन्तत: उसे उन सवालों का उत्तर नहीं मिल पाता है। यही कारण है कि कवयित्री के अंदर विभिन्न प्रकार के प्रश्न उठते रहते हैं, जिसके समाधान की कामना करती हैं। वह इन प्रश्नों के चक्कर में पड़कर समाधान की ओर बढ़ना चाहती हैं पर प्रश्नों ने उन्हें उलझाकर रख दिया है। वह लिखती हैं

"सुनो!! / मुझे बताओ / कि किसने तय किया / साँसो की आवाजाही का नियम / पेड़ पौधे हो या जानवर / या हो हम इंसान / किसने रचा यह जन्म और मृत्यु का खेल"

'फिनिक्स' कविता के माध्यम से कवयित्री ने अपने विचारों की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। फिनिक्स पंछी की विशेषता है कि वह बार-बार मर कर भी जन्म ले लेता है यानी वह अपनी राख से पुन: जन्म लेने में सक्षम है। कवयित्री भी अपने विचारों के बार-बार जन्म लेने की बात करती हैं ठीक फिनिक्स पंछी की तरह। कवयित्री ने लिखा है-

"मैं विचार हूँ / ...सिर्फ विचार / जो अपने अस्तित्व की / स्वीकृति के लिए / बार-बार लेती है जन्म / अपनी ही राख से / फिनिक्स की तरह ...।"

'नहीं होता दर्द' कविता के माध्यम से कवयित्री ने दर्द के बिना कुछ भी संभव नहीं, बात की पुष्टि की है। वह कहती है, अगर दर्द मनुष्य के अंदर से ग़ायब हो जाए, तो यह दुनिया कुरूप बन जाएगी। इसी दर्द और पीड़ा से दुनिया का पहला श्लोक 'माँ निषाद....' निकला था। दर्द यानी मानवीय संवेदना का होना। अगर यह नहीं रहा तो बहुत कुछ बदला- बदला-सा नज़र आएगा। कवियत्री ने लिखा है कि -

"नहीं होता दर्द / तो कैसे समझते अर्थ / शब्दों के अंतस का / दुनिया को कविता कौन सुनाता ?"

'अब बोल भी दो' कविता के माध्यम से कवयित्री ने प्रेम की अनुभूतियों की ओर ध्यान दिलाया है। प्रेम को बिना कुछ कहे भी महसूसा जा सकता है। कवयित्री अपने प्रिय की ज़िद से उदास है, खिन्न है। वह सिर्फ अपने प्रिय की आवाज़ सुनना चाहती है। लेकिन उसकी आवाज़ नहीं सुन पाने की स्थिति में भी वह सब कुछ एहसास कर लेती है। वह लिखती है-

"वो जो / सन्नाटा पहन रखा है न / तुम्हारे लबों ने / और ख़ामोशी / तुम्हारी आँखों ने / इसमें भी सुनाई देते हैं मुझे / तुम्हारे कहे अनकहे बोल / आदत बन चुके हो तुम"

'श्रापित पीढ़ी' कविता के माध्यम से कवयित्री ने अपनी पीढ़ी को श्रापित होने की बात की है। इस पीढ़ी से कवयित्री दुखी है, क्योंकि इसी पीढ़ी में बहुएँ जलायी जा रही हैं, भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं, वृद्धा आश्रम खोले जा रहे हैं, जबकि पहले तो ऐसा नहीं होता था। मानवीय संवेदनाओं का इतना ह्रास हो चुका है कि लोग अपने सगे को भी पहचानने से इंकार करने लगे हैं। तब कवयित्री ने लिखा है -

"हमारी ही पीढ़ी में / वृद्धा आश्रम की बाढ़ आई / अपने ही माँ-बाप को / उनके घरों से भगाया गया /हमारी पीढ़ी को किसका श्राप लगा है?"

'याद' कविता के माध्यम से कवयित्री ने अपने विरह की अग्नि में जल रहे बचपन की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। पति-पत्नी के बीच दरार आज के बच्चों का भविष्य लिख रहा है। रात-दिन घर के कलह से बच्चे असमय ही बुज़ुर्ग होने को विवश हो रहे हैं। इसलिए कवयित्री ने महसूस किया है कि माथे की बिंदी भविष्य के सुखद होने की याद दिलाता रहे। वह कहती हैं -

"इसलिए आज मैंने / अपने माथे पर / तेरी याद की बिंदी लगाई है / तेरी यादों का दीया सलामत रहे / और रोशनी बिखेरता रहे"

'तब अब' कविता के माध्यम से कवयित्री ने अपने भूत और वर्तमान को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। अपने प्रिय की खुशी के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देती है, फिर भी उसका प्रिय खुश नहीं है। इसलिए वह चिंतित है। वह कहती है कि मैं तुम्हारे बच्चों की माँ फिर भी तुम्हारी कुछ नहीं लगती हूँ। कवयित्री ने लिखा है-

"अब / जब तुम्हारी चिंताएँ / मेरे माथे की लकीर बन गई है /तुम्हारे सुखी संसार में /मेरे सपने कराह रहे हैं / तुम्हारी कामयाबी से / मैं बेहिस्सेदार हो गई हूँ"

'ख़ुद से गुज़रते हुए' कविता-संग्रह के माध्यम से कवयित्री संगीता गुजारा टाक ने प्रेम में पड़ी स्त्रियों की विरह-व्यथा को परत-दर-परत उघाड़कर रख दिया है। प्रेम में पढ़ना और उसी प्रेम में धोखा खा जाना,वर्तमान समय की सबसे बड़ी विडंबना है। कवयित्री की दृष्टि स्पष्ट है कि प्रेम में पड़कर दुख की अनुभूति करना ही कविता को जन्म देना है। यह संग्रह बहुत ही पठनीय बन पड़ा है।

000

नई पुस्तक

जलधार

(कहानी संग्रह)

लेखक : उषाकिरण खान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार पद्मश्री उषाकिरण खान का यह कहानी संग्रह शिवना प्रकाशन से अभी हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। इसमें उषाकिरण खान की बारह कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ हैं- स्वास्तिक, छुअन, गली में, सूर्योदय, उसके बिना, वह एक नदी, तुम ही भारत हो, हँसि-हँसि पनवा खियओले बेइमनवाँ, तुअ बिनु अनुखन विकल मुरारि, उजास, अनजाना-पहचाना-सा, नौनिहाल। अपनी विशिष्ट भाषा के कारण यह कहानियाँ अत्यंत पठनीय बन पड़ी हैं। उस पर कहानियों में विषय वैविध्यता के कारण यह संग्रह पढ़ते समय पाठक को कभी भी एकरसता में नहीं उलझने देता है। लोक जीवन से पात्र उठाना तथा लोक की झाँकी को अपनी कहानियों में प्रस्तुत करना उषा जी की विशेषता है और यह विशेषता इस संग्रह में भी है। इन बारह कहानियों को पढ़ते समय पाठक उस लोक में सैर करता है, जिस लोक को इन दिनों बिसरा दिया गया है। उषा जी की कहानियाँ लोक की वापसी की कहानियाँ हैं।

000

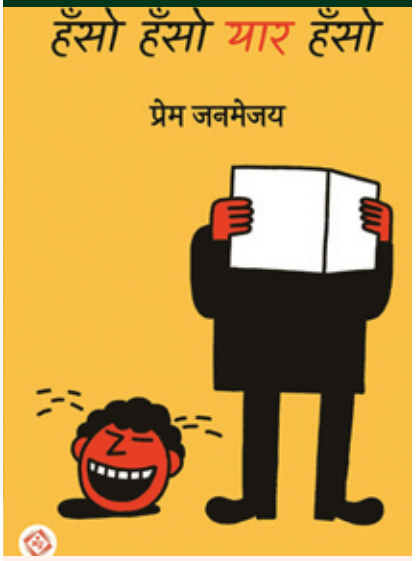

हँसो हँसो यार हँसो

(व्यंग्य संग्रह)

समीक्षक : नरेंद्र मोहन

लेखक : प्रेम जनमेजय

प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर

नरेन्द्र मोहन
डी, एम॰आई॰जी॰ फ्लैट्स
राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
ईमेल- nmohan1935@gmail.com
मोबाइल- 9818749321239

प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य को अपनी ज़िंदगी दे दी है और व्यंग्य ने भी खोल दिए हैं उस के लिए अपने सारे ख़ज़ाने। व्यंग्य का नाम लेते ही जहाँ बड़े-बड़े, साधारण-असाधारण व्यंग्यकार याद आते हैं तो प्रेम जनमेजय भी याद आते हैं जैसे प्रेम व्यंग्य रचना का दूसरा नाम हो।

प्रेम और व्यंग्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक में दूसरा समाया हुआ है जैसे उसकी ज़िंदगी व्यंग्य में उसके होने का हिस्सा हो। इस तरह से नाम अर्जित करने वाले यानी ऐसी कमाई करने वाले लेखक साहित्य के क्षेत्र में विरले ही हैं। इस कमाई में उसका काम, समय, श्रम, सम्मान, नाम - पता नहीं और क्या-क्या जुड़ता गया है कुछ इस तरह कि उन्हें अलगाना मुश्किल है। यह कमाई व्यंग्य-यात्रा में लग कर कई गुना बढ़ती गयी है और हिंदी ही नहीं, भारतीय भाषाएँ भी इस में साँझीदार होती गयी हैं।

प्रेम जनमेजय की व्यंग्य-दृष्टि का फलक बड़ा विस्तृत है - इसमें सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक समेत सांस्कृतिक मसले आ गए हैं। यों तो ये व्यंग्य सीधे ही हैं, कई बार टेढ़ी मुद्रा भी अपना लेते हैं, हल्की चोट करते हैं तो कठोराघात भी, धीरे-धीरे काटने-छीलने वाले हैं तो हलाल करने वाले और फटकारने वाले भी। कई बार व्यंग्य की धार ऊपरी सतह पर नहीं दिखती पर ज़मीन पर लुढ़का हुआ आदमी ही ही करता, कपड़े झाड़ता जब उठता है तो पता चलता है। व्यंग्यकार की तल्ख़ियाँ तो बेशुमार हैं पर उन्हें व्यंग्य-विधान में गूथ लिया गया है। और हाँ, विसंगति के बिना व्यंग्य की क्या औक़ात और कैसी हैसियत, इसे प्रेम बखूबी जानते हैं।

'हँसो हँसो यार हँसो' पढ़ते हुए अनायास रघुवीर सहाय का कविता-संग्रह 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' याद आ जाता है। व्यंग्य-संग्रह के इस नामकरण में रघुवीर सहाय की कई कविताओं ('हँसो हँसो जल्दी हँसो' और 'रामदास') की बेशक कई ध्वनियाँ जुड़ी हों, 'हँसो हँसो यार हँसो' में 'यार' शब्द व्यंग्य और विनोद के साथ अपनेपन और आत्मीयता का पुट लिए हुए है जबकि रघुवीर सहाय के 'हँसी हँसो जल्दी हँसो' में व्यंग्य और विसंगति के विभिन्न स्तरों के साथ आत्म-व्यंग्य की पीड़ा, तल्ख़ी और प्रतिकार का स्वर लिपटा हुआ है। जो हो, इन व्यंग्य निबंधों में एक तरह का साक्षी-भाव है जैसे कोई अभिनेता निर्विकार भाव से किरदार में दाखिल हो और फिर बाहर निकलते ही व्यंग्य की भूमिका में उतर जाए।

व्यंग्य एक खुली फार्म है - भीतर बाहर से स्वतंत्र। कभी इसमें कथा समा जाती है, कभी नाटक; कभी काव्याभिव्यक्ति में इस का कमाल दिखता है तो कभी इसके ज़रिए वृत्तांत के नए-नए रूप सामने आ जाते हैं - कथाओं, नाटकों और कविताओं में। लेकिन व्यंग्य-संग्रहों में व्यंग्य के नाम पर जो टिप्पणियाँ, आलेख, निबंध नुमा जो चीज़ें इधर आ रही हैं, उनमें बहुत मारामारी है - अराजकता की हद तक। इस तरह के व्यंग्य निबंधों में उक्ति-वैचित्र्य का बोलबाला है और चमत्कारी वृत्ति के कहने ही क्या? ऐसे व्यंग्य लेखकों को कौन समझाए कि महज़ वक्र कथन और शाब्दिक चमत्कार व्यंग्य नहीं है। छोटे आकार में ही व्यंग्य अगर ऐसे लेखकों से नहीं निभता तो बड़े फार्म में वे व्यंग्य को भला क्या सँभालेंगे? इसी तरह विचारों का घटाटोप खड़ा करना आसान है, पर विचारों में स्थिति और चरित्र के व्यंग्यार्थ को सृजित करना कठिन लेखकीय कर्म है। छोटे आकार में व्यंग्य की प्रस्तुति हो या बड़े आकार वाली कृति में - विसंगति के आधार के बिना सब चौपट है। प्रेम मंजे हुए उस्ताद व्यंग्यकार हैं। व्यंग्य निबंधों के साथ-साथ उन्होंने व्यंग्य नाटक भी लिखे हैं। वे इस बात को समझते हैं कि वक्र कथन को कथ्य के अनुरूप कैसे ढालना है। एक उदाहरण लें -

- जानते हो एक और गेंद होती है, तीसरा।

- वो कैसी होती है, गुरुवर!

- यह जलेबी की तरह होती है। इसका कोई ओर-छोर नहीं होता।

- तो क्या मैं तीसरा गेंद बनूँ और साहित्य जगत में प्रवेश करूँ?

- नहीं, साहित्य में क्रिकेट के गुर नहीं चलते। तुम तीसरा बनो मत, तीसरे का प्रयोग करो, जैसे अर्जुन ने भीष्म के संहार के लिए किया था ..... लक्ष्य साधने के लिए यदि किसी तीसरे के कंधे का प्रयोग करना पड़े तो निस्संकोच करो, यही धर्म है। हिंदी साहित्य में अनेक शिखंडी हैं, उनका सदुपयोग करो। नए नए चेले पालो, उनके कंधे पर हाथ रखो तो उनका कंधा तुम्हारा हो जाएगा .... उनको अपने वरदहस्त का चंदन दो और भीष्म को निबटाओ' ।

आप ही बताइए व्यंग्य के ज़रिए आलोचना नहीं होगी तो क्या खाक़ होगा? व्यंग्य है तो आलोचना है ही। यह आलोचना व्यंग्य के कथ्य की केंद्रीय धुरी है। विभिन्न विषयों की तहों में प्रवेश करती यह आलोचना व्यंग्य की शक्ति है। प्रजातंत्र के भीड़तंत्र में बदलने के संदर्भ में ज़रा ये पंक्तियाँ देखिए : 'भीड़ तंत्र में भीड़ कहीं पर हो सकती है। कुछ हो जाए तब भीड़ जुट जाती है, कुछ न हो तब भी जुटती है। अब जिसका स्वभाव जुटना हो तो कहीं भी जुटेगा ही, जैसे जिसके स्वभाव में लुटना हो, लुटेगा ही। और जिस प्रजा का स्वभाव लुटना हो - चाहे राजतंत्र हो, प्रजातंत्र हो या फिर 'स्वतंत्र' वो लुटेगी ही' ।

व्यंग्य है तो विचार वैविध्य है ही। विचार है तो समस्याओं की तरफ़ इशारा होगा ही - विश्लेषण-मूल्याँकन भी होगा। कुछ पंक्तियाँ देखिए : 'आज शिक्षा पर हमने बहुत कचरा फैलाया है। यह हम पढ़े-लिखों का कचरा है। न जाने इसके कूड़ेदान का कब स्वच्छता अभियान शुरू होगा। गुरुदेव! आज ११ बजे की क्लास है, चलूँ दीवारों को पढ़ा आऊँ।/ मैंने भी हँस कर कहा 'मेरी शुभ-कामना, कि तुम्हें एक दीवार तो कान वाली मिली है' ।

ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि विचारों से लदे-फदे व्यंग्य की वजह से क्या व्यंग्य-रचनाओं में बिंब की जगह सिकुड़ती नहीं गयी? क्या यह इसलिए हुआ है कि बिंब में ऐन्द्रियता का आधार प्रबल है और व्यंग्य में विचार का? क्या इन व्यंग्य रचनाओं में इसीलिए बिंब के बजाय प्रतीक बाहुल्य है? व्यंग्य और बिंब के अंतर्संबंधों पर प्रेम जनमेजय जैसे सुधी व्यंग्यकार और विचारक विचार कर सकते हैं। बहरहाल, प्रेम के व्यंग्य-विधानों में एक अलग तरह की चमक है - छिपती-दिपती हँसी की छटा जिससे उनके व्यंग्य कोरे विचारों की पोटलियाँ नहीं हैं, उन के बीचोंबीच हँसी की रेखाएँ हैं जो विचारों को रचना में बदलती गयी हैं और आकर्षक बनाती गयी हैं।

'हँसो हँसो यार हँसो' व्यंग्य छोटे-छोटे प्रसंगों, घटनाओं, कहीं-कहीं झीनी-झीनी कथाओं में लिपटे हुए हैं जो इनके अर्थों-आशयों में ध्वनियों का संचार करते गए हैं। 'इस देश में कानून नाम की चीज़ है, तुम थाने में पिटने की रिपोर्ट कर दो कि समरथ को नहीं दोष गोसाईं', यह सुनने पर यह सहज मगर मार्मिक प्रतिक्रिया देखिए : 'वह ज़ोर से हँसा और ज़ोर से कराहा आदमी अपने पर या न्याय पर हँसता है तो दर्द के कारण कराह उठता है। दर्द जितना बड़ा होता है, उसकी मजबूरी उतनी ही उसे हँसने को मज़बूर करती है। आप हँस कर दर्द को टाल रहे होते हैं अपितु अपने मनुष्य होने पर हँस रहे होते हैं। आप हँस रहे होते हैं कि आप मनुष्य का अनमोल जन्म पाए जीव हैं पर अनमोल सुख लग्जरी कार में बैठा कुत्ता उठा रहा है'। तीखी आलोचना वाली ऐसी पंक्तियाँ इस संग्रह की लगभग हर व्यंग्य रचना में मिल जाएँगी। 'मनुष्य होने पर हँसने' के पीछे के व्यंग्य में मानवीय हो पाने की व्यथा-कथा के कितने संकेत छिपे हैं, इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

इस संग्रह की व्यंग्य रचनाओं में लेखक अक्सर रोज़मर्रा के चरित्रों के गिर्द व्यंग्य को खड़ा करते हैं और ऐसा करते हुए वे चरित्रों को व्यंग्य का विषय उतना नहीं बनाते जितना उपहास का। दरअसल, वे उपहास करते हुए व्यंग्य करते हैं और इस तरह चरित्रों की विसंगतियों की सीवनें उधेड़ने लगते हैं। इस में उन की भाषा का रोल भी बहुत ज़बरदस्त है। एक ही वाक्य में वे कई बातें लपेटते चलते हैं गोया वाक्य न हुआ, पैराग्राफ हो गया। ज़ाहिर है ऐसा वाक्य-विन्यास सरल दिखता हुआ भी सपाट नहीं होता! उसकी कई परतें अदृश्य होती है, कई दृश्यमान। कई बार ऐसा एक वाक्य व्यंग्य-रचना की धुरी बन जाता है। स्थितियों और चरित्रों की विसंगति और विडंबना के साथ व्यंग्य प्रयोग देखिए : 'वे न तो गांधीवादी थे और न गाँधी के अनुयायी। इन अज्ञानियों को गाँधी का ज्ञान भी न था, डेढ़ सौ वर्षीय उत्सव का ज्ञान कैसे होता! पर वे जी गांधी का जीवन रहे थे। पखाना खुद साफ़ कर रहे थे। वे केवल लंगोटी जैसा कुछ पहने थे। वे गलियों में इधर से उधर हँसते भाग रहे थे। वे हँस रहे थे या हँसी उड़ा रहे थे। वहाँ इक्का दुक्का बकरी भी मिमिया रही थी। वे जर्जर जीव आज़ादी से पहले के गांधी को, बिना जाने, जी रहे थे और आज़ाद हिंदुस्तान के वोटर थे' ।

इन व्यंग्य रचनाओं के वाक्य-विन्यास की सिफ़्त यह है कि इसमें कुछ कह दिया गया है, कुछ अनकहा छोड़ दिया गया है। जो कह दिया गया है, वह तो दिख ही रहा है, जो अनकहा छोड़ा गया है, वह अर्थ-ध्वनियों से भरपूर है और पाठक को घेरे रखता है। कहे और अनकहे का संतुलन देखने लायक हैं। ध्यान दें - 'सूअर गुरु के बताए मार्ग पर चल पड़ा! उसके अच्छे दिन आ गए थे। अब वह केवल सूअर नहीं रह गया था, बगुला और कुत्ता भी हो गया था। वह थ्री इन वन हो गया था। आज के बाज़ार में ऐसे प्रोडेक्ट की बहुत माँग है। वह बहुत सरलता से मनुष्य योनि पा सकता था। जैसे एक सूअर के दिन बदले, वैसे ही अन्य सूअरों, कुत्तों आदि के भी बदलें।' इसी तरह 'होना, न होना, होने का' व्यंग्य का वाक्य-विन्यास देखिए -' यह प्रजातंत्र की 'ताक़त' है कि गधा भी मुख्यमंत्री बनाया जाता है'। यह वाक्य कोरा उक्ति-वैचित्र्य नहीं है, इस में हर गधे को राधे लाल के चरित्र में उतरता हुआ देख सकते हैं। इस व्यंग्य-रचना के शीर्षक की बुनावट में भी इतना कुछ छिपा है कि न सही एक बड़ा

उपन्यास, प्रेम अगर चाहें तो एक प्रभावी छोटा उपन्यास लिख सकते हैं जिसे उन्होंने अपने जनमेजीय अंदाज़ में एक व्यंग्य रचना में उंडेल कर संतोष पा लिया हैं, हालाँकि न यह रचना छोटी है, न व्यंग्य!

कालिदास के बारे में कहा जाता है - 'उपमा कालिदासस्य'। प्रेम जनमेजय के बारे में कहना चाहे तो इसे 'उपमा प्रेम जनमेजयस्य' कह सकते हैं। उनके हर दूसरे-तीसरे वाक्य में उपमा की छटा देखी जा सकती है। उपमानों की लड़ियों को देख कर कई बार लगता है कहीं ये 'वस्तु' को ही निगल न जाएँ मगर तभी प्रेम उन्हें कथ्य के फोकस में लाने के लिए शिद्दत से जुट जाते हैं। नए नए उपमान 'गढ़ने' में ही नहीं, उन्हें 'जड़ने' में भी उन्हें महारत हासिल है यानी कालिदास और नंददास दोनों एक साथ आधे-अधूरे जो कई बार पूरे होने से बेहतर हैं। उपमानों का संयोजन वे इस प्रकार करते हैं कि रचना की अंतर्वस्तु तो खिल ही उठती है, उसका सौंदर्य भी बढ़ जाता है और जब उसमें वक्र कथन की धार आ जुड़ती है तो उसकी चौतरफा मार का अंदाज़ा आप लगा सकते हैं -

मैंने राधेलाल से पूछा - 'तू इतना डरा हुआ क्यों है?'

- 'तू नहीं डरा हुआ क्या?'

- 'इतना तो नहीं जितना तू डरा है'?

- 'सच बोल कर देख, चारों तरफ़ से डराने वालों से घिर जाएगा।'

- 'मैं ज़्यादातर सच ही बोलता हूँ'।

- 'तू ज़्यादातर या तो न्यायालय में बोला जाने वाला सच बोलता है, या फिर युधिष्ठिरी सच। ज़रा अपने गिरेबाँ में झाँक'

मैंने अपने गिरबाँ में झांका तो बदबू से उबकाई आ गयी।

राधे लाल ने भयभीत आँखों से मेरा हाथ पकड़ा और थाने में बयान-सा हकलाया - 'रात में मुझे आम चुनाव के डरावने सपने आते हैं। ये टल नहीं ....' और बाज़ारवादी लिटरेरी फेस्टीवल के बेस्ट सेलर युग में, मुझ पिछड़े व्यंग्यकार को मैथिलीशरण गुप्त याद आ रहे हैं -

'हम क्या थे और क्या होंगे अभी' (पृष्ठ-७९)

इस पर अगर ध्यान न दें कि 'न्यायालय में बोला जाने वाला सच बोलता है या फिर युधिष्ठिरी सच' जो पहले भी किसी रचना में आ चुका है, यह व्यंग्य-रचना सीधे सीधे विसंगत, विद्रूपित, विडंबनात्मक भारतीय समाज की तस्वीर को राधेलाल के ज़रिए बड़े सटीक ढंग से पेश करती है। कथ्य और भाषा का ऐसा बेजोड़ संयोजन कम लेखकों में नज़र आएगा।

इन व्यंग्य रचनाओं की निचली परतों में झाँकें तो पाएँगे कि ये रचनाएँ ऐसी हैं जो रघुवीर सहाय की कविताओं के विसंगति-बोध की याद दिलाती हैं, ख़ास तौर से यह पैराग्राफ देखिए जो 'राधे लाल भयभीत-सा देश के चौराहे पर खड़ा था' से शुरू होता है और 'राधेलाल देश का आम नागरिक है - हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, दलित, सवर्ण आदि नहीं' पर ख़त्म होता है। यहाँ बातें इस तरह नत्थी होकर संश्लिष्ट रूप में सामने आती हैं कि एक सिलसिला बन जाता है और व्यंग्य भी इस सिलसिले से जुड़ा शिफ्ट करता हुआ अक्सर एक शिखर रचने लगता है। इसमें जब हँसी के रंग और शेड्स आ मिलते हैं तो उस से जो निखार आता है, उसके लिए कोई एक शब्द देना मुश्किल है। यहाँ हँसी कई रूपों, कई अर्थ-छवियों और कई नज़रियों के साथ आई है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए :'आप हँसते हैं कि अच्छे दिन एक सपना हैं, फिर भी उसे सत्य मानते हैं। तभी तो रघुवीर सहाय आप की हँसी को लक्षित कर कहते हैं - जैसे ग़रीब पर किसी ताकतवर की मार/जहाँ कोई कुछ नहीं कर सकता/उस ग़रीब के सिवाय/और वह भी अक्सर हँसता है। प्रेम जनमेजय सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक विसंगतियों के भीतर तक पैठ बनाए रखते हैं, इसीलिए उनकी व्यंग्य रचनाएँ भयावह विसंगति के सच के क़रीब आ खड़ी होती हैं - मंद-मंद मुस्कराती, व्यंग्य को प्रकाशित करतीं। व्यंग्य में हँसी की यह नाज़ुक लक़ीर, कुछ न कह कर भी, बहुत कुछ कह ही जाती है।

000

नई पुस्तक

कोरोना काल की दंश कथाएँ

(निबंध संग्रह)

लेखक : अजय बोकिल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

इस किताब में कोरोना काल को पचास से भी अधिक निबंधों के माध्यम से चित्रित किया है वरिष्ठ पत्रकार अजय बोकिल ने। किताब के बारे में वरिष्ठ साहित्यकार श्री डॉ. प्रताप राव कदम कहते हैं- कोरोना महामारी ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, जिसमें पत्रकारिता भी शामिल है। इस बात की तस्दीक इस पुस्तक के आलेखों से की जा सकती है। बोकिल के लेखन का फलक व्यापक है, जहाँ वे 'मीडियागिरी' और 'माफियागिरी' की मिटती लक्ष्मण रेखाओं के लिए चिंतित हैं,वहीं 'काम वाली बाई' और 'मैडमजी' के बीच रिश्तों की टूटती डोर को लेकर भी व्यथित हैं। अजय बोकिल के राडार पर हर घटना अपने ख़ास अंदाज़ में दर्ज होती है। इस रपटीले समय में जब ज़्यादातर लोग 'शरणागत' हो चुके हैं, तब मुझे विश्वास है कि यह संग्रह कोरोना काल की त्रासदी तथा राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मानवीय मूल्यों को समझने में सहायक होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

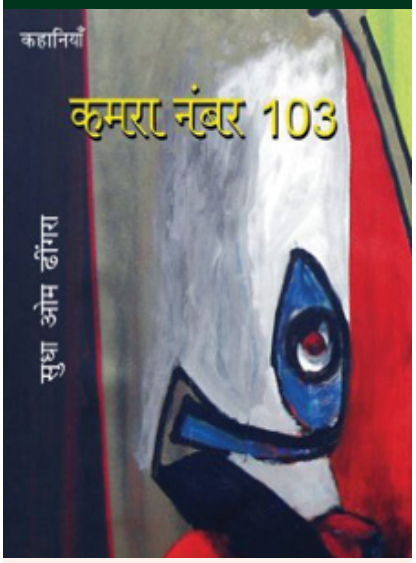

कमरा नंबर 103

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर- 142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली- 110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

लंबे समय से विदेशों में बसी सुधा ओम ढींगरा हिन्दी साहित्य में कोई अनजाना नाम नहीं हैं। कविता, कहानी, उपन्यास के साथ संस्मरण, लेख और इंटरव्यू जैसी अनेक विधाओं में साहित्यिक रचना करने वाली सुधा ओम ढींगरा ने कहानी क्षेत्र में स्वयं को प्रमुखता से स्थापित किया। अनेक सम्मानों से सम्मानित सुधा ढींगरा की अनेक पुस्तकों का अनुवाद पंजाबी में भी हुआ। सुधा ढींगरा का कथा साहित्य देश-विदेश की स्थितियों, परिस्थितियों और हालातों को अपने कथानक में अत्यन्त सहजता से समेटता रहा है।

प्रवासी लेखकों के लिए हमेशा से यह समस्या रही कि वे किस ओर रह कर लेखन रचना करें। उनके लिए अपने देश की जड़ों से टूटना कभी संभव नहीं रहा। जहाँ एक ओर अपने देश की पुरातन सभ्यता-संस्कृति से जुड़े होने के कारण उसकी श्रेष्ठता का गुणगान करना वह अपना नैतिक कर्त्तव्य समझते रहे, वहीं प्रवासी जीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए उन्हें विदेशी धरती पर अपने पाँव जमाने में कई मुश्किलों से जूझना भी पड़ा। इसलिए प्रवासी साहित्य अधिकतर एक न एक पक्ष की ओर सदा झुका नज़र आया। जब मुश्किलों व कठिनाइयों ने जीना दूभर किया, तब-तब अपने देश की हवा, खान-पान और यहाँ बिताए जीवन ने उन्हें वहाँ रुलाया। लेकिन जैसे ही वहाँ की धरती पर उनके पाँवों की पकड़ मज़बूत हुई, तब यहाँ के जीवन-मूल्य और सामाजिक व्यवहार पाखंड और दिखावा अधिक प्रतीत होने लगे। फिर प्रवासी साहित्यकारों की लेखनी में वहाँ की व्यवस्थाओं की पैरवी भी दिखाई देने लगी। देखने में यह भी आया कि बहुत कम प्रवासी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में पूर्व व पश्चिम के संतुलन को कायम किया। सुधा ओम ढींगरा उन कमतर लेखकों में गिनी जा सकती है, जिन्होंने बिना वजह किसी भी एक पक्ष का गुणगान नहीं किया। उन्होंने अपनी कहानियों के केन्द्र में समय की परिस्थितियों को रखा। उन परिस्थितियों के अनुरूप पात्रों का चयन किया और उन्हें पूर्णता तक पहुँचाया।

प्रवास में रहने से वहाँ के वातावरण के खुलेपन के एहसास से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। इसीलिए वहाँ रहने वालों में समस्याओं को एक ही पहलू से देखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। उन्होंने न केवल समयानुसार व स्थिति वश अपना नज़रिया बदला बल्कि सिक्के के दूसरे पहलू से भी उसे समझने की कोशिश की। जब प्रवास में रहने वाला सामान्य व्यक्ति विचारों को नए दृष्टिकोण से देखने की हिम्मत कर सकता है तो एक साहित्यकार अपने आप में वैसे ही

समय से आगे जाकर सोचने की कुव्वत रखता है। इस विचारानुसार से भी कुछ प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं में नए विषय और नई परिभाषाओं ने अपना स्थान बनाया।

सुधा ओम ढींगरा के कहानी-संग्रह "कमरा नंबर 103" का अध्ययन करते हुए उपरोक्त कई बातों द्वारा उसने अपनी रचनाओं से ध्यान खींचा। संग्रह में शामिल कुल सात कहानियाँ अलग-अलग द्वार खोलतीं और पाठकों को नई अनुभूतियों सहित इस बात का एहसास करवाने में देर नहीं करती कि अनेक बरसों से प्रवास में रहने वाली लेखिका का दृष्टिकोण अत्यन्त खुलेपन वाला और नए विचारों से परिपूर्ण होने के साथ-साथ किसी के प्रति भी पक्षपात को निकट नहीं आने देता।

संग्रह की पहली कहानी "आग में गर्मी कम क्यों है ?" सामयिक विषयों में सबसे अधिक विमर्श का मुद्दा बना समलैंगिकता से संबंधित है। सुखी विवाहित जीवन जीने, तीन बच्चों की भरी-पूरी गृहस्थी वाले साक्षी-शेखर की ज़िंदगी में ऐसा अचानक क्या हुआ कि शेखर, साक्षी को इस जहान में एकदम अकेला छोड़ कर चला गया। उसने गाड़ी के नीचे आकर अपने जीवन का अंत कर लिया और केवल एक छोटा सा पत्र पुलिस और साक्षी के लिए छोड गया। शेखर की अंत्येष्टि के समय बड़ी संख्या में भारतीय समुदाय के उनके मित्र व जान-पहचान वाले अंत्येष्टिगृह में मौजूद साक्षी को धीरज देने के लिए एकत्रित हुए और साथ ही शेखर की आत्महत्या के कारण को जानने की उत्सुकता को भी दबा नहीं पाए। साक्षी का पत्थर की मूरत बने बैठे रहने पर, कई लोगों की खुसर-पुसर और साक्षी की सहेली मीनल के संकेतों से कारण "समलैंगिकता" का मामला सामने आया। पिछले कुछ समय में शेखर अपने सहयोगी जेम्ज़ के प्रति आकर्षित हुआ और दोनों में गहरे शारीरिक संबंध स्थापित हुए। एक दिन अचानक जब साक्षी ने अपने ही बिस्तर पर उन दोनों को अंतरंग क्रियाओं में लिप्त देख लिया तो यह सच्चाई सामने आई। साक्षी की भीतरी औरत ने इस अपमान को बामुश्किल बदर्शत किया। जेम्ज़ के किसी दूसरे शहर के स्थानांतरण और किसी दूसरे के साथ संबंध को शेखर स्वीकार नहीं कर पाया और उसने आत्महत्या कर ली।

लेखिका ने इस प्रकार के गे संबंध को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सामने लाने की कोशिश की। जहाँ उसने शेखर के ऐसे संबंध को शरीरिक रसायनों की रोशनी में, मेडिकल के नए अध्ययन सहित साक्षी और पाठकों के समकक्ष रखा, वहीं साक्षी को अंदर तक टूटते और ठगा हुआ महसूस करते भी दर्शाया। शेखर की आत्महत्या से साक्षी के अंदर कई प्रश्नों ने सिर उठाया कि क्या जेम्ज़ के साथ उसके संबंध इस कदर गहरे थे कि वह उसकी जुदाई बर्दाश्त नहीं कर पाया ? तो साक्षी के साथ उसका इतने वर्षों के वैवाहिक जीवन और तीन बच्चों की गृहस्थी ने शेखर के भीतर कोई रिश्ता, कोई एहसास पैदा नहीं किए थे, जो वह इतनी आसानी से केवल एक पत्र के माध्यम से उनसे नाता तोड़ कर इतनी दूर चला गया ? परन्तु साक्षी अपने तीन छोटे-छोटे बच्चों की ज़िम्मेवारी के कारण केवल अपने बारे या अपनी दुर्दशा, अपनी टूटन के बारे में सोच नहीं सकती। वह एक माँ है, एक औरत हैं, जो इतनी जल्दी हार नहीं मान सकती। सबसे बड़ी बात, वह केवल अपने बारे में नहीं सोच सकती। वह कमज़ोर औरत नहीं, इसलिए अंत्येष्टिगृह से बाहर निकलते हुए सिर झुकाए जेम्ज़ को देखकर भी उसने उसे अनदेखा कर दिया। उसे जेम्ज़ के साथ किसी बेकार के झगड़े में उलझने के लिए भी वक्त बर्बाद नहीं करना। स्त्री की यह मज़बूती उसे भारतीय मूल्यों से जोड़ती हैं, जिसे प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों से माथा जोड़ना भी आता है और फोड़ना भी आता है।

एक अन्य कहानी "टॉरनेडो" पूर्व और पश्चिम दोनों संस्कृतियों अधीन एक ही समय और एक जैसी परिस्थितियों में भी अलग-अलग व्यवहार को स्वाभाविकता से प्रगट कर, भारतीय मूल्यों को सराहते और उनकी कद्र करती हैं, जिसमें भारतीय स्त्री अपने स्वार्थ या हित से अधिक अपनी संतान के बारे में, उसकी अच्छी परवरिश और भविष्य को सँवारने के बारे में सोचते, उन पर अमल करते हुए अपनी जवानी को भी भुला देती है। जवानी की अवस्था में, पति की अचानक मृत्यु के बाद वंदना की सारी दुनिया अपनी बेटी सोनल के इर्द-गिर्द ही घूमने लगी। वहीं सोनल की हमउम्र क्रिस्टी ने अपनी माँ जैनेफर की अनेक पुरुष मित्रों से दोस्ती ही देखी। जैनेफर की नज़र में वंदना के पुरुष मित्रों का न होना, उसका एबनार्मल होना है। जैनेफर मित्र बदलती रही और क्रिस्टी, सोनल की माँ के साथ अधिक जुड़ती गई। किशोरावस्था से बालिग होने तक माँ के पुरुष मित्रों ने क्रिस्टी को भी कोंचना चाहा। माँ से इस बात की शिकायत करने पर भी जैनेफर कुछ बेपरवाह सी बनी रही। अंत में क्रिस्टी वंदना और सोनल को, माँ से दूर जाकर रहने के फ़ैसले को बता, वहाँ से चली गई। एक ही परिस्थिति से गुज़रते हुए भारतीय स्त्री के लिए उसकी संतान अधिक मायने रखती है जबकि पश्चिमी सभ्यता अधीन निज-सुख की अहमीयत अधिक दिखाई देती है। पश्चिमी स्त्री जैनेफर यह सोच नहीं पाती कि एक जवान स्त्री, किसी पुरुष के संसर्ग के बगैर कैसे रह सकती है, इसलिए वह उसकी नज़र में 'एबनार्मल' है।

इस संदर्भ में लेखिका ने भारतीय स्त्री की अस्मिता की गरिमा को नाटकीय अंदाज़ से प्रस्तुत नहीं किया, केवल घटनाओं के माध्यम से इस परिस्थिति को दो अलग विचारधाराओं और सोच द्वारा साकार किया। पितृविहीन छोटी बच्ची भी यह बात जल्दी समझ जाती है कि उसकी माँ का व्यवहार सोनल की माँ के व्यवहार से अलग है। हालाँकि वह पश्चिमी सभ्यता में साँस लेती है। यदि क्रिस्टी के सामने अपनी हमउम्र सोनल का उदाहरण न होता तो शायद वह इस अंतर को न समझ पाती और ना ही जल्दी महसूस कर पाती। बेटी ने माँ को कई बार समझाने की कोशिश की परन्तु उसकी माँ के लिए पुरुष मित्र के बगैर रहना शायद उसकी सोसाइटी में उसकी हीनता को उजागर करता। इस सोच के पीछे कई कारण हो सकते हैं। कारण कुछ भी रहें, स्पष्ट यह है कि संतान की अच्छी परवरिश के लिए अभिभावकों को बहुत त्याग व बलिदान करना पडता है। यह कर्त्तव्य तब और भी बढ़ जाता है, जब दोनों में

से कोई एक ही रह जाए।

विदेशों में बसने का सपना पता नहीं क्यों एशिया वासियों के लिए जीवन से भी बड़ा सपना बन चुका है। इस क्रम में भारतीय दो कदम आगे ही हैं। विदेशों में बसे अधिकतर भारतीय परिवार अपनी संतान का विवाह भारत में, यहाँ के वर या वधू से करने को आज भी अहमीयत देते हैं। यहाँ बसे भारतीयों के लिए विदेश में बसे किसी भारतीय लड़की से लड़के से शादी करना विदेशों में बसने का आसानी से मिलने वाला लाइसेंस साबित होता हैं। किसी उद्देश्य को लेकर रची गई ऐसी शादियाँ बहुत बार नाकामयाब भी साबित होती है। हमारा हिन्दी और पंजाबी साहित्य ऐसे अनेक क़िस्सों-कहानियों से भरा पड़ा हैं। ''वह कोई और थी'' कहानी इस मुद्दे को लेकर सामने आती है। भारत के गरीब-शरीफ परिवार के अभिनंदन की शादी प्रवासी सपना से हुई और अत्यन्त शीघ्रता से किए गए विवाह का कारण यह था कि सपना के लिए अच्छी और संस्कारी लड़की का नाटक अधिक समय तक खेलना संभव नहीं था। उसे इस बात का अत्यन्त अंहकार था कि वह विदेश में रहती है और भारतीय विवाहित पुरुष ग्रीन कार्ड मिलने तक उससे दब कर रहेगा और वह अपनी मनमर्ज़ी से उसे नचा सकेगी। इसी कारण विवाह के तुरन्त बाद ही अच्छे-भले अभिनंदन को उसने 'नंदू' में परिवर्तित कर दिया और उस पर ऐसे हुक्म चलाने लगी, जैसे सच में वह उसका कोई नौकर हो। बात-बात पर सपना द्वारा अभिनंदन को बेइज़्ज़त करना, उसकी ग़रीबी का मज़ाक उड़ाना और इस बात की चाबुक मारना कि वह अपनी बहनों और माँ-बाप को यहाँ बुलाना चाहता है जबकि वह उसे ऐसा हरगिज़ नहीं करने देगी। वह पति को बार-बार इस की भी धमकी देती कि ग्रीन कार्ड मिलने पर भी, यदि उसने सपना से पीछा छुड़ाने की बात कोशिश की तो उसकी शिकायत कर, उसका ग्रीन कार्ड रद्द भी करवा देंगी।

शरीफ और संस्कारी अभिनंदन ने हमेशा, सपना को इस बात का यकीन दिलाया कि उसने परिवार को विदेश में बसाने के लिए उससे शादी नहीं की परन्तु सपना ने कभी उस की बात पर भरोसा नहीं किया। सपना के पिता भी बेटी की हाँ में हाँ मिलाते रहे, जबकि उसकी माँ समझती थी कि बाप-बेटी दोनों ही ग़लत हैं और वह शरीफ अभिनंदन के साथ अत्यन्त ज़्यादती करते हैं। परन्तु एक दिन अभिनंदन के सब्र का बाँध टूट गया और वह अपना पासपोर्ट ले, यह कहते हुए वहाँ से चला गया कि, उसने जिस लड़की से शादी की थी, वो कोई और थी, तुम नहीं थी....।

संबंध कोई भी हो, उसे इतना नहीं खींचना चाहिए कि वह अंत में टूट ही जाए। सपना ने भारतीय लड़कों को अपना नौकर समझा जबकि उसका पति इस बात का इंतज़ार करता रहा कि कभी तो इस लड़की के स्वभाव में बदलाव आएगा। लेकिन जब उसे इस बात की समझ आ गई कि सपना असंवेदनशील और स्वार्थी व अंहकारी लड़की है, इस पर किसी की अच्छाई प्रभाव नहीं डाल सकती, तब ग्रीन कार्ड मिलने का इंतज़ार किए बिना ही वह उसे छोड़ कर वहाँ से निकल गया।

''और बाड़ बन गई'' नामक कहानी में पड़ोस में आने वाले नए पड़ोसी को लेकर पुराने पड़ोसियों में उत्सुकता हैं कि कुछ अर्से से बगल के खाली पड़े बँगले में कौन आ रहा हैं। एक दिन सामान उतरते देख बगल के दो पड़ोसी परिवार अपने लॉन में चाय-नाश्ता करते हुए नए पड़ोस के बारे में अटकलें लगाना आरंभ करते हैं। वे चाहते हैं कि इस बँगले में पहले की तरह कोई ऐसा परिवार आकर बसे, जिससे उनका अत्यन्त निकट का नाता बन गया था। तब निकटता के कारण ही अलग-अलग देशों के परिवार भी आपस में बेहद घुल-मिल गए थे। मनु-पारुल और जीवा-रुबिन दोनों दंपति की नज़र पड़ोस परिवार के मालिक को एक नज़र देखने और उससे बात करने की है, परन्तु उन्हें कोई नज़र नहीं आता। केवल सामान ढोने वाले ही अंदर-बाहर आते जाते दिखाई देते हैं। देखते ही देखते एक ही दिन में सामने से खुले बँगले और आपस में जुड़े बँगलों के मध्य एक दीवार खड़ी होने लगती हैं। यह दीवार सीमेंट की नहीं, बल्कि ड्राईवे में मध्यम कद के फाइकस के वृक्ष के बड़े- बड़े गमले दस-दस फुट की दूरी पर रख दिए गए, अब बगल के पड़ोस एकदम पास होते हुए भी उन्हें देख नहीं सकते। नए मालिक ने सोसाइटी का उल्लंघन भी नहीं किया और अपने आस-पास वालों के साथ, गमलों की बाड़ द्वारा एक दूरी कायम कर ली। खिड़कियों पर भी साइज़ के अनुसार ब्लांइडंस लगने लगे। दोनों परिवार नए पड़ोस की एक झलक देखने को बेताब हुए जा रहे हैं, पड़ोस होने के नाते उसका स्वागत करने को तत्पर हैं जबकि घर खरीदने के साथ ही नए मालिक ने उन से दूरी बनाने का सारा बंदोबस्त कर लिया है। उनके जानकार नेचर्ज क्रिएशन नर्सरी के मालिक अनिल गांधी से उन्हें मालूम हुआ कि किसी भारतीय व्यापारी ने बगल का मकान खरीदा। काम के सिलसिले में वह अक्सर बाहर ही रहता है।

भारतीय पड़ोस सुनने पर जहाँ मनु-पारुल को प्रसन्नता हुई, वहीं उसके द्वारा बनाई गई दूरी से उनका उत्साह धीमा पड़ गया। अगर उसे यहाँ रहना ही नहीं तो कहीं पहाड़ आदि पर एकांत में घर ले लेता, यहाँ की सुन्दरता बाड़ लगा कर क्यों ख़राब की। मनु को लगता है कि, ''कुछ भारतीय अमेरिकयों से अधिक अमेरिकी बनने की कोशिश करते हैं। उनकी तरह वह बन नहीं पाते और भारतीय वह रहते नहीं है।'' मानसिकता को बयान करती यह कहानी अत्यन्त खूबसूरती से अपनी बात कह जाती है।

युवावस्था में घटी एक घटना ने जशन के जीवन का सुख-चैन छीन लिया और उसे इतना अकेला और उदास कर दिया कि एक सफल डॉक्टर बनने के पश्चात् भी, वह उस घटना के प्रभाव से निकल नहीं पाया। बरसों से एक ही सपना प्रतिदिन आकर उसे डराता रहा और वह अपने सामने खड़ी इरा कोडा को देख कर, चीख-चीख कर इस बात की सफाई देता रहा कि वह बलात्कारी नहीं। परन्तु उसे लगता कि इरा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से केवल उसे घूरती रहती है और उससे उत्तर चाहती है। स्कूल के समय से वह पड़ोस की छोटी जात की लड़की इरा कोडा के साथ खेल कर बड़ा हुआ था। उसके सनातनी ब्राह्यण

परिवार को उसकी इरा से दोस्ती कभी रास नहीं आई। परन्तु उसे इस बात का कतई एहसास नहीं था कि उसके अपने परिवार ने ही उसके साथ ऐसी साजिश रची कि वह हमेशा के लिए अकेला और निराश हो गया। स्कूल की पढ़ाई ख़त्म होते ही जब इरा उसके घर आई, तब वह घर में अकेला था। दोनों उम्र के बहाव में अचानक बह निकले। दादी ने इरा को घर से निकलते देख लिया। फिर क्या हुआ जशन नहीं जानता, घरवालों ने उसे आनन-फानन विदेश उसके चाचा के पास रवाना कर दिया, क्योंकि इरा ने उसे बलात्कारी कह, उसकी शिकायत पुलिस में कर दी थी। सारी उम्र वह स्वयं को बलात्कारी मान, खुद को कोसता व दोष देता रहा। जबकि बरसों बाद सायास मिली इरा ने उसे बताया कि यह सारा षड्यंत्र उसकी दादी ने रचा और दोनों को एक-दूसरे से दूर करने के लिए यह साजिश की गई। इस ''दृश्य भ्रम'' ने जशन की ज़िंदगी बदल दी। जबकि इरा ने उसे प्यार किया और चाहा। उस दिन दोनों के बह जाने के परिणामस्वरूप उसकी अब युवा बेटी है, जिसके बारे में इरा जशन को बताना चाहती थी। यह सच्चाई जान जशन हैरान रह गया और उसने इरा और अपनी बेटी को तुरन्त अपना लेने का निश्चय कर लिया।

यह कहानी कुछ नाटकीयता लिए प्रतीत होती है, घटनाक्रम का एकदम से इस कदर बदल जाना और लंबे समय तक जशन और इरा का न मिल पाना और फिर अचानक एक रोगी के रूप में इरा का जशन को इस सच्चाई से अवगत करवाना, बहुत कुछ स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। परन्तु यह सच है कि लेखिका ने जातिवाद की उस जकड़ को बतलाने का प्रयास किया, जिसकी पकड़ से अधिकतर पढ़े -लिखे लोग भी निकल नहीं पाए।

''सूरज क्यों निकलता है'' जैसी कहानी ऐसे निठल्लों की कहानी है, जो जीवन में केवल और केवल खाने-पीने और सोने के लिए ही पैदा होते हैं। जेम्स और पीटर जैसे निकम्मों की कमी कहीं भी नहीं हैं। जिस पश्चिम को लेकर एशियावासियों के मन में भक्ति भावना रही है और वे मानते हैं कि यदि धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वह केवल इंग्लैंड और अमेरिका या कनाडा में ही है। इसलिए वे बाहर विदेशों की ओर भागना चाहते हैं। उन्हें लगता कि बस एक बार वे लोग वैध या अवैध ढंग से विदेशी धरती पर पहुँच जाएँ, फिर तो उनका जीवन सफल हो जाएगा। उन्हें किसी किस्म की कमी नहीं रहेगी। ऐसे स्वर्ग जैसे पश्चिम में जेम्स और पीटर या उनके परिवार के अन्य सभी निखट्टू सदस्यों समान और भी लोग दुनिया के सबसे अमीर देश में भी बसते हैं और भीख माँग कर गुज़ारा करते हैं। सबसे पहले तो लेखिका इस कहानी के माध्यम से पश्चिम के बारे में बने भ्रम को तोड़ती है। वहाँ सब अच्छा ही अच्छा नहीं हैं, वहाँ भी कुछ ऐसे इलाके हैं, ऐसी बस्तियाँ और लोग हैं, जिन्हें इस स्वर्ग का कोई अंदाज़ा नहीं और ना ही वे खुद को इस काबिल समझते हैं। जिनके जीवन का उद्देश्य बस बैठ-बैठ कर जीना है। लेकिन बिना हाथ-पैर, हर तरह का अच्छा खाना-पीना और ऐशो-इशरत पर वे अपना अधिकार समझते हैं। आलस इतना कि चूहे और क्राकरोच भी उन पर कूद-फाँद कर सकते हैं। उन्हें इस बात से भी परेशानी है कि आख़िर सूरज क्यों निकलता है, जिसके निकलने से दुनिया के सारे काम-धंधे शुरू हो जाते हैं, लोग अपने कामों पर लग जाते हैं। दुनिया के ऐसे इंतहाई बेशर्म लोग सूरज तक को बदर्शत नहीं कर पाते। जेम्स और पीटर अपने रोज़गार-भत्ते को बेच-बाच कर क्लब जाने का जुगाड़ बिठा लेते हैं, शराब पी, दो लड़कियों के साथ रात बिताने का मौका भी उनके हाथ लग जाता है परन्तु शराब के नशे में लड़कियाँ पैसे ले उड़ीं और सिक्योरिटी गार्ड्स के डंडे खाकर वे लोग वही लुढ़क गए। अगले दिन वे फिर से भीख माँगने के अपने पुश्तैनी धंधे से लग गए।

संग्रह के शीर्षक वाली कहानी 'कमरा नंबर 103' एक अलग अंदाज़ में लिखी हुई है। अब देश, स्थान कोई भी हो, बुढ़ापे में माता-पिता की हालत अत्यन्त तरस योग्य होती जा रही है। युवा संतान, अपनी घर-गृहस्थी सँभालते हुए, अच्छी नौकरियों पर लगे हुए भी चाहती है कि माँ-बाप उनका ध्यान रखें। माँ -बाप हर समय उनके बारे में ही सोचें। उनके लिए ही जिएँ-मरें.... और वे खुद माँ -बाप के लिए बिल्कुल कुछ न करें। लगता है, भारतीय परिवारों में माँ-बाप द्वारा अपनी संतान की इतनी अधिक देखभाल किए जाने के कारण ही संतान यह सोचने लगी है कि वे बच्चे हैं और माता-पिता का फर्ज़ है, सारी उम्र उनकी देखभाल करना। लेकिन ऐसे ज़िम्मेवार माता-पिता को इस बात का अनुमान बिल्कुल नहीं था कि उनकी संतान की माँगें समय के साथ बढ़ती ही जाएँगी और उनका बुढ़ापा भी बर्बाद कर देंगी।

बार्नज़ हस्पताल में कोमा में पड़ी कमलेश वर्मा की तीमारदारी करते हुए टैरी और ऐमी नर्सें आपस में बतियाते हुए इस बात पर अफसोस प्रगट करती हैं कि विदेशों में अपने बुज़ुर्ग माँ -बाप को बुलाकर उनके साथ अत्यन्त अन्याय करते हैं। बुज़ुर्ग लोग यहाँ अपनी उम्र के आख़िरी पड़ाव में पहुँच कर बेगाने देश में अपनी बोली और अपने खान-पान को तरसते ही यहाँ से चले जाते हैं। इस दौरान वह ऐसे कई बीमारों का ज़िक्र करती हैं, जो आख़िरी समय में बहुत दुखी होकर, हस्पतालों में अपनी मौत का इंतज़ार करते हुए मर जाते हैं और अनेक बार इन बुज़ुर्ग को देखने के लिए भी उनकी संतान नहीं आती।

नर्सों की आपसी बातचीत सुन, कोमा में पड़ी कमलेश वर्मा का अवचेतन अपनी ज़िंदगी का अवलोकन करने लगता है। उसे धीरे-धीरे याद आने लगा कि कैसे उसके बेटे -बहु ने उसकी भावनाओं से खिलवाड़ किया और उसे अपने घर और बच्चों की नौकरानी बना दिया। इतने पर भी बस नहीं, एक दिन पुत्र ने उसकी चैकबुक ढूँढ़ निकाली और फिर से ताना मारते हुए कहा कि 'हम यहाँ पैसे-पैसे के लिए मोहताज़ है और भारत के बैंक में आपके नाम पर लाखों जमा है। जब आपके बाद यह पैसा मुझे ही मिलना है तो अभी क्यों नहीं....।' उसके बाद कमलेश वर्मा को होश नहीं रहा और बेटा-बहू उन्हें यहाँ हस्पताल में दाखिल करवा गए, उसके बाद कभी नहीं आए।

नर्सों की बातों से कमलेश वर्मा सुन-समझ

पा रही थी कि प्रवास में बसने वाले अधिकतर भारतीय बुढ़ापे में माँ-बाप को यहाँ बुला कर, उन से नौकरों समान काम लेते हैं। उनकी पेंशन पर भी कब्ज़ा कर लेते हैं। एक कमलेश की संतान ही नहीं, उस जैसे और भी बूढ़े माँ-बाप को बेबी सीटर या नौकरों सा काम ले अपने पैसे बचाते हैं। एक ओर रिश्ते-नाते और भावनाओं की दुहाई देने भारतीय परिवार, व्यावाहारिक तौर पर जिन में संवेदनाओं और भावनाओं की कोई कद्र नहीं और दूसरी ओर प्रैक्टिल ढंग से जीने वाले पश्चिमी लोग, जो किसी प्रकार का बखान या दिखावट नहीं करते, परन्तु मानवीय पक्षों की कद्र करना उन्हें बेहतर ढंग से आता है। अलग-अलग हस्पतालों में काम करने वाली और अपनी सहयोगी भारतीय नर्सों की बातों और रोगियों की दयनीय अवस्था को जानने-समझने वाली टेरी और ऐमी को इस बात का अफसोस होता है कि भारतीय लोग अपने बूढ़े माँ -बाप को अनजाने देश, अनजानी भाषा और खान-पान के बीच अकेला छोड़ देते हैं, इससे तो अच्छा होता कि वे लोग इन्हें भारत में ही किसी वृद्धाश्रम में छोड़ देते तो कम से कम वे अपने लोगों के बीच अपनी भाषा में बातचीत करके अपने मन का भार हल्का कर लेते। नर्सों की बातों ने चिरनिद्रा में सोई कमलेश को जैसे होश आ गया, केवल बीमारी की अवस्था से ही नहीं शायद अपनी स्थिति को वह आज पहले से अधिक सही ढंग से देख और समझ पाने की स्थिति में आ गई थी।

सुधा ओम ढींगरा की सभी कहानियाँ एक संतुलन रख कर आगे बढ़ती हैं। सभी विषय सामयिक मुद्दों से जुड़े हुए हैं। अनेक वर्षों से प्रवास में रहने के कारण वहाँ के अनेक पात्रों को लेखिका ने केन्द्र में रखा है। कमरा नंबर 103 में नर्सें टैरी और ऐमी, टॉरनेडो में जैनेफर और क्रिस्टी, सूरज क्यों निकलता है... में जेम्स और पीटर इत्यादि कई विदेशी पात्रों को लेखिका ने यथास्थान रखा और उनके चरित्रों को स्थितियों अनुसार ही प्रस्तुत किया। अन्य पात्रों और चरित्रों को भी लेखिका ने संतुलित ढंग से पेश किया।

000

पुस्तक समीक्षा

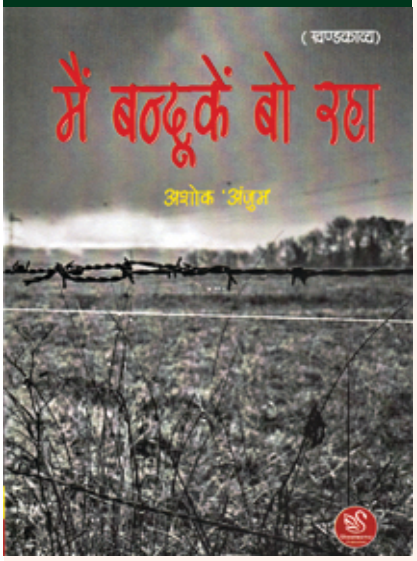

मैं बंदूकें बो रहा

(खण्ड काव्य)

समीक्षक : वेदप्रकाश अमिताभ

लेखक : अशोक अंजुम

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

अशोक अंजुम की कारयत्री प्रतिभा का नया आयाम है-'मैं बंदूकें बो रहा'। इस बार उन्होंने खंड काव्य लिखने का बीड़ा उठाया है। भगत सिंह पर आधारित यह खंड काव्य दोहा छंद में रचित है। भगत सिंह पर लिखने के दो कारण 'ये जो किताब है न...' शीर्षक भूमिका में हैं। रचनाकार को एक ओर तो भगत सिंह जैसा कोई देशभक्त नज़र नहीं आता, दूसरी ओर राष्ट्र सेवा में ही सुख की अनुभूति करने वाला यह आदर्श चरित्र आज भी प्रासंगिक, विशेषत: युवाओं के लिए प्रेरणाप्रद लगता है। अत: स्वाभाविक है कि इस कृति में भगत सिंह के आत्मसंघर्ष, साम्राज्यवाद-विरोध, बलिदान के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का एक उदात्त अध्याय उजागर हुआ है। खंडकाव्य में मार्मिक और उदात्त स्थलों की पहचान अपरिहार्य शर्त है। प्रबंधरचना में 'डिटेल्स' होते हैं, बहुत-सी सूचनाएँ होती हैं, लेकिन अनेक प्रसंग संवेदना और विचार जगत् को स्पर्श करने वाले होते हैं। इस कृति में भी बचपन में बंदूकें के बोने का संकल्प, जलियाँवाला बाग नरसंहार कांड, सांडर्स वध, असेंबली में बम-विस्फोट, जेल की यात्राएँ, अंतिम यात्रा आदि संदर्भ पाठक को कभी आर्द्र करते हैं और कभी क्षोभ-आक्रोश से भर जाते हैं। कथा-प्रवाह के बीच से कृति का 'विज़न' निरंतर ध्वनित होता है। भगत सिंह का जलियाँवाला बाग की रक्त-स्नात मिट्टी को घर लाना रोमांचित कर देता है और इस प्रसंग से यह विचार-सूत्र उभरता है- 'किस भाँति हो भारत का उद्धार'। कृति के विज़न को व्यक्त करने में समर्थ सक्षम, उपयुक्त और प्रभावपूर्ण भाषा अशोक अंजुम के पास है। वे बिंबों और प्रतीकों पर अधिक निर्भर नहीं हैं। लोकोक्तियों-मुहावरों के सहयोग से भाषा सहज संप्रेषणीय बनी है। कहीं-कहीं पूरी पंक्ति लोकोक्तिमय है- 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात।' 'लगे उजड़ने नीड़', 'जीवन का मजमून', 'ज्यों सर्दी की धूप', आदि कुछ अवतरणों में अभिप्राय को व्यंजित करने की क्षमता भरपूर है। 'युद्ध भूमि को जा रहा, सच कर जैसे लाल' जैसी पंक्तियों में अर्हग्रहण के साथ-साथ बिम्बग्रहण भी हुआ है। आज के भारतीय युवा के लिए यह संदेश बहुत मूल्यवान है कि खिलाड़ी और अभिनेता उसके रोल मॉडल नहीं हो सकते, उसके वास्तविक हीरो भगत सिंह जैसे बलिदानी होने चाहिए- 'असली हीरो हैं यही, युवा-शक्ति दे ध्यान'। इस प्रखर संदेश तथा परिवेश की प्रामाणिकता और सकारात्मक विज़न से समृद्ध यह कृति निश्चय ही अशोक अंजुम के काव्य-यश में अभिवृद्धि करेगी। दोहा छंद में पहला खण्ड काव्य होने के नाते इसका अतिरिक्त महत्त्व भी है।

000

वेदप्रकाश अमिताभ, डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़ 202001 मोबाइल- 098370 0411

केंद्र में पुस्तक

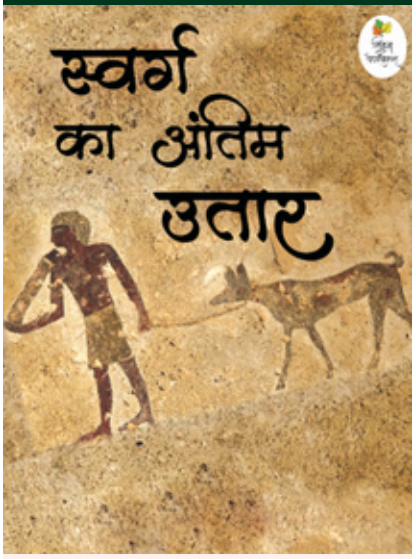

स्वर्ग का अंतिम उतार

(उपन्यास)

समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, दीपक गिरकर, डॉ. सीमा शर्मा

लेखक : लक्ष्मी शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
ई-2/211, चित्रकूट, जयपुर-302 021
मोबाइल: 90790 62290
ई मेल: dpagrawal24@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

डॉ. सीमा शर्मा
L- 235,शात्रीनगर, मेरठ, उत्तर प्रदेश
पिन-250004
मोबाइल- 9457034271
ईमेल- sseema561@gmail.com

एक उपन्यास जिसे आपको पढ़ना ही चाहिए

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

अपने दो ही तो शौक़ हैं – पढ़ना और (संगीत) सुनना। खूब मोटी-मोटी किताबें भी पढ़ी हैं। लेकिन जब से यह मुआ कोरोना हावी हुआ है किसी भी काम में मन नहीं लग रहा है। फुर्सत खूब है लेकिन पढ़ने में मन नहीं लगता है। कोई किताब बड़े मन से पढ़ना शुरू करता हूँ लेकिन बहुत जल्दी मन उचट जाता है। जिन किताबों को ज़रूरी पढ़ना है उनका अम्बार जमा होता जा रहा है, मित्रों के आगे शर्मिंदा होना पड़ रहा है, लेकिन मन के आगे लाचार हूँ। यही हाल संगीत सुनने का भी है। लेकिन इसी उखड़ी मन:स्थिति में आज जब एक उपन्यास हाथ में लिया तो जैसे एक चमत्कार ही हो गया। न केवल यह कि जब से यह कोरोना काल शुरु हुआ है, पहली बार किसी किताब को पूरा पढ़ा, इससे भी बड़ी बात यह कि एक ही बैठक में पढ़ लिया। और ऐसा करने में मेरी अपनी कोई भूमिका नहीं थी। यह किताब का ही चमत्कार था कि उसने मुझसे ख़ुद को पढ़वा लिया। किताब है लक्ष्मी शर्मा का हाल में प्रकाशित उपन्यास 'स्वर्ग का अंतिम उतार'।

लक्ष्मी जी हिन्दी की जानी-मानी कथाकार हैं और उनका इससे पहले प्रकाशित उपन्यास 'सिधपुर की भगतणें' और कहानी संग्रह 'एक हँसी की उम्र' खूब चर्चित और प्रशंसित रहे हैं। इनके अलावा भी उन्होंने काफी काम किया है। लक्ष्मी जी के लेखन की सबसे बड़ी ताक़त उनकी भाषा और चित्रण क्षमता है। उनकी भाषा में प्रवाह तो है ही, उनका शब्द चयन भी विलक्षण होता है। और चित्रण तो वे कुछ इस तरह करती हैं कि आप उनको पढ़ते हुए देखने लगते हैं। उनके ये दोनों कौशल इस उपन्यास में जैसे अपने शिखर पर हैं। इसे पढ़ते हुए मुझे लगा जैसे उन्होंने शिवानी से उनका सांस्कृतिक वैभव और स्वयं प्रकाश से उनका खिलंदड़ापन लेकर एक अनूठी भाषा रची है, जो केवल उनकी है। और ये दो ही तत्व नहीं हैं इस भाषा में। यहाँ मालवी का आंचलिक स्वाद भी भरपूर है। मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि इस उपन्यास को इसके भाषा सौष्ठव के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए।

लेकिन कोई भी कृति केवल भाषा दम पर अपनी जगह नहीं बनाती है। और अगर वह कृति उपन्यास हो तो उससे हमारी पहली अपेक्षा तो उसके कथा तत्व की होती है। इस उपन्यास की कथा बहुत सीधी-सरल है। कथा का केंद्रीय व्यक्तित्व छिगन एक आस्थावान निम्नवर्गीय भारतीय है। उसके जीवन की बड़ी साध है बद्रीनाथ की यात्रा। अपने बचपन में गाँव में उसने हसरत भरी निगाहों से बहुत लोगों को तीर्थयात्रा करके लौटते और उनका मान बढ़ते देखा है। लेकिन उसकी अपनी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह अपने बल बूते पर तीर्थ यात्रा कर सके। इसके बावजूद उसे इसका अवसर मिल जाता है। जिस अमीर परिवार के यहाँ वह चौकीदार की नौकरी कर रहा है वह परिवार धार्मिक पर्यटन का कार्यक्रम बनाता है और अपने साथ इस छिगन को भी ले जाता है। ले जाने का स्पष्ट उद्देश्य यह है कि वह उनके पालतू कुत्ते गूगल की सेवा करने के साथ-साथ उनकी भी सेवा करेगा। साहब, मेम साहब, बेटी और बेटा इन चार लोगों के साथ बस का ड्राइवर और उसका एक सहायक भी इस यात्रा में हैं। यात्रा होती है, और कथाकार बहुत ही कुशलता के साथ हमें भी इस यात्रा में सहभागी बना लेती हैं। लेकिन यह तो इस कथा का एक आयाम है। असल में तो यह कथा अनेकायामी है। इस यात्रा में हम न केवल रास्ते की खूबसूरती का आनंद लेते हैं, यहाँ हमें मानवीय चरित्र के अनेक रंग भी देखने को मिलते हैं। निदा फ़ाज़ली का वह शे'र बेसाख़्ता याद आता है - हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी/ जिस को भी देखना हो कई बार देखना। पहले लगता है कि ड्राइवर और उसके साथी के मन में छिगन के प्रति कोई सद्भावना नहीं है, लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता वे उससे जुड़ जाते हैं, और उसी तरह साहब, मेम साहब और उनके बच्चों के अलग-अलग रूप सामने आते हैं। इस कथा से गुज़रते हुए आप महसूस करते हैं कि व्यक्ति न पूरी तरह अच्छा होता है, न पूरी तरह बुरा। इसी यात्रा के दौरान जब ये लोग जानकी चट्टी पहुँचने वाले हैं तो उससे कुछ पहले इनकी बस का कूलेण्ट पाइप फट जाता है और मज़बूर होकर इन्हें एक सामान्य गृहस्थ के काम चलाऊ गेस्ट हाउस में शरण लेनी पड़ती है। वहीं लेखिका उस गृहस्थ की सुंदर सुशील बेटी कंचन को सामने लाती है। छिगन की मेम साहब कंचन को देख करुणार्द्र हो जाती हैं और हम उनकी इस दयालुता से बहुत प्रभावित भी होते हैं। लेकिन कुछ आगे चलकर यह रहस्योद्घाटन होता है कि मेम साहब की यह करुणा अकारण नहीं, सकारण है। उन्हें उस लड़की में एक सस्ती सेविका नज़र आई है। और इस तरह लेखिका अमीरों की करुणा को बेनक़ाब कर देती है।

यात्रा कथा चलती है, लेकिन उसी के साथ छिगन की अपनी स्मृति यात्रा भी चलती रहती है। लेखिका बहुत ही कुशलता के साथ वर्तमान से अतीत में और अतीत से वर्तमान में आवाजाही करती है। जब वह अतीत में जाती है तो वहाँ की कुछ कथाएँ भी हमें सुना देती हैं। इन कथाओं में चंदरी भाभी की कथा अपनी मार्मिकता में अनूठी है। और सच तो यह है कि यह केवल चंदरी भाभी की कथा नहीं है, यह भारतीय स्त्री के जीवन की मार्मिक त्रासदी है। इसी तरह पहाड़ के बेटी जुहो की कहानी भी हमें भिगो देती है। लेखिका का कौशल इस बात में है कि उसने इन प्रासंगिक कथाओं को अपनी मूल कथा का अविभाज्य अंग बना कर प्रस्तुत किया है।

लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि से जीवन का कोई भी पहलू बच नहीं पाता है। यहाँ तक कि जब वह यह बताती है कि ड्राइवर गाड़ी में कौन-सा संगीत बजा रहा है तब भी उसका सूक्ष्म पर्यवेक्षण हमारा ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहता है। वे लोग गाड़ी में किनके गाने बजाते हैं? गुरु रंधावा, दलेर मेंहदी और सोना महापात्र के। और उसकी भाषा? बहुत बार तो यह एहसास होता है जैसे गद्य में कविता ही रच दी गई है। दो-तीन अंश उद्धृत किए बिना नहीं रह सकता हूँ। देखें: "अभी सूरज नहीं उगा है और भागीरथी के कुआँरे हरे रंग में कोई मिलावट नहीं हुई है, वो अनछुई, मगन किशोरी-सी अपनी मौज़ में इठलाती दौड़ी जा रही है। नदी के पार एक हिरण का जोड़ा पानी पीने के बहाने उसके गाल छू रहा है।" या यह अंश: "धारासार बरसते मेघों का रूप और नाद-सौंदर्य जितना मोहक होता है उससे ज़्यादा सम्मोहक होती है आसमान से बरस चुकी लेकिन धरती पर आने के बीच में कहीं ठहर गई बूँदों की ध्वनियाँ और छवियाँ। चीड़ की नुकीली पत्तियों के जाल के बीच से हवाई रोशनी के साथ छम-छम छमकती बूँदें इठलाती परियों–सी उतरती हैं। किसी फूल की पंखुड़ी के अंग लगकर महक गई एक कामिनी-सी बूँद मद्धिम सुर के साथ पग धरती है, बड़ी देर के छत के किनारे ठहरी कुछ बड़ी बूँदें एक हुंकार के साथ पहाड़ी पत्थरों के किनारे नन्हे ताल में कूद पड़ती हैं और छोटा-सा भंवर बना के खो जाती हैं।" और यह भी देखिये: "रात की बारिश और बरफ रात को ही विदा ले गई है। जानकी चट्टी के पर्वतों पर बिछी बर्फ से गलबहियाँ किए उतरती धूप कुछ ज़्यादा ही साफ़ और उजली है। उसने ज़रा-सा धूपिया पीला उबटन पास बहती जमना की श्यामल वर्णा देह पर भी मल दिया है जिससे वो भी निखरी-निथरी हो गई है। ठण्ड अपने तेवर दिखा रही है लेकिन यात्रियों की भीड़ में उसे कोई ख़ास तवज्जो नहीं मिल रही।" ऐसे मोहक वर्णन इस किताब में जगह-जगह हैं।

लेकिन कोई भी उपन्यास न तो केवल भाषा या वर्णन से बड़ा बनता है और न कथानक की रोचकता से। यहाँ भी अगर केवल इतना ही होता तो यह उपन्यास भी एक सामान्य कथा-रचना बन कर रह गया होता। इन सारे खूबसूरत-मोहक और बरबस वाह निकलवा लेने वाले प्रसंगों-वर्णनों-चित्रणों से गुज़रते हुए हम बढ़ते हैं कथा के अंत की तरफ। कथा इतनी सहजता से आगे बढ़ रही है कि लगता है देव-दर्शन के साथ इसका समापन हो जाएगा। तेरहवें अध्याय तक यही लगता है। लेकिन चौदहवें अध्याय में प्रवेश करते ही हमारा सामना अप्रत्याशित-अकल्पनीय से होता है। वह क्या है, यह बताकर मैं उस आनंद से आपको वंचित नहीं करूँगा जो इसे ख़ुद पढ़ने पर आपको मिलेगा। लेकिन अंतिम, सत्रहवें अध्याय में जब लेखिका अपनी कथा को समेटती है तो हम

एक बार फिर से उसके कौशल के मुरीद होने को विवश हो जाते हैं। बहुत सारे ब्यौरे जो बीच-बीच में आए हैं, यहाँ आकर अपनी सार्थकता प्रमाणित करते हैं। और यहीं इस कथा में श्वान गूगल की उपस्थिति एक नया आयाम प्राप्त कर एकदम से इस कथा को बड़ा बना देती है। असल में जहाँ यह उपन्यास ख़त्म होता है वहीं से आपके मन में एक कथा शुरू होती है। और यही है इस उपन्यास की सबसे बड़ी ताक़त। एक बहुत सामान्य कथा को इतना व्यापक आयाम दे देना लेखिका की सामर्थ्य का बहुत बड़ा परिचायक है।

000

सशक्त और रोचक उपन्यास है
दीपक गिरकर

कथाकार लक्ष्मी शर्मा का हिंदी साहित्य में चर्चित नाम है। कहानी, उपन्यास, कविता, एकांकी, बालकथा, पुस्तक समीक्षा, आलोचना लेखन में लक्ष्मी शर्मा की सक्रियता और प्रभाव व्यापक है। लक्ष्मी शर्मा की कई रचनाएँ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। "स्वर्ग का अंतिम उतार" लक्ष्मी शर्मा का दूसरा उपन्यास है, इन दिनों काफी चर्चा में है। इनका प्रथम उपन्यास "सिधपुर की भगतणें" भी काफी चर्चित रहा था। लेखिका का एक कहानी संग्रह "एक हँसी की उम्र" प्रकाशित हो चुका है और दूसरा कहानी संग्रह "रानियाँ रोती नहीं" शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। लक्ष्मी शर्मा हिन्दी भाषा की एक संवेदनशील लेखिका हैं। "स्वर्ग का अंतिम उतार" उपन्यास की विषयवस्तु नवीन धरातल का अहसास कराती है। उपन्यास का मुख्य किरदार छिगन है, जो कि इंदौर में एक साहब के बंगले पर चौकीदार है। उपन्यास का ताना-बाना छिगन के इर्द-गिर्द बुना गया है। इस कृति में उपन्यास और संस्मरण का मिश्रण है। इसका सधा हुआ कथानक, सरल-स्पष्ट भाषा, चरित्र चित्रण व पात्रों के आपस की बारीकियाँ, पात्रों का रहन-सहन, व्यवहार, उनकी स्वाभाविकता, सामाजिक, आर्थिक स्थिति आदि बिंदुओं, उत्तरांचल के चारों धाम की और पहाड़ी व ग्रामीण पृष्ठभूमि इसे बेहद उम्दा उपन्यास बनाती है। उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। इस उपन्यास का कथानक मालवा के एक गाँव से लेकर उत्तरांचल के चारों धाम तक फैला हुआ है। कथानक का प्रारंभ इस तरह होता है कि छिगन अपनी माँ को अपने मोबाइल फोन से बताता है कि वह अपने साहब के साथ उत्तरांचल के चारों धाम की तीर्थ यात्रा पर जा रहा है और उसका सारा खर्चा उसके साहब उठाएँगे। फिर साहब के परिवार और उनके कुत्ते गूगल के साथ यात्रा प्रारंभ होती है और तीर्थ यात्रा के अंत में युधिष्ठिर और उनके कुत्ते की तरह छिगन और गूगल सदेह स्वर्गारोहण के लिए महाप्रयाण कर जाते हैं। लक्ष्मी शर्मा ने इस उपन्यास की कहानी को इस तरह ढाला है कि वह पाठक को अपने रौ में बहाकर ले जाती है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए आप छिगन, गूगल, साहब, राखी मेमसाब, पुरू, जिया, चन्दरी भाभी, राजूड़ी, दिनेश, कमल, रामकली इत्यादि किरदारों से जुड़ जाते हैं। लेखिका ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। कथाकार ने किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है।

लक्ष्मी शर्मा ने स्थानीय संस्कृतियों, सभ्यताओं, उनके इतिहास और विभिन्न सामाजिक संरचनाओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। एक ओर राखी मेमसाब जैसी स्त्री शानो-शौकत की ज़िंदगी व्यतीत करने के बावजूद खुश नहीं है तो दूसरी ओर छिगन की पत्नी राजूड़ी है जो अभाव और आर्थिक असुरक्षा की स्थिति में भी आनंद और प्रसन्नता के साथ जीवन व्यापन कर रही है। चन्दरी भाभी के माध्यम से लेखिका ने घर-परिवार और समाज में एक अकेली नारी की स्थिति का विस्तृत खुलासा करते हुए समाज को आईना दिखाया है। चन्दरी भाभी का व्यक्तित्व कमाल का है। चन्दरी भाभी का पहनावा, बोलचाल, पुरुषसत्तात्मक समाज के प्रति विचार से लेकर बिंदास अंदाज़ पाठकों को प्रभावित करता है। आंचलिक भाषा, उनकी जीवन शैली और ग्रामीण लोगों की भावनाओं का तालमेल अंतस को छू गया। चन्दरी भाभी के संवाद, दिनेश के संवाद, पहाड़ी लोगों का जीवन, पंछियों की आवाज़ें "जुहोsss" "भोल जाला" की कहानी, मालवा की चिड़िया की कहानी, हरसूद गाँव के डूबने के दृश्य भावुक कर जाते हैं। जीवन के गहरे मनोभावों को लेखिका ने पात्रों के माध्यम से अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है।

चबूतरे के किनारों को घिसे-चटके नाख़ून से छीलती भाभी की आवाज़ में सदियों का सूखा पसरा है। "उम्र के साथ इन्सान को ही नहीं उसकी देह को भी भूख लगती है, फिर मेरी देह के मुँह को तो मिनख देह का नमक लग चुका है, मैं कैसे सबर करूँ।" छिगन ने चौंक कर देखा। लेकिन भाभी बोलती जा रही है। "शंकर जी के चबूतरे पे बैठ के तुम से झूठ नहीं बोलूँगी भैया जी, मेरे एक इशारे में आज के आज दस खसम आगे और दस खसम पीछे खड़े हो जाएँगे। बाहर क्यों, तीन तो घर में ही रास्ता छेके खड़े हैं, पर इस मन का क्या करूँ जिसमें आज भी सात फेरों की आग तप रही है।" (पृष्ठ ५६) यह बात सत्य है कि अकेली स्त्री के शरीर के कई रखवाले पैदा हो जाते हैं।

"औलाद के बिना औरत की कोई कदर नहीं करता। हमारा समाज बड़ा हरामी है यार, आदमी नामर्द निकल जाए तो भी औरत बाँझ रहती है और औरत बाँझ रह जाए तो भी। औरत की तकदीर भगवान् नहीं, समाज लिखता है वो भी मर्द की जूती की नोक से। औरत और नदी के भाग में गंदगी झेलना ही लिखा है दोस्त।" दिनेश की आवाज़ में भागीरथी के बहाव से भी ज़्यादा बेचैनी है।

"पहाड़ों के घर ग़रीब मर्दों के लिए नहीं होते भाई, वो साल के दस महीने नीचे मैदानों में कमाने जाते हैं और गर्मी के दो महीने कमाई के सीजन में घर आते हैं तो जमनोत्री-केदारनाथ चले जाते हैं। जवान लोग यात्रियों की पालकी-कंडी ढोते हैं और बूढ़े-बच्चे भी सेब, रूद्राक्ष, मालाएँ और हींग-शिलाजीत बेच कर थोड़ा-बहुत कमा लेते हैं। पीछे घर में बचते हैं औरतें, ज्यादा बूढ़े और छोटे बच्चे जो राम भरोसे ही जीते हैं।" (पृष्ठ ७४)

भारतीय समाज के वर्ग भेद को भी कथाकार ने कुशलता से चित्रित किया है। "मतलब वॉचमैन भैया भी नहीं चल रहे?"

पुरू अब छिगन के लिए उदास हो रहा है। "पुरू, डोंट बी सिली। सर्वेन्ट्स साथ घुमाने के लिए नहीं काम के लिए साथ आते हैं। तुम लोगों की ज़िद थी तो गूगल को और उसके कारण वॉचमैन को लाना पड़ा, अब ये नया ड्रामा खड़ा मत करो।" मेमसाब झुँझलाने लगी है।

"क्या ठीक नहीं है? हम लड़की को घर में रखेंगे, खाना-कपड़ा देंगे, यहाँ तो उसे पेट भर खाने तक को नहीं जुट रहा है। और घर का काम करवाएँगे तो उसके पैसे भी भिजवाते रहेंगे। यहाँ भी तो सारा दिन बेगार ही करती है।" मेमसाब अब पुराने तेवर वाली मेमसाब है। "लेकिन तुम उसे पढ़ाने की बात..." "उसका दिमाग़ चला तो पढ़ा भी लेंगे, सरकारी स्कूल हमारे घर से कौन सा दूर है।" मेमसाब ने साब की बात पूरी नहीं होने दी। "जैसी तुम्हारी मर्ज़ी, पर ये ठीक नहीं है।" साब बेबसी से कंधे उचका कर खिड़की से बाहर देखने लगे। "वाओ मॉम, टू स्मार्ट। चहकती जिया ने आँख दबाते हुए अँगूठा दिखाया "हाउस-हेल्प का रोज़ाना का नाटक मिटेगा। सबसे पहले रामकली को गेट आउट करेंगे, आजकल उस के नखरे भी बहुत बढ़ गए हैं।"

पुस्तक में यहाँ वहाँ बिखरे सूत्र वाक्य उपन्यास के विचार सौंदर्य को पुष्ट करते हैं। जैसे – "इन रीवर्स में ज़्यादा आवाज़ भागीरथी करती है बेबी, ये जो ग्रीन स्ट्रीम है न ये भागीरथी है। इसीलिए हमारे यहाँ इसे सास और ये मटियाली मीन्स अरदन स्ट्रीम वाली अलकनंदा को बहू कहते हैं क्योंकि ये ख़ामोशी से आ के मिलती है, जैसे नई बहुएँ ससुराल में रहती है।" पण्डे की बात पर सब को हँसी आ गई। इसीलिए एडस्टमेंट में इतना समय लगता है, देखो ना कितनी देर तक दोनों अपने-अपने कलर्स में चलती हैं।"

"पर एक बात तो है, राजूड़ी ऐसे सातों सुख में रहे और ज़रा डील में भर जाए तो ऐसी दस मेमसाब उसके आगे पानी भरे।" छिगन को राजूड़ी की मोटी-मोटी हँसती आँखें और भरे-भरे होंठ याद आने लगे और उसे ठीक से देखने के लिए उसने आँखें मूँद लीं।

अभी सूरज नहीं उगा है और भागीरथी के कुआँरे हरे रंग में कोई मिलावट नहीं हुई है, वो अनछुई, मगन किशोरी सी अपनी मौज में इठलाती दौड़ी जा रही है। नदी के पार एक हिरण का जोड़ा पानी पीने के बहाने उसके गाल छू रहा है। किनारे के पत्थर पर बैठ कर नहाते छिगन को भागीरथी के बर्फीले पानी में भी एक कुनकुना सुख मिल रहा है, जैसे माघ के महीने में बई की गुदड़ी में लेटने पर मिलता था।

"कमाल होती हैं ये औरतें, ये न हों तो जीवन में क्या बचे, न रंग, न रस, न परब, न त्योहार। हम मरद तो केवल कमाने-खाने, टाँगें पसार के सोने और घर की औरतों पर हुकुम चलाना जानते हैं। अमीरी हो कि ग़रीबी, पहाड़ हो कि मैदान सब जगह इन औरतों की माया है।"

कथाकार ने इस उपन्यास को इतने बेहतरीन तरीके से लिखा है कि छिगन का गाँव, हरिद्वार, ऋषिकेश, पहाड़, नदियाँ और उत्तरांचल के चारों धाम का जीवन्त चल चित्र पाठक के सामने चलता है जिससे पाठक को तीर्थ यात्रा की अनुभूति होती है। उपन्यास के शुरूआत में चरित्रों और परिवेश को समझने में कुछ समय लगता है परन्तु धीरे-धीरे उपन्यास पाठक को अपने साथ बाँधता चला जाता है। लक्ष्मी शर्मा ने अनुभवजन्य भावों को सार्थकता के साथ चित्रित किया है। इस उपन्यास को पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है वह चाहकर भी उपन्यास को बीच में नहीं छोड़ सकता। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। कथाकार ने कथानक के अंत में महाभारत की कथा के अनुसार मिथक का प्रयोग किया है। महाभारत की पौराणिक कथा के अंतिम भाग को वर्तमान से जोड़कर एक नई व्याख्या और नये दृष्टिकोण के साथ इस उपन्यास को प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास में गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ है। उपन्यास की लेखक लक्ष्मी शर्मा एक सशक्त और रोचक उपन्यास रचने के लिए बधाई की पात्र हैं।

000

दो विरोधी ध्रुवों की कहानी

डॉ. सीमा शर्मा

'स्वर्ग का अंतिम उतार' लक्ष्मी शर्मा का उपन्यास दूसरा उपन्यास है। इससे पूर्व उनकी कई अन्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'सिधपुर की भगतणें' विशेष रूप से चर्चित उपन्यास रहा। समीक्ष्य उपन्यास की बात करें तो इसके नाम से ही अनुमान होने लगता है कि विषय वस्तु कहीं न कहीं आस्था से जुड़े किसी विषय से सम्बंधित है और उपन्यास की पहली पंक्ति से इस तथ्य की पुष्टि भी हो जाती है। "बई मैं बदरीविसाल जा रियो हूँ।" यह इस उपन्यास का प्रथम वाक्य है और इसकी आत्मा भी। यही इसका मूल है और विस्तार भी। कथा नायक 'छिगनलाल सोलंकी' का एक ऐसा सपना, जिसे उसकी कई पीढ़ियों ने देखा और छिगन ने भी तय किया था, या कहें कि प्रण लिया था कि वह उसे अवश्य पूरा करेगा। सपना था अपने दादा(पिता) और बई (माँ) के साथ 'बद्रीनाथ यात्रा' पर जाने का।

शहर के लिए निकलते छिगन ने बई की पोटली में बँधे चबेने के साथ बद्रीनाथ यात्रा का सपना भी बाँध लिया था "तू चिंता मत कर बई एक दिन मैं तुम दोनों को जरूर जात्रा ले के चलूँगा।" देखा जाए तो छिगन ने कोई बहुत बड़ा सपना नहीं देखा था जिसे पूरा करना असंभव हो लेकिन उसका यह सपना उसे कितना भारी पड़ता है। वह इसे पूरा कर पाता है या नहीं यह जानने के लिए तो उपन्यास को पढ़ना होगा।

'स्वर्ग का अंतिम उतार' दो विरोधी ध्रुवों की कहानी है। जहाँ दो वर्गों का संघर्ष, आस्था, विश्वास और उनके जीवन में अंतर को स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। कार्ल मार्क्स ने इसे वर्ग संघर्ष के रूप रेखांकित है- इन वर्गों में, धनी और निर्धन, शोषक और शोषित, शासक और शासित का संबंध होता है। समीक्ष्य उपन्यास में भी धनी और निर्धन पात्रों के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा दिखाई देती है जो धीरे-धीरे करके एक खाई में परिवर्तित होती जाती है। यहाँ आस्था के भी दो रूप देखने को मिलते हैं। एक ओर छिगनलाल सोलंकी और उसकी पत्नी राजूड़ी, दादा,

डालीबई, अंगूरी मासी जैसे लोग हैं जिनके लिए धार्मिक स्थलों का महत्त्व, जीवन के ज़रूरी कामों से अधिक है। 'बदरीविसाल की जात्रा' जैसे उनके जीवन का उद्देश्य हो और दूसरी साहब और मेमसाहब हैं जिनके लिए तीर्थयात्रा बस पिकनिक की तरह है। जिया बेबी और पुरु बाबा पर कोई टिप्पणी करना उचित नहीं क्योंकि वे बच्चे हैं। ये अलग बात है कि बड़े होकर वे क्या करते हैं ?

एक समय पर कथा नायक 'छिगन' में न जाने क्यों धीरेंद्र अस्थाना की कहानी का 'बहादुर' दिखने लगता है। धीरेंद्र अस्थाना की कहानी 'बहादुर को नींद नहीं आती' में चौकीदार के जीवन के जिस मार्मिक पक्ष को दर्शाया गया है; छिगन के चरित्र में ऐसे ही किसी चौकीदार के जीवन का दूसरा पक्ष 'स्वर्ग का अंतिम उतार' उपन्यास में देखने को मिलता है। साहब के उतरे हुए जूते और कपड़े पहन कर छिगन गाँव में बाबूसाहब बना फिरता है। यदि कोई उसके शहर में आकर देखे उसकी घुटन भरी, सीली कुठरिया और उतरन में मिले चार-छ: बर्तनों को। टूटे तखत और सारा दिन धूप में खड़े रहने की चाकरी को, उसके अकेलेपन को। कोई और देखे या न देखे, लेखिका ने न केवल इसे देखा बल्कि पूर्ण सजीवता के साथ चित्रित भी किया है।

वर्षों से शहर में रह रहे छिगन के केवल दो ही दोस्त बन पाते हैं गूगल (मालिक का जर्मन शेफर्ड कुत्ता, जिस मूक जानवर से अपनी दु:ख सुख की बातें कह लेता। वह कितना समझता है छिगन नहीं जानता लेकिन उससे अपने मन की बातें कह, कम से कम मन हलका कर लेता है।) और प्रेस वाले नरसिंह काका और कभी कभार साहब का बारह साल का बेटा भी उससे बात कर देता है। यहाँ देखने वाली बात यह है कि उसी की तरह मालिक के यहाँ काम करने वाले अन्य नौकर भी उससे बात नहीं करते क्योंकि वे उससे कुछ अच्छी स्थिति में हैं। यदि समाज इतने अधिक वर्गों में विभाजित हो जायेगा तो स्वाभाविक रूप से विसंगतियाँ बढ़ेंगी ही।

उपन्यास में एक पंक्ति आती है- "यह कुत्ता नहीं इनके साब हैं काका।" तो कितनी ही साहित्यिक पंक्तियाँ मस्तिष्क में चलने लगाती है। विशेष रूप से दिनकर की यह पंक्ति – "श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।" इस छिगन की स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाती है। लेखिका ने नायक की उसी वेदना को पकड़ने का प्रयास किया है।

कथानायक छिगनलाल सोलंकी, एक कम पढ़ा लिखा व्यक्ति और व्यवसाय से चौकीदार है किंतु इस चरित्र के व्यवहार को देखें तो यह अपने मालिक और मालकिन से कहीं अधिक प्रगतिशील और समझदार दिखाई देता है। इसी उपन्यास में आए अन्य तथाकथित पढ़े-लिखे और सभ्य समाज से संबंध रखने वाले पात्रों की तुलना में छिगन की दृष्टि अधिक आधुनिक लगती है। छिगन के स्त्री संबंधी जो विचार इस उपन्यास में दिखाई देते हैं तुलनात्मक रूप से अधिक उदार और अनुकरणीय हैं। उसकी यह विचारधारा उपन्यास में आये विभिन्न स्त्री पात्रों के प्रति उसके विचार और व्यवहार में स्पष्ट दिखाई देती है। उपन्यास में सहकथा के रूप में आई 'चंदरी भाभी' तथा दिनेश और उसकी प्रेमिका की कहानी में आए दोनों स्त्री पात्रों की समस्याएँ दो विरोधी समस्याएँ हैं। एक ओर 'चंदरी भाभी' जिसके पति को किसी ढोंगी बाबा ने शारीरिक रूप से अक्षम (नामर्द) बना दिया, तो वहीं दिनेश की प्रेमिका के शरीर में कोख न होना, दोनों के लिए किसी अभिशाप से कम न था। दो विरोधी समस्याएँ लेकिन अंत एक जैसा। दोनों ही पात्र आत्महत्या कर अपने जीवन का अंत कर लेते हैं। लेखिका ने यहाँ समाज की दोगली मानसिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया है। -"अरे कुछ नहीं था उसके शरीर में कैसे तो शादी करती?" जैसे स्त्री एक कोख मात्र हो। यदि वह बच्चा नहीं जन सकती तो जी भी नहीं सकती। "हर जगह हर, घड़ी उसे मनहूस के ताने सुनने पड़ते। औलाद के बिना औरत की कोई कदर नहीं करता। हमारा समाज बड़ा हारामी है यार आदमी नामर्द निकल जाए तो भी औरत बाँझ रहती है और औरत बाँझ जाए तो भी। औरत की तकदीर भगवान नहीं समाज लिखता है वह भी मर्द की जूती की नोक से।"

इन सहायक कथाओं के अंत कुछ और भी हो सकते थे लेकिन ये केवल सहायक कथाएँ थीं, फिर उपन्यास का आकार भी छोटा है। संभवत: इसलिए इन कथाओं को लेखिका ने बहुत सूक्ष्म रूप में ही समाप्त कर दिया। अन्यथा 'चंदरी भाभी' की कथा अधिक विस्तार की माँग करती है। मेरा सुझाव है कि इस पात्र को लेकर; लेखिका को एक स्वतंत्र कहानी लिखनी चाहिए।

प्रस्तुत उपन्यास के दो प्रमुख पात्र, साहब और मेमसाहब समूचे मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते और न ही छिगन सम्पूर्ण निम्न वर्ग का, किन्तु दोनों ही तरह के लोग तो होते हैं तभी यह उपन्यास सम्भव हुआ है। उपन्यास में छिगन का चरित्र आदर्श स्थिति में दिखाई देता है। यदि छिगन की तरह ही उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग के लोग आचरण करें तो समाज से कई तरह की विसंगतियाँ स्वत: ही समाप्त हो जाएँगी। लेकिन आधुनिकता और उदारता के पीछे छुपे कई विकृत चेहरे इस उपन्यास के पात्रों के माध्यम से देखे जा सकते हैं। जिनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर दिखाई देता है। जिनके लिए स्वार्थ सर्वोपरि है और वे इसकी पूर्ति के लिए अनैतिक ढंग से कार्य करने से भी पीछे नहीं हटते। इसका उदाहरण राखी (मेमसाहब) के व्यवहार में देखा जा सकता है। जब वह एक निर्धन लड़की 'कंचन' को अपने स्वार्थ के जाल में फंसाना चाहती है।

उपन्यास में लक्ष्मी शर्मा ने मालवी बोली का जो प्रयोग किया है उससे मालवा लोक संस्कृति जीवंत हो उठती है। उपन्यास में वहाँ के समाज में विद्यमान सकारात्मक जीवन मूल्यों, परम्पराओं और आस्थाओं, के साथ-साथ कुरीतियों तथा पाखंडों को भी दर्शाया गया है। उपन्यास की एक विशेषता दर्शनीय स्थलों का चित्रण भी है। इसके कुछ अंश तो यात्रा वृतांत की अनुभूति कराने लगते हैं जैसे हरिद्वार, बद्रीनाथ और सीमान्त गाँव माना का चित्रण। उपन्यास छोटे-छोटे सपनों को पूरा करने के बड़े संघर्ष की पठनीय कहानी है।

000

पुस्तक समीक्षा

कोरोना काल

(निबंध संग्रह)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : आकाश माथुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

हाल ही में आकाश माथुर की सद्य: प्रकाशित पुस्तक "कोरोना काल" शिवना प्रकाशन, सीहोर से प्रकाशित होकर आई है। यह कोरोना काल का जीवंत दस्तावेज है। आकाश माथुर ने क़स्सागोई के अंदाज़ में पुस्तक के विभिन्न आलेख लिखे हैं। अपनी तरह की पहली किताब में कोरोना काल की जमीनी सच्चाइयों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। लेखक ने इस पुस्तक में कोरोना काल में समाज से जुड़े सभी मुद्दों पर बेबाकी से लिखा है। सच को सच कहने की हिम्मत आकाश माथुर जैसे पत्रकारों में होती हैं। पुस्तक में लेखक द्वारा सत्ता, प्रशासन, मीडिया, पुलिस, स्वास्थ्य विभाग, डॉक्टर्स, अस्पतालों, लेखकों, अमीरों, व्यापारियों, भारतीय रेलवे की भूमिका पर और धर्म की राजनीति, महानगरों से मज़दूरों के पलायन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। लेखक विस्तार से कोरोना काल के अपने अनुभवों को खुलकर पाठक के सामने रखते हैं। लेखक ने दिलचस्प अंदाज़ में इस पुस्तक को लिखा है। पुस्तक में शामिल अनेक आलेखों में आकाश माथुर की बेचैनी दिखाई देती है। लॉकडाउन के दौरान सभी अच्छी-बुरी घटनाओं को लेखक ने एक कैमरे की तरह क़ैद किया था। हमारी समाज व्यवस्था में कहीं भी सामान्य इंसान का महत्त्व नहीं है। लॉकडाउन में आम आदमी की ज़िंदगी कितनी कष्टदायक थी, यह आप इस पुस्तक को पढ़कर ही जान सकते हैं। पुस्तक में सरकार और प्रशासन से वे तमाम ज़रूरी सवाल उठाए गए हैं जिनका संबंध आम आदमी के जीवन से जुड़ा हुआ है।

लेखक किसी विचारधारा का पक्ष न लेते हुए तथ्यों तथा तर्कों के साथ सच को बयान करते हैं। कोरोना काल में जब अधिकांश मीडिया सत्ता की नारेबाज़ी में जुटा हुआ है तब एक बिंदास पत्रकार का लॉकडाउन एवं कोरोना काल के महत्त्वपूर्ण मानवीय मुद्दों पर गहन विश्लेषण मायने रखता है। लेखक ने आम आदमी की पीड़ा, रोज़गार, मज़दूरों की दयनीय हालत, राजनेता, प्रशासन, कोरोना योद्धाओं, कोविड-19 के मरीज़ों के उपचार, इस बीमारी से संक्रमित होने वाले और मरने वाले लोगों पर तटस्थता तथा निष्पक्षता के साथ यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। लॉकडाउन ग़रीबों के लिए मुसीबत बन गया था। लॉकडाउन के दौरान भारत सरकार और मध्यप्रदेश सरकार के सामने ढेरों चुनौतियाँ थी, इन चुनौतियों से निपटने में सरकार नाकाम रही है।

लेखक ने इस पुस्तक का प्रथम आलेख "सत्ता" व्यंग्य शैली में लिखा है। लेखक लिखते हैं यह सच है कि एमपी बहुत अजब गज़ब है। जब कोरोना ने दस्तक दी थी, तब सरकार को बनाने और गिराने का खेल चल रहा था। लेखक का यह कथन बेहद सारगर्भित एवं सटीक है कि कोरोना के विरुद्ध लड़ाई में कई घटनाएँ सत्ता के खेल के कारण हुई और लॉकडाउन में मध्यप्रदेश में भगवान भरोसे समाजसेवी और जनता के विश्वास से कोरोना की लड़ाई जारी थी। इस आलेख का पहला अनुच्छेद दृष्टव्य है - मुख्यमंत्री ने राज्य में 1500 करोड़ का कोरोना फंड

बनाने का प्रस्ताव रखा तो वित्त मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने पैसे जुटाने में असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा कि आबकारी व कर मंत्री शिवराज सिंह चौहान के विभाग से राजस्व वसूली नहीं हो पा रही है... तो उद्योग मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने कहा कि लॉकडाउन की वजह से राजस्व वसूली पर नकारात्मक असर पड़ा है, इसी बीच कृषि मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने गेहूँ खरीदी का मसला उठाया और उसके लिए पैसों की माँग की, स्वास्थ्य मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने कोरोना से लड़ने के लिए फंड की माँग रखी... शिक्षा मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने नए सेशन व बोर्ड रिज़ल्ट के लिए दिशा-निर्देश माँगे... तभी पीडब्ल्यूडी मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने ख़राब सड़कों का हवाला दिया और रख-रखाव के लिए फंड की माँग की।

एक ओर चीन में कोरोना संक्रमित मरीजों के साथ क्या किया गया, हमारे देश में कोरोना संक्रमितों का किस तरह से इलाज किया जा रहा हैं, किस तरह मध्यप्रदेश में प्रशासन द्वारा संक्रमितों और कोविड-19 से मरने वाले मरीजों की संख्या को छिपाया जा रहा है और दूसरी ओर मध्यप्रदेश में बिना संसाधनों के डॉक्टर किस प्रकार कोरोना संक्रमित मरीज़ों का इलाज कर रहे थे, इस पूरे यथार्थ दृश्य को आकाश माथुर ने शब्दांकित किया है इस पुस्तक के दूसरे आलेख "हत्या" में। "ताली, थाली और धर्म की राजनीति" आलेख में लेखक ने घटिया सोच की मानसिकता पर कटाक्ष किया है और वास्तविक हास्यापद स्थिति से अवगत किया है। "पलायन और अग्नि पथ" में आकाश माथुर ने यथार्थ स्थिति से पाठकों को रू-ब-रू किया। लेखक लिखते हैं कोरोना काल में दुनिया का सबसे बड़ा पलायन हुआ। परिवहन के सभी साधन बंद थे। देश की 20 प्रतिशत आबादी ने पैदल शहरों से अपने गाँव की ओर पलायन किया। "भूख" आलेख में लेखक कहते हैं कि भ्रष्टाचारियों ने गरीबों के साथ फरेब किया। मध्यप्रदेश सरकार ने ग़रीबों तक राशन पहुँचाने का निर्णय लिया लेकिन भ्रष्टाचारियों ने ग़रीबों के भूखे पेट पर लात मारते हुए अरबों रुपयों का घोटाला किया। "पढ़े-लिखे नासमझ" आलेख में आकाश माथुर के दिए हुए उदाहरणों में से एक ही उदाहरण काफ़ी है - मध्यप्रदेश सरकार के स्वास्थ्य विभाग की सबसे बड़ी अधिकारी, जिनका बेटा विदेश से आया था। वह महिला अधिकारी का बेटा न स्वयं क्वारंटीन में रहा और न ही उसका परिवार। इसका खामियाज़ा पूरे स्वास्थ महकमें को भुगतना पड़ा। भोपाल का पूरा स्वास्थ्य महकमा हॉटस्पॉट में तब्दील हो गया।

लॉकडाउन की अवधि में प्रदूषण कम हो गया था। लॉकडाउन के चलते हवा की गुणवत्ता बढ़ गई थी। चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी थी। नदियाँ स्वच्छ हो गई थीं। "अमीरी-ग़रीबी" आलेख में लेखक ने कटु यथार्थ पाठकों के सामने रखा है। इस कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान एक ओर अमीर लोग ऑनलाइन डिलिवरी सिस्टम का भरपूर फायदा उठा रहे थे और घर बैठे मनचाही चीज़ें भी हासिल कर पा रहे थे तो दूसरी ओर देश में हज़ारों लोग सड़कों पर थे और उनके सामने रोज़ीरोटी का संकट था। लॉकडाउन में गरीबों ने नर्क जैसा जीवन जिया। शराब बंदी थी लेकिन शराब की तस्करी हो रही थीं। "छपास का वायरस", "प्रकृति" "वैश्या", "जीना सीखना होगा", "मृत्युदर", "छुअन का अहसास", "रिवर्स माइग्रेशन", "रेल" इत्यादि आलेख लॉकडाउन की असली तस्वीर पेश करते हैं।

इस पुस्तक के कुछ अंश जो पाठकों को लॉकडाउन की जटिल अनुभूतियों को विसंगतियों, विडम्बनाओं और वास्तविकता से परिचय करवाते हैं :

यदि आपके घर में पालतू जानवर हो तो आप उसे फेंक कर खाना नहीं देते होंगे, क्वारंटीन सेंटर में लोगों को फेंक कर खाना दिया जा रहा था। (अमीरी-ग़रीबी : पृष्ठ ६२)

लॉक डाउन का ही असर है कि भारत में सड़क हादसों की संख्या घट गई है और इनके कारण मरने वालों की संख्या में भी कमी आई है। (मृत्युदर : पृष्ठ ६५)

रिश्तों को दिल से महसूस करना फिज़िकल टच से ज्यादा अहम है। (छुअन का अहसास : पृष्ठ ७७)

दुख था कि शहर वीरान हो रहे थे। क्योंकि शहर को पहचान दिलाने वाले ऑटो वाले, सफाई करने वाले, ठेले लगाने वाले, जूते साफ करने वाले किसी को भी सम्मान नहीं मिला। यदि कोरोना काल के लॉकडाउन में ही हम उनका सम्मान करते तो शहर यूँ वीरान न होते। (रिवर्स माइग्रेशन : पृष्ठ ८३)

लॉकडाउन में प्रवासी मज़दूरों के लिए घर लौटना जंग जीतने जैसा हो गया था। (रेल: पृष्ठ ८७)

इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने ग़रीबों, कामगारों, मज़दूरों, प्रवासी मज़दूरों, छोटे व्यापारियों की रोज़ी-रोटी का तथा समाज के इस तबके तक सरकारी सहायता की वास्तविक पहुँच का विस्तृत खुलासा करते हुए समाज को आईना दिखाया है। लेखक ने इस पुस्तक के सभी आलेख बहुत ही मुखर ढंग से प्रस्तुत किए है। पुस्तक के सभी आलेख सटीक, समसामयिक होने के साथ स्थाई महत्त्व के हैं। आकाश माथुर एक पत्रकार के साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं इसलिए इनके लेखन में सिर्फ घटनाओं का बखान न होकर संवेदनात्मक व भावनात्मक पक्ष अधिक उभरते हैं। लेखक ने सभी आलेखों में सन्दर्भ के साथ उदाहरण भी दिए हैं और तथ्यों के साथ गहरा विश्लेषण भी किया है। कुल मिलाकर यह कृति मानवीय चेतना एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़े मुद्दों की गहन पड़ताल करती है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए बहुत बार बार मन भीगता है। इस कृति द्वारा आकाश माथुर का बहुआयामी चिन्तन मुखर हुआ है। आकाश माथुर के विचारों में स्पष्टता है। वे समसामयिक विषयों पर गहरी समझ रखते हैं। पुस्तक की भाषा सहज और सरल है। यह पुस्तक कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान हमारे देश और विशेष रूप से हमारे मध्यप्रदेश में हुई सभी क्रियाकलापों को रेखांकित करती है। पुस्तक पठनीय ही नहीं, चिन्तन मनन करने योग्य वैचारिक विमर्श की समसामयिक कृति है।

000

पुस्तक समीक्षा

साक्षात्कारों के आईने में

(साक्षात्कार संग्रह)

समीक्षक : डॉ. सीमा शर्मा

संपादक : डॉ. रेनू यादव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

डॉ. सीमा शर्मा
L- 235,शात्रीनगर, मेरठ, उत्तर प्रदेश
पिन-250004
मोबाइल- 9457034271
ईमेल- sseema561@gmail.com

भारत में साक्षात्कार की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। वर्तमान साक्षात्कार विधा से कुछ भिन्न सही लेकिन समस्त प्राचीन ग्रंथों में किसी-न-किसी रूप में संवाद को स्थान दिया जाता रहा है। यह संवाद परंपरा, साक्षात्कार का ही एक रूप है। यम-नचिकेता संवाद, मरणासन्न रावण-लक्ष्मण संवाद, भीष्म-युधिष्ठिर संवाद, कृष्ण-अर्जुन संवाद, गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद, भरत-आत्रेय संवाद, गौतम-सत्यकाम संवाद आदि साक्षात्कार के प्राचीन रूप माने जा सकते हैं। किन्तु हिंदी में साक्षात्कार लेने की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। हिंदी साहित्य के इतिहास में साक्षात्कार विधा को बहुत कम स्थान मिला है। वहाँ साक्षात्कारों की परंपरा को खोजें तो डॉ. नगेंद्र ने अपने संपादित ग्रंथ हिन्दी साहित्य का इतिहास में उल्लेख किया है कि इस विधा का आरंभ प्रसिद्ध पत्रकार पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने पत्र विशाल भारत में "रत्नाकर जी से बातचीत" तथा "प्रेमचंद जी के साथ दो दिन" के साथ साक्षात्कार का शुभारंभ किया और इस विधा को पुष्पित एवं पल्लवित करने के लिए सर्वप्रथम सार्थक कदम बढ़ाया। इसके पश्चात् हिन्दी में साक्षात्कार की प्रक्रिया चल पड़ी। माधव प्रसाद बेनी शर्मा की पुस्तक 'कवि दर्शन' इस विधा की प्रथम स्वतंत्र कृति मानी जाती है, जिसमें तत्कालीन प्रसिद्ध साहित्यकारों अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त आदि से लिए गए साक्षात्कार संग्रहीत हैं। साक्षात्कारों से संबंधित सर्वाधिक चर्चित कृति पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' कृत 'मैं इनसे मिला' ग्रंथमाला है। इसके दो भागों में साहित्यकारों से तत्कालीन साहित्यिक परिवेश तथा उनके रचना कर्म पर बातचीत करके लेखक के मन पर पड़े प्रभावों को लिपिबद्ध किया गया है।

साक्षात्कार विधा की विशेषताओं के कारण इसकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती जा रही है। साहित्य की अन्य विधाओं की कुछ शिल्पगत सीमाएँ होती हैं, परन्तु साक्षात्कार के द्वारा किसी साहित्यकार के जीवन दर्शन एवं उसके दृष्टिकोण तथा उसकी अभिरुचियों की गहन एवं तथ्यमूलक जानकारी बहुत कम समय में प्राप्त की जा सकती है। साक्षात्कार अपने संक्षिप्त आकार में बहुत कुछ समेटे रहता है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कहते हैं- "मैंने इंटरव्यू के लिए बरसों पहले एक शब्द रचा था अंतर्व्यूह। मेरा भाव है कि इंटरव्यू के द्वारा हम सामने वाले के अंतर में एक व्यूह रचना करते हैं मतलब यह कि दूसरा उससे बच न सके, जो हम उससे पाना चाहते हैं। यह एक तरह का युद्ध है और साक्षात्कार हमारी रणनीति व्यूह रचना है।"

जिस अंतर्व्यूह की चर्चा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने की है वही अंतर्व्यूह समीक्ष्य पुस्तक के प्रथम साक्षात्कार में देखने को मिलता है। इस साक्षात्कार में पंकज सुबीर ने जिस तरह अपने प्रश्नों से व्यूह रचना की है उससे बहुत सार्थक परिणाम निकल कर सामने आते हैं। पंकज सुबीर ने सुधा ओम ढींगरा से पत्रकारिता एवं साहित्य संबंधी जो प्रश्न किए हैं जैसे प्रवासी साहित्य पर कोरी भावुकता और नॉस्टैल्जिया में लिखी गयी रचनाएँ जैसे लगने वाले आरोप आदि। प्रश्न मिलकर एक अंतर्व्यूह ही तैयार करते हैं लेकिन सुधा ओम ढींगरा के सधे हुए उत्तर भी विचारणीय हैं। समीक्ष्य पुस्तक में यह संवाद बहुत महत्त्वपूर्ण है, इससे प्रवासी साहित्य की स्थित एवं महत्त्व दोनों एक सीमा तक स्पष्ट हो जाते हैं। यहाँ सुधा ओम ढींगरा द्वारा दिया गया यह उत्तर विचारणीय है- "दोहरी मानसिकता और दोहरे मानदंड अक्सर कचोटते हैं। यह मानवीय

त्रासदी है। देश क्या छोड़ा तड़ी पार हो गए। माँ तो सबको याद आती है। कोई रो कर याद करता है, कोई हँसकर, कोई मुस्कुरा कर, कोई बस याद करता है। अभिव्यक्ति की तपिश और स्वरूप भिन्न हो सकता है पर भावना विहीन तो नहीं। नॉस्टैल्जिक होने का दंश अभी तक झेल रहे हैं। समय-समय पर हमें यह कहकर नकार दिया जाता है कि विदेशों में रचा रचा जा रहा हिंदी साहित्य नॉस्टैल्जिक है। हम यहाँ विपरीत परिस्थितियों में हिंदी का प्रचार प्रसार कर रहे हैं और अपनी संस्कृति को बचाए हुए हैं। जिसे कोरी भावुकता कहा जाता है।" (पृष्ठ.१८) नॉस्टैल्जिया मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है। अतीत में झाँकता हुआ लेखक वर्तमान में जीता है और भविष्य की कल्पना करता है। साहित्य में कोई विषय वर्जित नहीं नॉस्टैल्जिया की मोहर देश से बाहर के साहित्यकारों के लेखन पर क्यों लगाई जाती है? यह प्रवृत्ति आपको हर भाषा तथा हर देश के साहित्य में मिलेगी। साहित्य संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है और संवेदनाओं की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। संवेदनाओं को कितनी कुशलता से अभिव्यक्ति किया गया है इसकी परख की जा सकती है।

इस पुस्तक में कुल अट्ठारह साक्षात्कार संकलित हैं- पंकज सुबीर - 'देश क्या छोड़ा तड़ी पार हो गए', मधु अरोड़ा -'साहित्य से मुझे ऊर्जा मिलती है', श्याम किशोर- 'पढ़ना तो ऐसी खुराक है जो ऊर्जा देती है', सुनीता गौतम- 'यहाँ व्यावहारिक ज्ञान भी दिया जाता है', डॉ. नवनीत कौर- 'संवेदनशीलता के धरातल पर महिला अधिक सशक्त', तरसेम गुजराल- 'माँ की गोद किसे अच्छी नहीं लगती', डॉ. अनीता कपूर- 'भाषा का प्रचार प्रसार पहली प्राथमिकता बन गई', सुमन सिंह- 'लिखने के बीज इंसान के अंदर होते हैं', कंचन सिंह चौहान- 'मेरे लिए लेखन एक यात्रा है मंज़िल नहीं', शहनाज- 'सही मंज़िल है पाठकों का स्नेह और आशीर्वाद', डॉ. एम. फिरोज़ खान- 'मैं किसी विचारधारा के दबाव में नहीं लिखती', राजपाल- 'पाठकों ने ही प्रवासी साहित्य को पहचान दिलवाई है', अनुराग शर्मा- 'देश विदेश की हर महिला के साथ', स्मिता सिंह - 'सम्मान चुनौती लेकर आता है', डॉ. प्रीत अरोड़ा- 'आज की महिला बहुत सचेत और जागृत है', सुबोध शर्मा- 'आज नारी हर क्षेत्र में सक्रिय है' नूतन पांडेय- 'पाठक और प्रवासी साहित्यकारों का रिश्ता बन रहा है', अनीता सक्सेना- 'लेखन एक यात्रा है मंज़िल नहीं'। ये सभी अट्ठारह साक्षात्कार अलग-अलग लोगों द्वारा लिए गए हैं इसलिए इन प्रश्नों और उनसे प्राप्त उत्तरों में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। ये प्रश्न और उत्तर मिलकर हिन्दी साहित्य के कई आयामों पर प्रकाश डालते हैं क्योंकि इस पुस्तक में एक ही रचनाकार के साक्षात्कार संकलित है इसलिए कुछ सामान्य प्रश्न और उत्तरों में आवृत्ति भी स्वाभाविक है। निरंतरता में पढ़ते हुए इसका आभास होता है।

सुधा ओम ढींगरा की रचनाओं को पढ़कर, पाठक के मन में कई तरह के प्रश्न आते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया भी है। समीक्ष्य पुस्तक "साक्षत्कारों के आईने में" पाठक के मन में उठने वाले प्रश्नों का, बहुत हद तक निवारण कर देती है। भारतीय और यूरोपीय संस्कृति, विशेष रूप से अमेरिकी परिवेश जो सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में बहुतायत में देखने को मिलता है; उसको लेकर जो प्रश्न किए गए हैं वे महत्वपूर्ण हैं। संकलित साक्षात्कारों में भारतीय लेखक, प्रवासी भारतीय लेखक और वैश्विक परिदृश्य में हिंदी लेखकों की स्थिति तथा उनकी रचनाओं के महत्त्व को देखने-समझने का अवसर मिलता है। "साक्षत्कारों के आईने में" पुस्तक, प्रवासी साहित्यकारों की दृष्टि और उनकी अभिव्यक्ति को शब्द देती है तथा प्रवासी साहित्य के विभिन्न आयामों को भी दिखाती है। साहित्यिक मोर्चे पर हिंदी साहित्य को एक नए भावबोध, नए सरोकार, एक नई तरह की व्याकुलता और बेचैनी तथा एक नए अस्तित्वबोध व आत्मबोध को समृद्ध करने का कार्य सुधा ओम ढींगरा ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। उनके इस सृजन की रचना प्रक्रिया को इन साक्षत्कारों के द्वारा एक सीमा तक समझा जा सकता है।

एक विशेष बात यह भी है कि डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने अपने पत्रकारिता कैरियर का आरंभ साक्षात्कार से ही किया था। डॉ. सुधा ओम ढींगरा के शब्दों में- "सन 90 के दशक तक पंजाब की पत्रकारिता का स्वरूप आधुनिक पत्रकारिता से बहुत भिन्न था। दैनिक समाचार पत्रों के हर रोज़ विशेष संस्करण छपते थे। पहला संस्करण धर्म-संस्कृति संस्करण, साहित्यिक संस्करण, फिल्म संस्करण आदि। हर संस्करण में एक साक्षात्कार का होना ज़रूरी होता था। मेरी पत्रकारिता की शुरूआत ही साक्षात्कार से हुई है। हर संस्करण में मेरे द्वारा लिया गया एक इंटरव्यू होता था। मैंने अनगिनत इंटरव्यू लिए साहित्यकारों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, प्रतिष्ठित लोगों, नेताओं, कलाकारों और असंख्य फीचर लिखे। मेरे पहले कॉलम का नाम था 'राह चलते चलते.....' इस कॉलम में जो भी कवर करती बातचीत पर आधारित होता था। साक्षात्कार, समाचार और फीचर पत्रकारिता में ही आते हैं। यूँ कह सकते हैं कि यह सब पत्रकारिता ही है। समाचार की खोज या स्पष्टीकरण के लिए कई बार बातचीत का सहारा लेना पड़ता है। फीचर लिखने के लिए अक्सर विषय से जुड़े लोगों से संवाद करना पड़ता है और साक्षात्कार तो है ही। वार्तालाप पत्रकारिता का मूल ही संवाद है।"

'वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ' भाग-1 और भाग-2 में 50 वैश्विक साहित्यकारों के साक्षात्कार संकलित हैं। यह दोनों ही पुस्तकें साक्षात्कार विधा को ही समर्पित हैं और शिवना प्रकाशन से ही प्रकाशित हुई हैं।

समग्रता में यह पुस्तक न केवल पठनीय है वरन संग्रहणीय है। इस पुस्तक के संपादन के लिए डॉ. रेनू यादव बधाई की पात्र हैं। संपादन एक श्रमसाध्य कार्य है जिसे आपने पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह किया है और इसी का परिणाम है यह पुस्तक। उन्हें मेरी ओर से अनेकानेक शुभकामनाएँ। शिवना प्रकाशन भी बधाई के पात्र है क्योंकि वे लीक से हटकर कार्य कर रहे हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

शब्द गूँज

(कविता संग्रह)

समीक्षक : कैलाश मण्डलेकर

लेखक : अरुण सातले

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

कैलाश मण्डलेकर
15 -16 कृष्ण पुरम कॉलोनी जेल रोड
खंडवा म प्र
मोबाइल- 9425085085

शब्द गूँज अरुण सातले का दूसरा काव्य संग्रह है। उनके पहले संग्रह का नाम "अरुण सातले की कविताएँ" 1998 में सार्थक प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ था जिसमे लगभग बयाँलीस कविताएँ थीं दोनों संग्रहों के बीच बावीस वर्ष का अंतराल है। लेकिन इस अंतराल में उनकी रचनात्मक उपस्थिति के सातत्य को अनेक दूसरे माध्यमों में देखा जा सकता है। जैसे इस दौरान उन्होंने लोकसाहित्य पर केन्द्रित कुछ महत्त्वपूर्ण आलेख लिखे, और एक फीचर फिल्म के लिए लोक संस्कृति पर केन्द्रित गीतों की भी रचना की। इस अवकाश में अरुण सातले की सर्जना में जो उल्लेखनीय बदलाव दिखाई देते हैं उन्हें "शब्द गूँज" की कविताओं में प्रमुखता से रेखांकित किया जा सकता है। अपने पहले संग्रह की कविताओं में सातले का काव्य बोध प्रायः, निजी अनुभवों के इर्द गिर्द मुखर होता है, और इस निजता में वे अपनी कविता के मुहावरे को बहुत कुशलता से गढ़ते दिखाई देते हैं। इधर बीस वर्षों के इस लम्बे वक़्फ़े में जिस गति से सामाजिक और राजनीतिक हालात बदले हैं, इस बदलाव की छाप हर रचनाकार के सृजन में परिलक्षित होती है। जाहिर है कि शब्द गूँज की कविताओं में सातले के काव्य क्षितिज का न केवल विस्तार हुआ है बल्कि अनुभूति के स्तर पर वे काल की छोटी इकाई को लाँघकर अपने समय के व्यापक परिप्रेक्ष्य से भी जुड़ते दिखाई देते हैं। आलोच्य संग्रह के फ्लेप पर लिखे, सुप्रसिद्ध कथाकार उपन्यासकार पंकज सुबीर की टीप के हवाले से कहा जाए तो सातले की कविताओं में करुणा और प्रतिरोध के स्वर का एक ऐसा रसायन मौजूद है जिसकी छाया में वर्तमान जीवन की अनेक आकृतियाँ उभरती हैं। पंकज सुबीर कहते हैं "कविता जब तक द्रवित नही करेगी तब तक पैठेगी नहीं। और पैठेगी नहीं तो फिर स्मृति में भी नहीं बनी रहेगी। अरुण सातले की कवीताएँ पढ़ते हुए यह महसूस हुआ कि ये कविताएँ करुणा और प्रेम के साथ प्रतिरोध और विद्रोह से भरी हुई हैं। सातले की कविताएँ करुणा के उस गहरे स्तर तक उतरती हैं जहाँ पहुँच कर शोषण के विरोध में स्वत: ही विद्रोह पैदा हो जाता है। (किताब के फ्लैप पर पंकज सुबीर का वक्तव्य)

वस्तुत: प्रेम और करुणा सातले की कविता का केन्द्रीय स्वर है। गौर तलब है कि प्रेम जिस रूप में सातले के भाव बोध को आकृष्ट करता है वह न तो दैहिक अथवा मांसल प्रेम है और न ही उन अर्थों में संकीर्ण, जहाँ दीवानगी या लिप्सा को प्रेम के पर्याय के रूप में ग्राह्य समझा जाता है। अरुण सातले प्रेम को एक बड़े फलक पर देखना और अनुभूत करना चाहते हैं। जहाँ प्रकृति हो और प्रकृति से जुड़े वे तमाम उपादान हों जिनमें जीवन अपनी विविध भंगिमाओं में दृश्यमान हो, बहता हो, और साँस लेता हो। प्रेम की इन विरल अनभूतियों में नदी और सागर के अंतर्संबंधों को भी सातले का कवि अनदेखा नही करता चाहता,

"सागर के करीब आते ही नदी श्लथ होकर पसर जाती है, ज़रा और फ़ैल जाती है"

और,

सागर कभी नहीं पूछता कि तुम किन कंदराओं में
निर्जन वन प्रांतरों से या पहाड़ी चट्टानों से लड़ती आई हो मेरे पास।
बस लहर दर लहर अपनी विशाल बाँहों के आग़ोश में
समेट लेता है समूची नदी को आहिस्ता आहिस्ता।

एक और चित्र देखिये।

चुपके से जो टूटा
वह तारा नहीं मैं हूँ \
आकाश में कई उल्कापात होते रहते हैं बे आवाज़।

या

भीगी रेत पर पाँव धँस जाते हैं
कुछ चेहरे आँखों में फँस जाते हैं।

प्रेम की उदात्त और प्रीतिकर अनुभूतियाँ हमें अक्सर अपनी निजता से परे कहीं और ले जाती है और एक ऐसी जगह छोड़ आती हैं जहाँ नदी, तारे, आकाश और समुद्र जैसी अनेक चीज़ें अपनी निष्कलुष उपस्थिति के साथ विद्यमान हैं। इस उपस्थिति को कवि की आँखों से देखा जाए तो कुछ पल के लिए ही सही, विदेह हुआ जा सकता है। अरुण सातले अपनी एक कविता में नदी को सूँघने का आग्रह करते हैं। "कुछ देर खड़े होकर नदी को सूँघो /उसकी गंध बस जाएगी भीतर तक।" नदी को सूँघना वस्तुत: प्रकृति को अपने समूचे अवयवों में आत्मसात् करना है। प्रेम का यह भी रूप है जो देह के पार जाकर देखा जा सकता है। गंध और स्पर्श भी प्रेम के ही रूपाकार हैं। इन कविताओं में संगीत और लोक की संश्लिष्टता एक सहज आवेग के साथ मुखर होती है। प्रकृति के निकटतम और अनगढ़ उपादान रचनाकार के काव्य बोध को संबल प्रदान करते हैं। इधर बाज़ार के दुश्चक्रों ने जिस साजिश के तहत लोक जीवन को हाशिये पर डाल रखा है, अरुण की कविता उसे सहेजने की जुगत करती है। यहाँ, आधुनिकता बोध के आग्रहों से परे पारम्परिकता तथा जड़ों की परवाह करना ही कवि का यथेष्ठ है। यही कारण है कि माँ की पुरानी संदूक में उन्हें गहन पारिवारिक ऊष्मा महसूस होती है। अरुण का मानना है कि "संवेदना किसी न किसी अनुपात में सबके पास है। यह संवेदना ही है जो व्यक्ति के मनुष्य होने का प्रमाण है। आलोच्य संग्रह में जो कविताएँ प्रेम से इतर हैं उनमे समाज, धर्म और व्यक्ति के आचरण के अनेक बिम्ब हैं। धर्म शीर्षक से लिखी गई कविता में धर्म को प्रचलित मान्यताओं से अलग करते हुए नए अर्थों में देखने की चेष्टाएँ है। जैसे हवा प्रगट रूप में भले ही दिखाई नहीं देती हो पर उसके यथार्थ अथवा उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता। लिहाजा आदमी हवा की तरह अदृश्य रहकर भी अपने कर्त्तव्य बोध के प्रति निष्ठावान रह सकता है। "हम क्यों नहीं निभाते हवा की तरह अपना धर्म"। इसी तरह "उसका झुक जाना" में वृद्धा माँ की स्मृतियाँ हैं। इसमें सजल रहने के लिए झुर्रियों में आँसू सहेजने वाला बिम्ब विधान सर्वथा नया और विचारणीय है। सजल रहने का एक अर्थ करुणावान बने रहना भी है। उम्र का एक लंबा फासला तय करने के बाद जीवन के प्रति जो व्यावहारिक विनम्रता और करुणा आने लगती है उसका इन पंक्तियों में बेहतर निर्वाह हुआ है। कुतरसूँघ शीर्षक कविता पढ़ते हुए लगता है कि यह कविता कुत्तों की घ्राण शक्ति पर केन्द्रित है लेकिन व्यंजना के अतिरेक अथवा अति कथन के आकर्षण में रचनाकार कुत्ते के हड्डी चूसने वाले एक प्रचलित मुहावरे पर आकर ठहर जाता है। फलत: रचना में एक द्वंद्व की स्थति निर्मित हो जाती है। इसे पढ़ते हुए लगता है रचना का शीर्षक कुतर सूँघ कि अपेक्षा कुतर चरित्र होना चाहिए। पृथ्वी नामक रचना हमारे समय के अंतर्विरोधों और दुराग्रहों पर केन्द्रित है। मुक्ति की आकांक्षा प्रत्येक मनुष्य की होती है पर कवि की चिंता यह है कि पृथ्वी और स्त्री दोनों की नियति एक जैसी है, क्योंकि दोनों ही हमारी पाशविक जकड़न में हैं। स्त्री के मनोविज्ञान पर एकाग्र एक अन्य रचना "घर लौटती लड़की" में सड़क पर चलती लड़की के भय, सपनों और विद्रोह को समझने का प्रयास है। आग को रोटी में तब्दील करने की लालसा में, मनुष्य के कल्याण के तत्व निहित हैं। "आग से" नामक कविता में अरुण कहते हैं "देखना चाहता हूँ उबलती हुई दाल से उठती गंध में कैसे बस जाता है स्वाद"। इसी तरह दीवारों पर नारों की जगह उपलों को देखना और उन्हें क्रांति बीज कहने में कवि के गहरे निहितार्थ हैं। आलोच्य संग्रह में "आँच", "दुपट्टा" "आवाज़ें", "सौदागर", "दीमकें" "बावड़ी के तल में", "परिंदे" और "शिलान्यास" जैसी अनेक रचनाएँ अरुण सातले के रचनात्मक उत्कर्ष का परिचय देती हैं। अनुभवों और स्मृतियों के अन्तर्संबंधों से उपजी अरुण सातले की इस अभिव्यक्ति का स्वागत होना चाहिए। आमीन।

000

नई पुस्तक

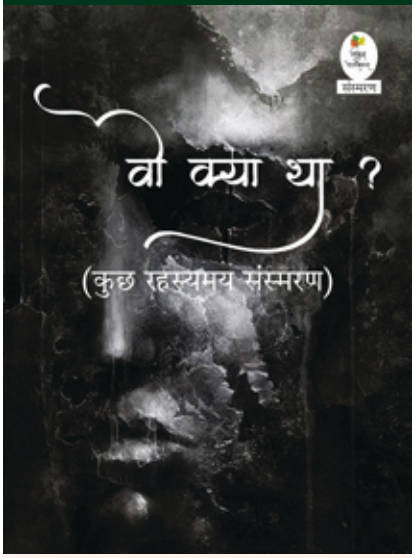

वो क्या था ?

(रहस्यमय संस्मरण संग्रह)

संपादक : गीताश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

इस अलग तरह के संग्रह में साहित्यकारों के वे संस्मरण संकलित किए गए हैं, जिनको लेकर उनके मन में अभी भी ऊहापोह है कि वो क्या था? इस संग्रह में उषाकिरण ख़ान, धीरेन्द्र अस्थाना, दिव्या माथुर, सुधा ओम ढींगरा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, लक्ष्मी शर्मा, पंकज सुबीर, आशा प्रभात, निर्देश निधि, अनिल प्रभा कुमार, शिखा वार्ष्णेय, शर्मिला जालान, पंकज कौरव, योगिता यादव, प्रज्ञा पांडेय, पापोरी गोस्वामी, सुनीता शानू, अंजू शर्मा, वंदना यादव, सपना सिंह, प्रज्ञा तिवारी, नीलिमा शर्मा, प्रतिमा सिन्हा, रति सक्सेना, शिल्पी झा, गीताश्री आदि लेखकों ने अपने रहस्मय संस्करण लिखे हैं। किताब की संपादक गीताश्री इसके बारे में कहती हैं- ऐसा संस्मरण लिखना आसान काम नहीं होता है। अपनी आत्मा के साथ साक्षात्कार करके क़िस्से ढूँढ़ निकालना है। कई साथी दर्द के दरिया में डूबे, कई रातों तक स्मृति के गलियारे में भटकते रहे होंगे। कुछ भूला, फिर से याद किया होगा। कोई पीड़ा फिर से जी होगी। कोई घटना आँखों के सामने फिर फिर घटी होगी।

000

पुस्तक समीक्षा

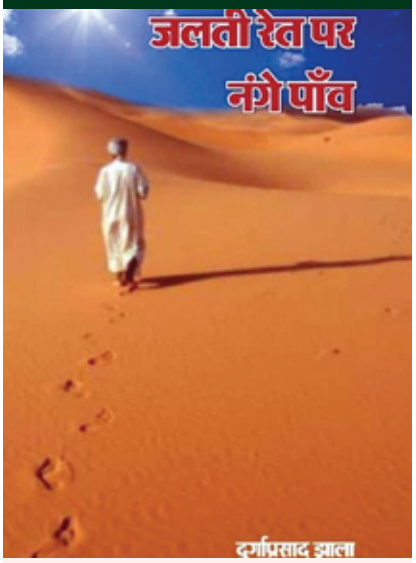

जलती रेत पर नंगे पाँव

(कविता संग्रह)

समीक्षक : मनीष वैद्य

लेखक : दुर्गाप्रसाद झाला

मनीष वैद्य
11 ए, मुखर्जीनगर, पायनियर चौराहा,
देवास (मप्र) पिन 455 001
मोबाइल - 98260 13806
मेल - manishvaidya1970@gmail.com

अस्सी से ज्यादा बसंत देख चुके और इन दिनों भी सबसे अधिक सक्रिय बुज़ुर्ग कवि दुर्गाप्रसाद झाला की ताज़ा कविताओं का संग्रह आया है-'जलती रेत पर नंगे पाँव'। इसमें अपने रचना कर्म पर टिप्पणी करते हुए वे ख़ुद कहते हैं- 'कविता मेरे लिए कर्म से भिन्न कोई अमूर्त सत्ता नहीं है। हर कर्म जैसे दायित्व बोध से सम्पन्न होने पर ही सार्थकता पाता है, उसी प्रकार कविता की अर्थवत्ता के लिए दायित्व-चेतना को अनिवार्य मानता हूँ-अन्यथा वह एक वायवीय शब्द या निरर्थक ध्वनि-मात्र रह जाएगी। मेरे लिए आदमी और आदमी से अलग कविता का कोई अर्थ नहीं है। आदमी और उसकी ज़िंदगी की यात्रा ही कविता है और यह यात्रा अपने समय और धरती से जुड़ी हुई होते हुए भी अपनी निरंतर गति के क्रम में उनका अतिक्रमण भी करती है। वह काल और देश से बद्ध भी है और मुक्त भी।'

उनकी कविताओं में छोटे-छोटे प्रश्न हैं, प्रश्नचिह्नों की शक्ल में जैसे लहरें उठती हैं! अंतरंग, पारिवारिक जीवन की विडम्बनाएँ और वृहत्तर सामजिक-राजनैतिक विडम्बनाएँ इस तरह छनकर कविताओं की अंतर्वस्तु पर पड़ती हैं जैसे गिरजाघर के नीले-पीले शीशों से छनकर उसके सूने फर्श पर धूप पड़ती है... धूल का मौन रेला उजागर करती हुई! इन कविताओं में मानवीय चिन्ताएँ भी हैं और भविष्य के प्रति एक गहरी आश्वस्ति भी। छोटी-छोटी इन कविताओं में अपने समय और समाज को पकड़ने की जद्दोजहद है, स्त्री का अंर्तमन है तो प्रकृति को भी अलग-अलग कोणों से देखा गया है। छोटे से कैनवास पर भी संवेदना का रंग बहुत गाढ़ा है। इनका विषय विस्तार बहुत दूर तक जाता है और इनमें एक विचारवान कवि के रूप में उनकी गहन-गंभीर दृष्टि और अनुभवजन्य समझ की झलक मिलती है।

उनके ताज़ा संग्रह की कविताएँ आकार में छोटी और अर्थवत्ता में बड़ी हैं। संग्रह की पहली और शीर्षक कविता-"चल रहा हूँ/ जलती रेत पर/ नंगे पाँव/ एक नदी की खोज में/ भरोसा दे रहे हैं/ पाँव/ ज़रूर मिलेगी नदी/ आज नहीं तो कल।" इसमें यह जो चलना है, जीवन भर का। जलती रेत पर नंगे पाँव चलना है। और यह जो नदी है, भरोसे की। कवि इतना कष्टसाध्य उपक्रम करते रहने के बरसों बाद भी नदी के प्रति पूरी तरह आश्वस्त है। यह नदी हमारे बीच के भरोसे की है, संवेदनाओं की है, मनुष्यता की है, सरल जीवन की है.. जिसे वे सुंदर और सदानीरा देखना चाहते हैं। कवि का यह सपना एक नई और बेहतर दुनिया के सपने से निकलता है और कविता अनायास बड़ी हो जाती है। कुछ छोटी कविताएँ देखिए-"स्त्री धरती है/ पुरुष/ धरती पर लहलहाता पेड़" या—"मिट्टी का दीया/ नदी की लहरों से/ खेलता है/ डूबता नहीं/

पत्थर डूब जाता है।"

संग्रह की एक और कविता है-" आवाज़ आ रही है/ आसमान से नहीं/ उस जगह से/ जहाँ खेत बंजर पड़े हैं/ और धरती के छाले पड़े पैरों से/ खून टपक रहा है.... क्या कवि के कानों तक वह आवाज़ आ रही है? उनकी कविताओं में कई परतें होती है, जिन्हें पाठ-पुनर्पाठ से समझा जा सकता है। हालाँकि वे जटिल भी नहीं है लेकिन दो तीन परतों में और स्पष्ट होकर नए अर्थ खोलती है। यह उनकी ताक़त है।

बीते साठ सालों से लगातार लेखन में सक्रिय होने के बाद भी उन्हें कोई अतिरंजना, कृत्रिमता, हाई प्रोफाइल या घमंड छूता तक नहीं। वे एक सहज-सरल और विनम्र कवि मन के व्यक्तित्व वाले हैं। जबकि इन दिनों नए कवि चार कविताएँ लिखकर आसमान से नीचे देखते ही नहीं। शाजापुर पर उनकी कविताओं में अपने शहर की आत्मीयता को साफ़-साफ़ पढ़ा-गुना और समझा जा सकता है। इधर के दौर में जिस तरह छोटे शहरों, क़स्बों और गाँवों में भी बाज़ार के साथ बड़े शहर और उसकी तासीर मर्ज होते जा रहे हैं तो इन पंक्तियों का मर्म आसानी से सामने आता है। हम महानगरों की भीड़ का हिस्सा तो बन जाते हैं लेकिन हमारा आत्मीय मन उसमें रम नहीं पाता। हमें वहाँ भीड़ के बावजूद अकेलापन ही सालता रहता है। तमाम तरक्कियों के बाद भी हम अपने छोटे शहरों, क़स्बों और गाँव के उस अपनेपन को लगभग नदारद ही पाते हैं। इसके लिए पूरे समय छटपटाते रहते हैं।

प्रेम को यहाँ कवि अलग ढंग से महसूस करता है। यहाँ प्रेम का दायरा काफी बड़ी जगह में फैला हुआ है। इस प्रेम की परिधि में पूरी धरती ही शामिल है। इसी तरह अंतरंग की अनुभूतियों में भी कई जगह सुंदर पंक्तियाँ बन पड़ी हैं। "प्रेम जीवन का एक ऐसा रंग है/ जिसमें दुनिया के सारे रंग अपना अर्थ पा लेते हैं।" कुछ कविताओं में वे अपने तल्ख तेवर के साथ मौजूद हैं लेकिन ज़्यादातर कविताएँ उनकी तासीर के अनुरूप हौले से कान में कुछ कहते हुए गुज़र जाती है और हम देर तक उसकी खुशबू को महसूस करते रह जाते इन कविताओं में तो विषय वैविध्य के साथ कवि के अनुभवों का एक भरा-पूरा संसार कायम है। इनमें जीवन की धड़कन और मानवीय मूल्यों की पड़ताल के साथ सरोकार को महसूस करना ज़रूरी है। हम जीवन राग को सुन पाते हैं। जीवन की धड़कन इनके आसपास से होती हुई गुज़रती-सी लगती है। ये कविताएँ दियासलाई की उन तीलियों की तरह हैं जो अपनी बनक में छोटी होने के बाद भी चिंगारी पैदा करने और उसके दावानल बना देने की सामर्थ्य रखती है। इससे पहले भी उनके दर्ज़नभर कविता संग्रह, आलोचना की तीन किताबें और उनके संपादन में दो किताबें आ चुकी हैं। इस तरह उनका अपना एक भरा-पूरा रचना संसार है। उनका पहला संग्रह 'चेतना के स्वर' सन 1962 में आया था और इसके लंबे समय बाद सन 2003 में उनका संग्रह 'यात्रा जारी है' आया। 41 साल बाद उनकी सृजन यात्रा एक बार फिर चल निकली तथा 2004 में 'अक्षर और आदमी का रिश्ता' एवं 2005 में 'बहती है एक नदी' प्रकाशित हुआ। पौराणिक नचिकेता आख्यान को प्रगतिशील चेतना के साथ एक लंबी कविता में उन्होंने लिखा, जो वर्ष 2016 में 'प्रश्नों की सलीब पर' शीर्षक से छपा। इसमें जो सवाल हैं, वे सामयिक जीवन मूल्यों की पड़ताल करते हैं। नचिकेता के ज़रिए उन्होंने जीवन के अर्थ और उसका सत्य नए संदर्भों में तलाशने की कोशिश की है। 2019 में छपी 'अपने समय से गुज़रते हुए संग्रह में उनकी लगभग सत्तर से ज़्यादा कविताएँ शामिल हैं।

यह कवि का सपना है और अपना दृढ़ निश्चय भी, जो वे अपनी तरह का समाज बुनना चाहते हैं। संवेदनाओं से भरा समाज, जिसे हम करीब-करीब बिसरा चुके हैं। हमारी पारम्परिक दृष्टि और हमारा प्राचीन समाज इसी संवेदना को सामुहिकता में जीता रहा है लेकिन इधर के सालों में हमने उसे तेज़ी से उजाड़ लिया है। वे हमारे समाज को फिर से जोड़ना चाहते हैं। आमीन कि वे इसमें सफल हों।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

बारिश तथा अन्य लघुकथाएँ

(लघुकथा संग्रह)

समीक्षक : हीरालाल नागर

लेखक : सुभाष नीरव

प्रकाशक : किताबगंज प्रकाशन

हीरालाल नागर
बी 7/601 , फ़ार्च्यून सौम्या हेरिटेज़,
होशंगाबाद रोड,
इंटरनेशनल पब्लिक स्कूल के पास,
भोपाल (मध्य प्रदेश)
मोबाइल- 9582623368

सुभाष नीरव हिन्दी साहित्य में एक चर्चित नाम है इन दिनों, अनुवाद के लिए और लघुकथा लेखन के लिए भी। आरंभ में इन्हें कहानीकार के रूप में जाना-पहचाना गया। कविताएँ भी लिखते रहे, सो कवि भी हुए। आज भी हैं। लेकिन इनका अनुवादक वाला चेहरा लोगों को हमेशा आकर्षित करता रहा।

मुझे सुभाष नीरव को एक कथाकार के रूप में देखना ज़्यादा सुविधाजनक लगता है। उन दिनों जब इनका प्रथम कहानी संग्रह 'दैत्य तथा अन्य कहानियाँ' (1990 में) छपकर चर्चा में आ चुका था, तब एक अनुवादक और एक लघुकथाकार के रूप में इनका लेखन संघर्ष की राह से गुज़र रहा था। नीरव ने यह सफ़र शनै: - शनै: पूरा किया और इन्हें सफलता भी मिली। आजकल इनके कवि, कथाकार, लघुकथाकार और अनुवादक के चेहरे को खूब पहचाना जा रहा है। इस समय जब कोरोना वायरस का प्रकोप पूरे विश्व में फैला है, मैं सुभाष नीरव का ताज़ा लघुकथा संग्रह 'बारिश तथा अन्य लघुकथाएँ' लेकर बैठा हूँ। इसमें नीरव की 51 नई-पुरानी चुनिंदा लघुकथाएँ है और सब की सब कथा फार्म में हैं। जिसमें इनके यहाँ लघुकथा छोटे आकार वाली छोटी रचना भर नहीं है, इसमें कथा है, कथा-भाषा है और मिज़ाज लघुकथा का है। सुभाष नीरव पर पंजाबी लघुकथाकारों और कहानीकारों का गहरा असर है, यानी इनमें क़िस्सागोई की मौलिक छवि है और हिन्दी कहानी की चेतना विद्यमान है। नीरव की लघुकथा कहानी की तरह शुरू होती है और लघुकथा की तरह ख़त्म होती है। बीच में ये शिल्पगत कौशल की आजमाइश करते हैं, जिसके कारण लघुकथा का यथार्थ उजागर हो उठता है। लघुकथा का यह फार्म सुभाष नीरव ने स्वत: अर्जित किया हो, ऐसा नहीं है, क्योंकि जिन दिनों रमेश बतरा, महावीर प्रसाद जैन, विकेश निझावन, भगीरथ परिहार, बलराम, जगदीश कश्यप, सतीशराज पुष्करणा, डॉ. कमल चोपड़ा, महेश दर्पण, सुकेश साहनी जैसे लेखक लघुकथाएँ लिख रहे थे, और पत्र-पत्रिकाओं में खूब छप रहे थे, उन दिनों सुभाष नीरव लघुकथा-लेखन के शुरूआती दौर में थे, पर लिख रहे थे। इसलिए ये कमोबेश इनके समकालीन ही हैं। उन दिनों कुछ लेखक लघुकथा को 'छोटी कहानियाँ' शीर्षक से भी छाप रहे थे। उस समय छोटी कहानियों का अपना रुतबा था और वे अख़बार के पन्नों पर छप भी जाती थीं। सन् 1975 के बाद की लघुकथा पीढ़ी ने लघुकथा लेखन पर विशेष ध्यान दिया। कथाएँ खास विधा की पहचान के रूप में दर्ज की गईं। हिन्दी में वरिष्ठ लेखकों ने भी लघुकथा-लेखन पर अपनी मुहर लगाई और विष्णु प्रभाकर, असगर वजाहत, हरिशंकर परसाई, जैनेंद्र, कमलेश्वर, चित्रा मुद्गल आदि कथाकारों ने लघुकथा लेखन पर सहमति दर्ज़ की।

सुभाष नीरव की लघुकथाओं के मद्देनज़र यह कहा जा सकता है कि वह लघुकथा में कथा के ख़ास आग्रही हैं। यदि लघुकथा में कथा नहीं है तो किस बात की 'लघुकथा'। दूसरी बात,

जिसे एकमत से स्वीकार किया गया कि लघुकथा छोटी ही हो। हालाँकि ये सब पुरानी बातें हैं और इनका पिष्ट-पोषण हो रहा है। अब इस पर चर्चा की कोई गुंजाइश भी नहीं बचती और मुद्दा भी बहस-तलब नहीं है।

सुभाष नीरव ने अपनी लघुकथाओं में शिल्पगत लाघव से उन्हें लघुकथा का तेवर प्रदान किया है, यह इनकी लघुकथाओं की मुख्य विशेषता भी है। सबसे पहले उदाहरण के लिए हम संग्रह की पहली लघुकथा 'बारिश' को ही सामने रखते हैं। आकाश में बादलों का छाना और पानी की बूँदों का गिरना स्वाभाविक है। मगर रिमझिम बारिश में लड़की-लड़के का मोटर साइकिल पर सैर के लिए निकल पड़ना, कथा का मूल स्रोत है। इसमें कथोपकथन और वातावरण, कहानी की तरह है, मगर 'बारिश' में भीगते लड़का-लड़की के नाचने-झूमने के साथ एक मज़दूर और बूढ़े आदमी का उठकर 'बारिश' का आनन्द लेने लगना 'लघुकथा' का मंतव्य है। सुभाष नीरव की लघुकथाओं में कहानी का विसर्जित रूप-रंग नई चमक पैदा करता है। बूढ़े आदमी को पता भी नहीं चलता, कब वह उठा और कब वह मस्ती में झूमने लगा।

यह सही है कि सुभाष नीरव की लघुकथाओं का हरा मैदान, कथा की धारासार 'बारिश' में लगातार भीग रहा है। पता भी नहीं चलता कि वे छोटी-छोटी कहानियाँ जिन्हें हम लघुकथा कहते हैं, वे बड़ी कहानियों की गंभीर और व्यापक कथा बयान कर रही हैं। हालांकि उनकी पहचान मुख्य रूप से विसंगतियों और अन्तर्विरोधों के मार्फ़त दर्ज़ की जा रही हैं। 'लाजवन्ती', 'तकलीफ़', 'जानवर', 'बरफ़ी', 'डर' आदि लघुकथाएँ, लघुकथा लेखक की इस प्रवृत्ति को प्रमुख रूप से उजागर कर रही हैं।

हिन्दी लघुकथा लिखने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। एक समय हम अपने वरिष्ठ कथाकारों की लघुकथाओं को मॉडल मानते थे। भाषा, शिल्प और उसकी रवानी को हमने अपने वरिष्ठ लेखकों से ही अर्जित किया। माधव राव सप्रे, माखनलाल चतुर्वेदी, रावी, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, चित्रा मुद्गल, महाराज कृष्ण जैन, असगर वजाहत आदि लेखकों की लघुकथाओं ने हम पर असर डाला, मगर लघुकथा के मौलिक लेखन को बरकरार रखने में रमेश बतरा, बलराम, कमलेश भारतीय, महावीर प्रसाद जैन, महेश दर्पण, सतीशराज पुष्करणा, बलराम अग्रवाल, सुकेश साहनी, अशोक भाटिया आदि ने कड़ी मेहनत की। सुभाष नीरव ने भी अपने तईं मौलिक लघुकथाएँ लिखीं और लघुकथा साहित्य को समृद्ध किया।

सुभाष नीरव के लघुकथा संग्रह 'बारिश तथा अन्य लघुकथाएँ' की अधिकांश लघुकथाएँ समाज, घर-परिवार और जीवन के अंतरंग हिस्सों को उजागर करती हैं और उनके भीतर के यथार्थ को निर्णायक मोड़ पर ला खड़ा करती हैं। 'दर्द', 'डूबते को किनारा', 'वेश्या नहीं', 'गुड़िया', 'तृप्ति', 'बाय अंकल', 'मकड़ी', 'कोठे की औलाद', 'एक क़स्बा और', 'मरना-जीना', 'कमरा', 'बीमार' और 'धर्म-विधर्म' आदि लघुकथाओं में सुभाष नीरव के लघुकथा लेखन का सर्वोत्तम सुरक्षित है। कथ्य, भाषा, शिल्प के बल पर ये लघुकथाएँ काल की परिधि को तोड़कर आगे बढ़ती हैं और लघुकथा पर छाये विभ्रम को तोड़ती हैं।

हालाँकि कुछ लघुकथाएँ संग्रह में ऐसी भी है जिन्हें लघुकथा कहने में संकोच होता है। 'लड़की की बात', 'इस्तेमाल', 'चन्द्रनाथ की नियुक्ति', 'दिहाड़ी' आदि लघुकथाएँ इस कोटि में चिह्नित की जा सकती हैं।

सुभाष नीरव मूलरूप में कथाकार और अनुवादक है। पंजाबी साहित्य का इन्होंने हिन्दी में प्रच्छन्न अनुवाद किया है। पंजाबी लघुकथाओं का भी अनुवाद इनकी कलम से हुआ है। कविता संग्रह भी प्रकाशित हैं, मगर ये कथाकार, लघुकथाकार और अनुवादक की भूमिका में ख़ास महत्त्व रखते हैं। इनके संग्रह 'बारिश तथा अन्य लघुकथाएँ' की लघुकथाएँ अपनी ज़मीनी सच्चाई के लिए हमेशा पढ़ी भी जाती रहेंगी और पाठकों द्वारा सराही भी जाती रहेंगी।

000

नई पुस्तक

वैश्विक प्रेम कहानियाँ

(कहानी संकलन)

संपादक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

दुनिया भर के हिन्दी लेखकों की श्रेष्ठ प्रेम कहानियों को संकलित कर यह संकलन तैयार किया गया है। इस संग्रह में अमेरिका से उमेश अग्निहोत्री, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पुष्पा सक्सेना, अनिल प्रभा कुमार , सुधा ओम ढींगरा, डॉ.अफ़रोज़ ताज, अमरेंद्र कुमार, कैनेडा से स्वीट डिश, हंसा दीप, शैलजा सक्सेना, ब्रिटेन से उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, शैल अग्रवाल, कादम्बरी मेहरा, दिव्या माथुर, अरुण सब्बरवाल, तेजेन्द्र शर्मा, ऑस्ट्रेलिया से रेखा राजवंशी, डेनमार्क से अर्चना पैन्यूली, त्रिनिडाड / टोबेगो से आशा मोर, चीन से अनीता शर्मा, संयुक्त अरब अमीरात से पूर्णिमा वर्मन, भारत से नासिरा शर्मा, कृष्ण बिहारी, मनीषा कुलश्रेष्ठ, गीताश्री, पंकज सुबीर की कहानियाँ शामिल हैं। संपादक सुधा ओम ढींगरा इस किताब के बारे में कहती हैं- मेरा पूरा प्रयास रहा है प्रेम, प्यार, इश्क, मोहब्बत और प्रीत के इत्र की ख़ुशबू इस पुस्तक से आए ।

000

पुस्तक समीक्षा

अटकन-चटकन

(उपन्यास)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : वंदना अवस्थी दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

वंदना अवस्थी दुबे हिन्दी भाषा की एक बेहद संभावनाशील लेखिका हैं। इनका कहानी संग्रह "बातों वाली गली" काफी चर्चित रहा था। "अटकन-चटकन" इनका पहला उपन्यास है। "अटकन-चटकन" पारिवारिक संबंधों पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है। हर उपन्यास में अपने समय की धड़कनें होती हैं और वे सब यहाँ हैं। उपन्यास का कथ्य पारिवारिक परिवेश से जुड़ा हुआ है। इसका कथानक अनेक घटनाओं को लिए हुए है। इसमें नारी को परिवार के बीच परखने का प्रयास किया गया है। उपन्यास की मुख्य किरदार सुमित्रा और कुन्ती हैं क्योंकि उपन्यास का ताना-बाना इनके इर्द-गिर्द बुना गया है। उपन्यास के सभी पात्र सहज और स्वाभाविक हैं। शुरूआत से ही उपन्यास पाठक को अपनी गिरफ़्त में लेने लगता है। इस उपन्यास में कथाकार ने सुमित्रा के रूप में नारी की परंपरागत, त्यागमयी, ममतामयी छवि को उकेरा है। सुमित्रा जीवन भर अपनी सगी छोटी बहन कुन्ती के अत्याचार सहन करती है। सुमित्रा एक आदर्शवादी पात्र है। सुमित्रा अपने मायके के परिवेश से भिन्न परिवेश में अपने आप को ढाल लेती है। सुमित्रा की छोटी सगी बहन कुन्ती परिवार में षड्यंत्र रचती, परिवार के सदस्यों पर अत्याचार करती वाचाल नारी के रूप में सामने आती है। कुन्ती को बचपन से ही अपने रंग रूप को लेकर हीन भावना है क्योंकि उसके भाई-बहन सभी दिखने में बहुत सुन्दर हैं। उपन्यास का शीर्षक "अटकन चटकन" अत्यंत सार्थक है। कुन्ती सुमित्रा की छोटी बहन होने के बावजूद सुमित्रा की जेठानी बनती है। ससुराल में परंपरागत संस्कारों वाला तिवारी परिवार कुन्ती को सहन नहीं कर पाता है। लेखिका ने कुन्ती के माध्यम से उन तमाम स्त्रियों की मनोदशा को चित्रित किया है जो किसी वजह से कुंठाग्रस्त हैं। लेखिका ने कुन्ती को एक कर्कशा स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वह प्रतिदिन अपने कर्कश स्वभाव के कारण अपने संयुक्त परिवार में अशांति उत्पन्न करती है। कुन्ती के यातनापूर्ण व्यवहार से उसका पूरा परिवार पीड़ित दिखाई देता है। वंदना अवस्थी दुबे ने उपन्यास के अंत में कुन्ती के एकाकीपन को रेखांकित किया है। कुन्ती का एकाकीपन अपने स्वभाव व व्यवहार की वजह से है। कुन्ती को रह-रह कर सुमित्रा के साथ उसके द्वारा किए गये दुर्व्यवहार याद आते हैं। अंत में कुन्ती टूट जाती है।

लेखिका ने पात्रों का सृजन कथानक के अनुरूप ही किया है। रोजमर्रा के प्रसंगों में कथाकार ने आँचलिक परिवेश, स्त्रियों की वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, स्थानीय बोली और उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। उपन्यास का कथानक यथार्थ परक है और कथाकार ने समकालीन सच्चाइयों तथा परिवार में स्त्रियों की हालत को निष्पक्षता से प्रस्तुत किया है।

अपने ही खेतों पर काम करने वाले ढेरों मज़दूरों के होते हुए भी घर की लिपाई-पुताई का काम बहुएँ करतीं। दोपहर में कंडे पाथने का काम भी बहुएँ ही करतीं, घर के पीछे बनी गौशाला में जा के। भगवान की दया से गौशाला में पच्चीस दुधारू गाय-भैंसें थीं। सो घर में घी-दूध पर्याप्त था, लेकिन दूध पीने के लिए केवल घर के मर्दों को या छोटे बच्चों को दिया जाता। बाकी जमा दिया जाता।

पात्र अपने दैनंदिन कार्यों से अपने चरित्र का उद्घाटन करते हैं। सुमित्रा, कुन्ती, जानकी इत्यादि प्रमुख किरदारों के जीवन की प्रामाणिक एवं सहज अभिव्यक्ति के अनेक सजीव चित्रण इस उपन्यास में खींचे गए हैं।

बड़की बिन्नू के जन्म के बाद सुमित्रा जी की अम्मा ने कुन्ती को भी सुमित्रा के साथ भेज दिया था, मदद के लिए। चेन ग़ायब हुई तो अतिसंकोची सुमित्रा जी ने ये बात केवल कुन्ती को

बताई और कुन्ती ने उसका बतंगड़ बना दिया। ख़ूब रोना-धोना मचाया कि चेन हमने चुरा ली क्या? कुन्ती की बुक्का फ़ाड़ रूलाई से घबराई सुमित्रा जी ने किसी प्रकार उन्हें चुप कराया। भरोसा दिलाया कि वे कुन्ती पर शक़ नहीं कर रहीं। बाद में ये चेन सुमित्रा जी ने कुन्ती के बक्से में देख ली थी, रूमाल में लिपटी हुई, लेकिन उन्होंने कहा कुछ नहीं। और कुन्ती की बेशर्मी देखिये, वही चेन पहने फ़ोटो भी खिंचवा ली।

कुन्ती की बड़ी बहू जानकी साहसी, बिंदास, निडर, निर्भिक और दबंग है। अपनी सास कुन्ती द्वारा किए जाने वाले शोषण के प्रति जानकी का विद्रोही स्वर सुनाई पड़ता है। जानकी स्पष्टवादी नारी है। वह कहीं भी विवश, लाचार या कमज़ोर नहीं दिखती। जानकी का किरदार अपने आसपास अपनी अत्याचारी सास से जूझती किसी भी औरत को अपने करीब लगता है।

कुन्ती की ज़हर घुली आवाज़ सुनाई दी - "इस कुलच्छनी ने जिस दिन से इस घर में पैर रखा है, उसी दिन से घर में केवल बुरा ही बुरा हो रहा। संकटों का पहाड़ बन के टूटी है ये लौंडिया।" इतना सुनना था कि जानकी चौके से निकल के बाहर आ गई। माथे तक ढँका आँचल उसने पीछे को फेंका और कुन्ती की ओर दौड़ पड़ी। जब तक कोई कुछ समझता, तब तक कुन्ती की गर्दन जानकी के बलिष्ठ हाथों में थी। जानकी वैसे भी अच्छी क़द-काठी की थी। स्वास्थ्य भी अच्छा भला था, जबकि कुन्ती छोटे से क़द की दुबली-पतली महिला। कुन्ती के वश में ही नहीं था ख़ुद को जानकी से छुड़ा पाना। सब किशोर की तीमारदारी छोड़, कुन्ती की तरफ दौड़े। किसी प्रकार कुन्ती को जानकी के पंजों से छुड़ाया। गर्दन सहलाती कुन्ती चीख के रोना ही चाहती थी कि जानकी गरजी - "मौं सें आवाज़ न निकारियो तुम अम्मा। भौत हो गओ तुमाओ गाली गुप्ता। औ जिये तुम जानकी समझ रईं न, बा जानकी नौंई, हम हैं पीपल वाले बब्बा जू। ई मौड़ी की रच्छा हमें करने। अब बोलियों कछु। बोलबो तौ दूर, तुम केवल सोच देखियो। अँधेरे में आ कें घिचिया मसक दैने तुमाई। अपनी ख़ैर चाने, तौ सुदर जइयो।" इस आकाशवाणी ने कुन्ती की आवाज़ वहीं गले में घोंट दी। वो कुन्ती जिसके आगे सब थर थर काँपते थे, पीपल वाले बब्बा जू का नाम सुनते ही थर-थर काँपने लगी। जानकी अपनी सास कुन्ती को सीधे रास्ते पर लाने के लिए यह सब नौंटकी करती है।

उपन्यास में जीवन के हर शेड के रंग है। कथाकार ने सभी पात्रों की जीवन शैली और उनकी मन:स्थिति जैसे अक्खड़ कुन्ती के टुच्चे स्वार्थ, सुमित्रा जी का भोलापन, सहनशीलता, त्याग और क्षमा करने की अपार शक्ति, जानकी का बिंदासपन, बड़के दादाजी का रुतबा, कुन्ती के बड़े बेटे किशोर का भोलापन, मासूमियत, कुन्ती के छोटे बेटे छोटू की चतुराई इत्यादि का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। इनके अलावा इस उपन्यास में तिवारी जी अर्थात सुमित्रा के पति, सुमित्रा की देवरानी रमा, छोटी काकी, छाया, शास्त्री जी, अज्जू, राहुल, सुबोध इत्यादि चरित्र भी हैं, जिनकी अलग-अलग गरिमा है। इस उपन्यास में नारी के विभिन्न रूपों का विश्लेषण किया गया है। वंदना जी गहरे शोध के साथ अपने पात्रों का सृजन करती हैं। कथाकार ने किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है। पूरा उपन्यास एक सधी हुई भाषा में लिखा गया है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा यह उपन्यास आंचलिक संवादों के साथ संवेगात्मक अनुभवों का सच्चा खाका प्रस्तुत करता है। उपन्यास पाठकों के मन मस्तिष्क पर असर छोड़ते हुए सकारात्मक सोच अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इस लघु उपन्यास का फलक समकालीन जीवन को अपनी पूरी समग्रता के साथ प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करता है। पात्रों के स्वभाव के अनुसार भाषा की बुनावट है। उपन्यास समाप्त होने तक सभी पात्रों की मित्रता पाठक से हो चुकी होती है। उपन्यास रोचक है और अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बांधे रखने में सक्षम है। वंदना अवस्थी दुबे के प्रथम उपन्यास "अटकन-चटकन" का साहित्य जगत् में स्वागत है, उनकी यह यात्रा जारी रहे।

000

नई पुस्तक

विमर्श दृष्टि - पंकज सुबीर की कहानियाँ

(आलोचना)

संपादक : डॉ. राकेश कुमार

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार पंकज सुबीर के कथा संसार पर आधारित महत्त्वपूर्ण लेखों का संकलन है विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियाँ। किताब का संपादन राकेश कुमार ने किया है। शोधार्थियों के लिए यह किताब बहुत उपयोगी साबित होगी क्योंकि इस किताब में पंकज सुबीर की कहानियों पर अलग-अलग समय पर लिखे गए महत्त्वपूर्ण लेख संकलित किए गए हैं। इस किताब के बारे में संपादक राकेश कुमार कहते हैं- इस पुस्तक में हमारा प्रयास रहा है कि पंकज सुबीर के कहानी संसार से व्यापक समाज को परिचित कराया जाए क्योंकि पंकज सुबीर की कहानियों ने न केवल आम पाठकों को प्रभावित किया है अपितु उनके अग्रज, समकालीन तथा उनके बाद की पीढ़ी के रचनाकारों/आलोचकों ने निरंतर परखा है। इस पुस्तक में पंकज सुबीर के कहानी संग्रहों के साथ कुछ कहानियों पर एकाग्र लेख भी संकलित किए गए हैं। आशा है शोधार्थियों के लिए उपयोगी साबित होगी।

000

पुस्तक समीक्षा

कोशिशों की डायरी

(डायरी)

समीक्षक : गोविंद सेन

लेखक : सोनल

प्रकाशक : नियोलिट पब्लिकेशन, इंदौर

गोविन्द सेन
राधारमण कॉलोनी,
मनावर-454446,
जिला-धार, (म.प्र.)
मोबाइल- 9893010439

किताब के पहले ही पैरे से लगने लगा था कि इसमें कुछ नया, बहुत सच्चा, हृदयग्राही और अनूठा मिलने वाला है, जब डायरी ख़त्म की तो उम्मीद से ज़्यादा मिला। इसमें पानी बोने के काम में तल्लीनता से जुटी समाजसेवी संस्था 'विभावरी' की एक ईमानदार और समर्पित टीम की दिलचस्प कहानी है जो कल्पना को एक हक़ीक़त में बदल देती है। जहाँ पानी का ऐसा टोटा था कि पीने का पानी कई किलोमीटर दूर से लाना पड़ता था। ग्रामीण माचे पर बैठकर नहाते थे। नीचे तगारी रख उससे इकट्ठा हुआ पानी बैल को पिलाने के काम में लेते थे। पानी न होने के कारण खेत सूखे पड़े रहते थे। केवल बरसात के भरोसे ही कुछ कपास और तुअर पैदा कर ली जाती थी। देवास जिले की कन्नौद जनपद के जल संकट ग्रस्त पाँच गाँवों क्रमशः पानपाट, बाईजगवाड़ा, झिरनिया, नरानपुरा और टिपरास में वाटरशेड योजना के जरिए कुछ ही सालों में 'विभावरी' ने कायापलट कर दी। एक सुविचारित योजना के तहत खेतों में खंतियाँ, तलाई, स्टॉप डैम और तालाब बनवाकर पानी को कुछ ऐसे रोका गया कि गाँवों के किसान साल में तीन-तीन फसलें लेने लगे। ट्यूबवेल में बम्पर पानी निकलने लगा। खेतों में हरियाली छा गई और ग्रामीणों के जीवन में भी कुछ ही सालों में आर्थिक और सामाजिक बदलाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। हाँ, अब पानी को रोके रखना और इस बदलाव को स्थायी बनाने की ज़िम्मेदारी ग्रामीणों पर है। इस संबंध में लेखिका ने चिंता भी जाहिर की है। उन्होंने लिखा है-'लग रहा है पानी रोकने का काम जितना कर रहे हैं, प्यास उससे तेज़ी से आगे बढ़ रही है। टिपरास में पचास से ऊपर ट्यूबवेल हो गए हैं। बड़े किसान पानी खींचने के नए से नए तरीके निकाल रहे हैं।'

वैसे यह पानी का काम इतना आसान भी नहीं था, यह आग से खेलने जैसा था। आने वाले

अवरोधों को कैसे पार किया गया, इसका दिलचस्प चित्रण डायरी में है। यह केवल पानी का ही काम नहीं था, यह ग्रामीणों की ज़िंदगी में सकारात्मक बदलाव लाने और उनमें सामाजिक जागरूकता पैदा करने का काम भी था। ख़ासकर महिलाओं को जागरूक करना और उनमें बदलाव की तड़प को पैदा करना भी इसका हासिल है। निरंतर रचनात्मकता और मौलिक सूझबूझ का सहारा लेकर आगे के रास्ते निकाले गए।

डायरी की भाषा मौलिकता, चित्रात्मकता और काव्यात्मकता से भरपूर है। इसमें लोक भाषा की खुशबू तो है ही, ग्रामीणों की मानसिकता, उनकी सबलताओं और कमज़ोरियों को सहज ही उकेरने की अद्भुत क्षमता भी है। लोक जीवन के दृश्यों की सजीव झाँकियाँ पूरी डायरी में झिलमिलाती रहती हैं। लेखिका की स्वभावगत संवेदनशीलता, मौलिक मानवीय दृष्टि, धीरज और जुझारू प्रवृति भी किताब में बखूबी उभर कर आती है। इस भाषा में ज़मीनी अनुभवों का ताप भी है और कविता की मार्मिकता भी है। बोलियों ने हिंदी को बहुत समृद्ध किया है। आधुनिक हिंदी तो अभी सौ-सवा सौ साल ही पहले अस्तित्व में आयी है जबकि बोलियाँ तो हज़ारों सालों से लोक में रही हैं। इस डायरी में ऐसे अनेक शब्द हैं जो हिंदी में बहुत कुछ नया जोड़ते हैं।

किताब के हस्तलिखित उपशीर्षक अलग से ध्यान खींचकर रोमांच से भर देते हैं। आज जब निरंतर मोबाइल और कंप्यूटर के जरिए सीधे टाइप किए हुए अक्षर देख रहे हैं, तब हस्तलेख देख कर हर्ष होता है। इन हस्तलेखों को देख पत्रों का वह पुराना समय याद आता है जब हाथ से पत्र लिखे जाते थे। हस्तलेख उस व्यक्ति की पहचान होते थे और नाम देखे बगैर हस्तलेख देख पता लग जाता था कि यह फलां शख्स का पत्र है। यह प्रयोग स्वागतेय है।

लेखिका के पास एक कवि-मन और चीज़ों को देखने का एक अलग नजरिया भी है। किताबों और कविताओं में लेखिका की गहरी ललक है। प्रकृति का चित्रण देखें- 'सर्दियाँ तो सुन्दर होती हैं। फूले-फूले लाल हरे स्वेटर और फटे हुए गालों वाले छोटे-छोटे दिन झटपट ग़ायब हो जाते हैं। गर्मियाँ मुझे हमेशा से अच्छी लगती रहीं क्योंकि किताबें और कविताएँ लिखने वाले छुट्टियों के दिन लाती हैं।' सागौन के स्वभाव पर लेखिका की सटीक टिप्पणी देखिए-'सागौन स्वभाव से बड़बोला होता है। गर्मियों में ज़रा सी हवा चले तो इतना शोर मचाता है कि लगता है तूफ़ान आ गया।' आगे कविता में सागौन को 'टाल हैंडसम' की उपमा से भी नवाज़ा गया है।

डायरी केवल देखे और किए गए कार्यों का दिलचस्प अंकन ही नहीं है, यह लोक व्यवहार से पुष्ट वैचारिकता से भी सम्पन्न है। शीर्षक 'जीजी हमेरा कमीसन नहीं देती' में लेखिका ने भ्रष्टाचार और ईमानदारी पर अपनी सटीक राय रखी है-'क्या ईमानदारी एक अवसरवाद है? क्या जो ईमानदार हैं वे इसलिए ईमानदार हैं कि उन्हें अवसर नहीं मिला? कहते हैं पावर करप्ट्स-सत्ता भ्रष्ट करती है। यह सत्ता का अनिवार्य गुण है। लेकिन मुझे लगता है कि यह बीमारी तो आदमी के भीतर मौजूद होती ही है, सत्ता तो उसे केवल बाहर आने का अनुकूल मौसम देती है।'

लेखिका मनुष्य के भीतरी बदलाव को महत्त्वपूर्ण मानती हैं। उन्हें संदेह है कि किसी भी तरह के बाहरी बदलाव से मनुष्य का जीवन सुखमय हो सकता है। संवेदनशीलता को लेखिका ने सर्वोपरि माना है। आदमी अगर संवेदनशील होगा तो उससे न हिंसा होगी, ना बेईमानी, न वह चोरी कर सकेगा ना भ्रष्टाचार। वह मनुष्य ही नहीं, हर प्राणी के हित की चिंता करेगा। उससे एक चींटी भी ना मारी जाएगी, एक पेड़ भी ना कटा जाएगा।

डायरी के उपशीर्षक बरबस आकर्षित करते हैं- 'जैसे पाँच गाँव पच्चीस रंग', 'रात भर का डेरा बन गया गाँव', 'टूल बना शूल', 'हातापायी वाली हतई', 'पूरी सब्जी खुट गई', 'हक़ है हिरण को', 'देवता शराब पीते हैं', 'रूक्का का घर कहाँ है', 'पोरी का क्या नाम धरना', 'लाल डॉक्टर और देसी सोनोग्राफी', 'पानी हिट्यो रे', 'सिस्टर सर!', 'कहाँ गया पानपाट', 'बदलाव की कुंजी', 'अरे अभी तो मीलों मुझको चलना है'। हर अगला उपशीर्षक अपने भीतर एक कहानी संजोये है। जैसे पानी आगे बहता हुआ आगे बढ़ता जाता है, वैसे ही हर कहानी अपने साथ कई पात्रों, रंगों, कविताओं, दृश्यों और देशज शब्दों-वाक्यों-मुहावरों को लेकर आगे बढ़ती जाती है और सम्मोहित कर लेती है। सच्चाई भी एक जादू है। ये कहानियाँ सच्चाई के जादू से भरी हैं।

मानवीय स्वभाव की पहचान, कठिनाइयों के बीच रास्ता बनाना, लोगों की निगेटिविटी को नज़रंदाज़ करना, उनकी अच्छाइयों को जगाना और सबको को साथ लेकर चलने की लेखिका की क्षमता की कुंजी किताब के एक वाक्य से बरबस मिल जाती है। 'टूल बना शूल' का पहला वाक्य देखें-'पापा की सरकारी नौकरी के चलते मेरी बारहवीं तक की पढ़ाई चौदह स्कूल में हुई है।' इतनी अलग-अलग जगहों पर रहने से लेखिका को तरह-तरह के लोगों से मिलने और उनको समझने का मौका मिला होगा। पानी के इस काम में उन अनुभवों का लेखिका को निश्चित ही लाभ हुआ है।

ऐसी किताबों पर अक्सर नीरस और आत्मप्रशंसा से भरे होने का ख़तरा मंडराता रहता है, लेकिन यह डायरी इन ख़तरों से एकदम मुक्त है। डायरी यह भी रेखांकित करती है कि समर्पित भाव से अपने काम में जुटे समाज सेवी संस्थाओं का काम कितना कठिन और बहुमूल्य है। अनुभवों के ताप से तपी यह डायरी कथेतर साहित्य की अनुपम निधि है। यह किताब सामाजिक कार्यकर्ताओं और ख़ासकर लड़कियों के बहुमूल्य अवदान और उनकी जद्दोजहद को रेखांकित करती है। गाँवों के किसानों और निस्वार्थ भाव से जुटे सामाजिक कार्यकर्ताओं तक भी यह किताब पहुँचनी चाहिए। ज़मीनी अनुभवों से उपजी यह प्रेरक डायरी जनजीवन के जीवंत चित्रों का सुन्दर कोलाज है। यह किताब एक ऐसी लड़की की कोशिशों की डायरी है जो अपने रास्ते में आने वाली हर बाधा को पार करते हुए अपने गंतव्य तक पहुँचती है।

000

पुस्तक समीक्षा

अम्लघात

(कहानी संकलन)

समीक्षक : दीपक गिरकर

संपादक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"अम्लघात" कहानी संकलन का संपादन सुपरिचित प्रवासी साहित्यकार, कथाकार सुधा ओम ढींगरा ने किया हैं। सुधा जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। सुधा जी की प्रमुख रचनाओं में "नक़्क़ाशीदार केबिनेट" (उपन्यास), "सच कुछ और था", "दस प्रतिनिधि कहानियाँ", "कमरा नंबर 103", "कौनसी ज़मीन अपनी", "वसूली", "खिड़कियों से झाँकती आँखें" (कहानी संग्रह), "सरकती परछाइयाँ", "धूप से रूठी चाँदनी", "तलाश पहचान की", "सफ़र यादों का" (कविता संग्रह), "विमर्श - अकाल में उत्सव" (आलोचना पुस्तक), "साक्षात्कारों के आईने में" (साक्षात्कार) और "सार्थक व्यंग्य का यात्री : प्रेम जनमेजय" सहित नौ पुस्तकों का संपादन, साठ से अधिक संग्रहों में भागीदारी शामिल है। सुधा जी ने इस संकलन की कहानियों का चयन और संपादन बड़ी कुशलता से किया हैं।

यह "अम्लघात" कहानी संकलन एसिड अटैक के मुद्दे पर जीवन के विभिन्न अनुभवों से परिचय कराते हुए पाठक की अंतरात्मा को झकझोर देता है। कहानीकारों ने उस मानसिकता की गहराई से पड़ताल की है, जिसके चलते समाज में इस तरह की वहशीपन, हिंसक घटनाएँ हो रही हैं। कहानीकारों ने अपने लेखकीय कौशल से एसिड अटैक की घटना से जुड़े हर पहलू को बड़ी बारीकी से इन कहानियों में पिरोया हैं। इस संकलन की कहानियों में जीवन का करुण और हृदयविदारक चित्र मिलता है। कहानियों में यथार्थ है और पीड़िताओं को जीवन की जो अनुभूति हुई है, उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति भी हुई है। समाज की शर्मनाक और बड़ी समस्या एसिड अटैक पर लेखिकाओं का हृदय विचलित होता है और इस संकलन की कहानियों में लेखिकाओं की छटपटाहट नज़र आती है। इन कहानियों को पढ़ते हुए मन भीगता है। इन कहानियों को पढ़कर बहुत दिनों तक बेचैनी बनी रहती है। अम्लघात के इर्द-गिर्द बुनी इन कहानियों में कहानीकारों ने मानवीय संवेदनाओं को सामने रखा है। इन कहानियों में मानव और मानवता के पतन पर चिंता नज़र आती है। कहानीकारों ने इन कहानियों में पात्रों के मनोविज्ञान को और उनके स्वभाव को अच्छी तरह से निरूपित किया है। ज़माना बदल गया है लेकिन पुरुष मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है। एसिड अटैक एक घिनौना कृत्य है। एसिड अटैक जैसी घटनाओं ने समाज में दहशत पैदा कर दी है। ऐसी घटनाओं से पूरा समाज शर्मसार हो जाता है। क्या इस तरह की हिंसा औरत का क़द छोटा कर देती है? क्यों एसिड हमले के बाद युवतियाँ ज़िंदा लाश में तब्दील नहीं हो जाती हैं? इन कहानियों में आक्रोश से भरे पात्रों की पीड़ा के जरिये कथाकारों ने मौजूदा क़ानून व्यवस्था पर सवाल खड़े किए हैं। इन कहानियों का उद्देश्य अम्लघात से पीड़ित व्यक्तियों के जीवन संघर्षों, उनकी पीड़ा, व्यथा और इस तरह की घटनाओं

की जड़ों से परिचित करवाकर पीड़ितों के प्रति सकारात्मक सोच एवं दृष्टिकोण पैदा करता है।

सुधा ओम ढींगरा अपने संपादकीय में लिखती हैं - "पंकज सुबीर ने आकांक्षा पारे के कहानी संग्रह "पिघली हुई लड़की" की ऑनलाइन समीक्षा करते हुए एसिड अटैक पर कहानी संग्रह निकालने का बीज डाला तो मैंने उसे खाद-पानी देने का ज़िम्मा उठाया। उस दिन से भीतर उथल-पुथल मची हुई थी। इस पुस्तक का संपादन करते समय मैं बहुत तनाव से गुज़री हूँ, अम्लघात से पीड़ित स्त्री-पुरुषों का दर्द महसूस किया है, जिन लेखकों ने उसे भोगा और कहानियों में चित्रित किया है, उन पर क्या बीती होगी, समझ सकती हूँ।" इस कहानियों के संकलन में 20 कहानियाँ संकलित हैं जो सुपरिचित और प्रसिद्ध कथाकारों द्वारा लिखी गई हैं। इन कहानियों की मुख्य किरदार अम्लघात से पीड़ित अधिकाँश युवतियाँ हैं तो कुछ पुरुष भी हैं, वे झुलसा चेहरा, शारीरिक और आतंरिक पीड़ा, व्यथित मन, टूटते ख़्वाब, अवसाद से भरा जीवन जीते हैं। क्या वे व्यक्ति अम्लघात को अपनी क्रूर नियति मान लेते हैं? इस संग्रह की कहानियों के अम्लघात से पीड़ित किरदारों के माध्यम से हम जान पाते हैं कि एसिड अटैक का शिकार हुई युवतियाँ, युवक किन पीड़ाओं, किन सदमों से गुज़रते हैं लेकिन उन हमलों को सिर्फ एक दुर्घटना मानकर दोबारा उठ खड़े होते है। अपराधियों द्वारा युवतियों के चेहरे को तो जला दिया जाता है परन्तु अपराधी उन युवतियों के इरादों को नहीं बदल पाए हैं। युवतियाँ हादसों के बाद हिम्मत नहीं हारती हैं और डट कर हर मुश्किल का सामना करती हैं। एसिड अटैक का शिकार हुई युवतियाँ दर्दनाक हादसे से निकलकर अपने जीवन को एक नया मुकाम देती हैं। "अम्लघात" कहानी संकलन की कहानियों में शिकार हुई युवतियों के साहस और जज़्बे को दिखाया गया है। एसिड अटैक का शिकार हुई युवतियाँ सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हताश व निराश नहीं होती हैं और अपने विश्वास को टूटने भी नहीं देती हैं।

संग्रह की पहली कहानी "आओ री सखी सब मंगल गाओ री" कहानी में मुरगन की सच्चाई, ईमानदारी और उसके खरेपन को दर्शाती है। इस कहानी के प्रमुख किरदारों रेखा, सुलेखा, रंभा और मुरगन का चरित्र आत्मीय प्रेम और संवेदनात्मक धरातल पर चित्रित हुआ है। "मेरा दिल मेरा चेहरा" कहानी को लेखिका कादम्बरी मेहरा ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। कहानी फ्लैशबैक में चलती है। कंचन जीवन भर अपनी ताई जी शीला के अत्याचार सहन करती है। शीला ने ही गुंडों को पैसे देकर कंचन के मुँह पर तेज़ाब फिंकवाया था। यह कहानी कंचन के जीवन की दर्दभरी दास्तान का चित्रण है। सारे दु:खों को चुपचाप सहने वाली नारी के रूप में कंचन का चरित्र चित्रित हुआ है। कंचन की ताई जी ही कंचन के विरुद्ध साजिश पर साजिश रचती है और कंचन ताई जी के शोषण का शिकार बनती है। इस कहानी में शीला की कारस्तानियों और कंचन के उत्पीड़न की सूक्ष्मता से पड़ताल की गई है। शीला की स्वार्थ-प्रवृत्ति उजागर हुई है। कादम्बरी मेहरा नारी मनोविज्ञान और नारी जीवन से जुड़े प्रत्येक पहलू का गहन विश्लेषण करके कहानी का सृजन करती हैं। "उनकी महफिल से हम उठ तो आए" कहानी में एक ओर पितृसत्तात्मक मानसिकता और अपनी मर्दानगी के तहत एक व्यक्ति अपनी पत्नी चरखी के साथ हिंसा, अत्याचार करता है और जब चरखी अपने पति को तलाक देना चाहती है तो चरखी का पति भड़क उठता है और चरखी के चेहरे पर तेज़ाब फेंक कर भाग जाता है तो दूसरी ओर अजय नाम का नवयुवक चरखी की जिंदगी में फिर से नयी उम्मीद भर कर उससे शादी करना चाहता है। अजय के माता-पिता जो गाँव में रहते हैं, इस शादी के लिए तैयार नहीं होते हैं। तब चरखी एक पत्र लिखकर चली जाती है। पत्र में एक लाइन पढ़कर अजय की माँ द्रवित हो उठी -

अजय,

माँ को तकलीफ देकर हमें यह संबंध नहीं बनाना। मैं तुम्हें प्यार करती हुई जीवन काट सकती हूँ, एक माँ का अंतिम पुरुष, उसका बेटा होता है। उन्हें तुमसे अलग करने का पाप नहीं कर सकती। तुम कुछ दिन बाद आना।

मिलेंगे... एक दोस्त की तरह...

कथाकार ने इस कहानी का अंत बहुत ही खूबसूरत तरीके से किया है। अजय की माँ जो अपने स्कूल के दिनों में दौड़ प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान पर आती थी, अपने बेटे के साथ भागकर चलती हुई ट्रेन में अपने बेटे अजय को चरखी के साथ बैठा देती है। अजय ने सुना - माँ ट्रेन के साथ-साथ चलते हुए, चरखी के गाल का झुलसा हुआ हिस्सा थपथपा रही थीं और कह रही थीं - इसे ढँको मत, दुनिया अपनी आँखें ढँक ले, ये उनकी करतूत है, तुम क्यों ढँको, और ये पोटली में कुछ पैसे हैं, इससे अपना घर बसाओ ... फिर हम सबको लेकर वहीं आते हैं। यहाँ का समाज तो देर से बदलेगा, समय लगेगा। पहले अपना घर ठीक करो ... आते हैं हम लोग ... फोटो भेजना, ठीक है ... ?

आकांक्षा पारे ने "पिघली हुई लड़की" में पात्रों का बारीक मनोविश्लेषण कर के कहानी को भावपूर्ण और जीवंत रूप में प्रस्तुत की है। परिवार, समाज में अभी भी लड़कियाँ उपेक्षित हैं। मेरे पिता ने कहा था, "जिस दिन रति फेल हो जायेगी उस दिन स्कूल से नाम कटा दीजिएगा।" राखी कहती है "मोहल्ले से बाहर हमने सिर्फ एक चीज़ देखी थी, अपना स्कूल।" लड़कियों की उपेक्षित, बेबस ज़िंदगी लेखिका को उद्वेलित करती है। हम समझ पाते उससे पहले पीछे से तेज़ी से साइकिल आई और रति के नितंब दबा कर आगे बढ़ गई। हम ठगे से खड़े रह गए। बेबसी से यह हमारी पहली मुठभेड़ थी, जबकि हम इतने भी बेबस नहीं थे कि एक साइकिल को दौड़ कर पकड़ न सकते हों। लेकिन कोई देख लेता या घर पर पता चलता तो हम क्या कहते वाली बेबसी ने हमें रोक लिया उसके बाद बेबसी हमारे चेहरे का स्थायी भाव बन गई। कथाकार ने युवा लड़कियों की लाचारगी को यथार्थ रूप से चित्रित किया है। कहानी के केंद्र में राखी और रति दो सहेलियाँ हैं, जो पड़ोसी भी हैं। इनके क्लास की एक लड़की का भाई रति को अक्सर छेड़ता रहता है, एक दिन वह लड़का

रति के होठों को चबा लेता है। फिर वह लड़का रति को प्रेम पत्र लिखकर देने लगता है। एक दिन रति उसका प्रेम पत्र उसके सामने ही फाड़कर उसके गाल पर तमाचा मारती है तो वह बुरी तरह से बौखला जाता है। फिर एक दिन वह मौक़ा पाकर रति पर तेज़ाब फेंक कर भाग जाता है, रति का चेहरा झुलस जाता है। उस तेज़ाब के कुछ छींटे राखी के एक पैर पर गिरते है। राखी का पैर ज़ख्मी हो जाता है। राखी से उसकी बड़ी बहन ने पूछा था कि क्या वह तेज़ाब फेंकने वाले लड़के को पहचानती है, राखी के हाँ कहने पर उसकी बड़ी बहन ने इतना ही कहा था कि पुलिस जो भी पूछे तुझे हर सवाल के जवाब में इनकार ही करना है चाहे कुछ भी पूछे। राखी ने ऐसा ही किया। राखी पुलिस को सही जानकारी नहीं देने के कारण अपराध बोध से ग्रसित हो जाती है। लेकिन एक दिन जब राखी को रास्ते में रति मिलती है तो रति उससे मुस्कराकर बात करती है तो राखी के दिल का बोझ कुछ कम हो जाता है। और जब रति अपनी बच्ची की ओर देखकर कहती है, गिन्नी देखो, राखी मौसी। तो राखी काफ़ी राहत महसूस करती है। अंत में राखी ने रति से पूछा कि तुमने मुझे लड़के को न पहचानने के लिए माफ़ किया या नहीं? तो रति हँस देती है और बोलती है कि "अब इस बात से कोई फ़र्क पड़ता है क्या?" तो राखी अपने अपराध बोध से मुक्त हो जाती है। इस कहानी की भाषा शिल्प में चमक और पारदर्शिता है। कथाकार रजनी मोरवाल की कहानी "बलेड़ी औरत" बेबाक प्रस्तुति से उल्लेखनीय बन पड़ी है। इस कहानी के अंत में कहानीकार ने समाज के यथार्थ को कविता के माध्यम से उकेरा है। "तुम हमेशा से वाक़िफ़ हो / कि वह सवाल करेगी तो तुम्हें निरुत्तर कर देगी, / उसकी उठी हुई नज़रें तुम्हारी सत्ता हिला देंगी। / इसलिए तुम उसका रेप कर देना चाहते हो, / जलाकर मार डालना चाहते हो, / एसिड फेंककर उसकी पहचान छीन लेना चाहते हो, / दरअसल तुम एक स्त्री से नहीं, / ख़ुद से ज़्यादा डरे हुए हो।"

कथाकार विकेश निझावन ने "अंधेरे" कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। इस कहानी का कैनवास बेहतरीन है, जिसे पढ़ते हुए आप के मन में कहानी के नैरेटर की तरह जिज्ञासा बनी रहती है कि कॉलोनी में दुर्गंध किस मृत जानवर की आ रही है और कहाँ से आ रही है। इस कहानी का अंत चौंकाने वाला है। कहानी के नैरेटर की पत्नी का सिर्फ इतना ही अपराध था कि उसने लाजवन्ती को सलाह दी थी कि वर्मा ने तेरी इज़्ज़त लूट ली है तो तू कमीने को बदनाम कर दे कॉलोनी में। नौकरी से भी जाएगा और बदनामी भी दुनिया भर की। इस सलाह की वजह से वर्मा ने कहानी के नैरेटर की पत्नी को इतनी बड़ी सज़ा दी कि पहले चेहरा तेज़ाब से जला दिया और फिर हत्या करके भाग गया। कथाकार अरुण अर्णव खरे की कहानी "कितना सहेगी आनंदिता" बिगड़ैल लड़के प्रशांत के चरित्र को नंगा करती है। शेखर अग्निहोत्री और प्रशांत इंजीनियरिंग की पढ़ाई के दौरान हॉस्टल के एक ही कमरे में रहते हैं। प्रशांत उद्दण्ड, बेशर्म, अक्खड़ और ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का है, वह शेखर को सताता रहता है। शेखर, प्रशांत की ज़्यादतियों को सहन करता रहता है। बैडमिंटन टूर्नामेंट के दौरान शेखर की मुलाक़ात बैडमिंटन खिलाड़ी आनंदिता से होती है। दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं और शादी करना चाहते हैं। शेखर का कैंपस सिलेक्शन हो जाता है और वह अपनी नौकरी पर चला जाता है। इधर प्रशांत को यह सब सहन नहीं होता है कि शेखर की शानदार नौकरी लग गई और उसे एक सुंदर प्रेमिका भी मिल गई। प्रशांत एक दिन अपने मित्र के साथ आनंदिता पर तेज़ाब फेंक कर भाग जाता है, लेकिन आनंदिता प्रशांत की आवाज़ को पहचान जाती है। इस घटना के बावजूद भी शेखर आनंदिता से शादी करता है। कहानी में यह कथन समाज में एसिड अटैक से पीड़ित महिलाओं की स्थिति को बहुत कुछ रेखांकित करता है। शेखर के सामने फादर विलियम्स का चेहरा घूम गया और उनके कहे शब्द कानों में गूँजने लगे "आई होप यू विल अंडरस्टेण्ड माय पोजीशन मुझे स्कूल के दूसरे बच्चों का भी ध्यान रखना है मिसेज़ अग्निहोत्री जब भी स्कूल आती हैं मैंने स्वयं कुछ बच्चों की आँखों में भय महसूस किया है हम रुद्र को पढ़ाना चाहते हैं, ही इज़ ए मेरीटोरियस स्टूडेण्ट लेकिन आपको मेरी बात ध्यान में रखनी होगी मिस्टर अग्निहोत्री, प्लीज़ डोंट ब्रिंग हिज़ मदर फॉर पीटी मीटिंग्स एण्ड इन अदर स्कूल एक्टिविटीज़ इट्स माय हम्बल रिक्वेस्ट।" अरूण अर्णव खरे सहजता से समाज का यथार्थ सामने रख देते हैं। कहानी की मुख्य किरदार आनंदिता विकट परिस्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं खोती है। "एक शब्द औषधि करें...एक शब्द करे घाव" कहानी में कथाकार ज्योति जैन ने महिलाओं के साथ एसिड अटैक की घटना घटित होने के पश्चात मीडिया, महिला संगठनों, सोशल मीडिया, एनजीओ, पुलिस, प्रशासन, राजनीतिक पार्टियों की भूमिका और उनके शर्मनाक हथकंडों पर इस कहानी की एक प्रमुख चरित्र संध्या के माध्यम से सवाल उठाए हैं। संध्या की पीड़ा, बैचेनी, त्रासदी को लेखिका ने अपनी आवाज़ दी है। "मैम मैं बार-बार मोमबत्तियों की तरह नहीं पिघलना चाहती। वैसे तो ये किसी के साथ ना हो यदि ये बला मेरी फ्रेंड की थी, जो मुझ पर आई, तो मुझे ख़ुशी है शायद यही प्रारब्ध था। पर अब मैम बस इतना चाहती हूँ कि वो जो कोई भी थे, उन्हें सज़ा मिले। पर बार-बार इन बातों को दोहराने या मार्च निकालने से क्या होगा? मैम उस अटैक से तो मुझे एक बार ही पीड़ा हुई। वो एसिड की जलन तो समय के साथ कम और शायद ख़त्म भी हो जाएगी, पर लोगों के तेज़ाबी शब्द, जो मैंने अभी सोशल मीडिया के प्लेटफार्म पर देखे वो शाब्दिक तेज़ाब तो मुझे, मेरी आत्मा को बार-बार झुलसा रहा है। और शायद झुलसाता रहेगा कि बदशक्ल पर एसिड अटैक क्यों? आप कर सकती है तो बस इतना कीजिये कि कोई भी और कम से कम स्त्री तो स्त्री पर शब्दों से तेज़ाबी हमले न करें।"

कहानीकार आनंदकृष्ण द्वारा लिखित "फ्रीज़" आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई कहानी है। यह कहानी एक अलग संवेदनात्मक मन:स्थिति की उपज है। यह रचना एक व्यक्ति के मानसिक अंतर्द्वंद्व की कहानी है। कहानी वास्तविक यथार्थ को

प्रस्तुत करती है। कहानी में एक ओर एक ऐसे टूटते हुए व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण है जिसमें आत्मविश्वास की कमी है तो दूसरी ओर एक ऐसी युवती का चित्रण है जो साहसी, बिंदास और आत्मविश्वासी है। कहानी का शिल्प बेहतरीन है। कहानीकार की परिवेश के प्रति सजग दृष्टि है। कथाकार हर्षबाला शर्मा "और चाँद काला हो गया..." कहानी में स्त्रीत्व से जुड़े सारे सरोकारों की पड़ताल करती है। शैलेश फेमस होने के लिए अपनी खूबसूरत प्रेमिका रूही को छेड़ने वाले फोरमेन को चाल में रहने वाले लड़कों की सहायता से बुरी तरह से पिट देता है। फोरमेन रूही पर तेजाब फेंककर अपना बदला लेता है। रूही अब काफी बदसूरत दिखने लगती है। शैलेश फिर से फेमस होने के लिए एसिड अटैक से पीड़ित रूही से शादी करने का एलान करता है। रूही शैलेश के घर जाकर उससे कहती है कि शैलेश तुम मेरे से प्यार करते हो तो मेरे चेहरे पर प्यार से अपना हाथ फिरा दो तब शैलेश उसके चेहरे पर हाथ नहीं फेरता है। रूही कहती है "मना कर दो शैलू इस शादी के लिए। मैं तुम्हें माफ़ कर दूँगी, कोई दोष नहीं दूँगी। पर शादी करके तुम्हारी नफ़रत नहीं सह सकूँगी। मेरा शरीर ही नहीं गला इस तेज़ाब से, मेरी आत्मा भी गल गई है। आग जैसी लपट उठती है मेरे अंदर। तुम मेरे पास रहोगे और मुझे देखोगे नहीं, बर्दाश्त नहीं होगा मुझसे। मन तो लड़की का ही है ना मेरे अंदर ! वो अभी भी प्यार ही चाहता है, दे पाओगे !" रेनू यादव की कहानी " मुँह झौंसी" में गाँव की स्त्रियों का करुण और हृदयविदारक चित्र मिलता है। गाँव के पुरुष लड़कियों, औरतों के साथ क़ैदखाने के क़ैदी जैसा अमानवीय अत्याचार करते हैं। गाँव की स्त्रियाँ अनाचार और अन्याय को वेदना के साथ सहती रहती हैं। रिश्तेदारों की संवेदनहीनता, पारिवारिक रिश्तों का विद्रूप चेहरा, सामंती व्यवस्था के अवशेष, स्त्री संघर्ष और स्त्रीमन की पीड़ा आदि का चित्रण इस कहानी में मिलता है। इस कहानी में अपने ही घर में क़ैद नारी की मन:स्थिति उजागर हुई है। कहानी की नायिका रूपा एसिड अटैक का शिकार होती है। गाँव में पंचायत बैठती है और पंचायत अपना फैसला देती है कि रूपा को उस बीरेन से शादी करनी पड़ेगी, जिसने उसके चेहरे पर एसिड फेंका था। रूपा उसी समय पंचायत में पहुँचकर इस फैसले का जमकर विरोध करती है तब पंचायत के पंच लोग रूपा का नया नामकरण कर देते हैं मुँह झौंसी। इस कहानी में पुरुष सत्तात्मक समाज के शोषण के प्रति रूपा उर्फ़ मुँह झौंसी का विद्रोही स्वर सुनाई पड़ता है। नायिका रूपा पितृसत्ता की संरचनाओं को उघाड़ने और मर्दवादी अमानुषिकताओं के विरोध में खड़ी होती है। कहानीकार कहानी की मुख्य किरदार रूपा की वैयक्तिक चेतना को पर्याप्त वाणी देती है। यह रचना पारंपरिक घेरों को तोड़ने की नयी दृष्टि देती है। कहानी का हर किरदार रूपा, गंगाराम, रीना, जतिन, बीरेन, भोलानाथ अपनी विशेषता लिए हुए हैं और अपनी उसी ख़ासियत के साथ सामने आते हैं। लेखिका ने पात्रों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से निरूपित किया है और उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है। डॉ. ऋतू भनोट के द्वारा लिखित "पिंजरे की चिड़ियाँ" कहानी में जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। "जिस घर की लड़की पर एसिड अटैक हो जाता है, रिश्तेदार उनसे कन्नी काटने लगते हैं, पड़ोसी उस मनहूस चेहरे से बचकर निकलने की फ़िराक में रहते हैं, उस घर पर हमेशा मातम छाया रहता है, माँएँ बाकी बच्चों के शादी-ब्याह को लेकर मन ही मन घुटती रहती हैं, और पिता के माथे पर चिंता की रेखाएँ दिन-ब-दिन गहराती चली जाती हैं। दिन-रात पिघलते सीसे जैसे शब्दों की कड़वाहट मन के घावों को भरने ही नहीं देती।" लेखिका ने कहानी में संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं। कहानी का शीर्षक "पिंजरे की चिड़ियाँ" कथानक के अनुरूप है। यह कहानी पाठकों की चेतना को झकझोरती है।

डॉ. निरूपमा राय की "अग्निस्नान" कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। जब समीर और सुरभि की सगाई हो जाती है तब सुरभि का मित्र विशाल ही समीर पर एसिड अटैक करता है। इस कहानी के माध्यम से कथाकार आत्मीय पीड़ा, मानसिक अंर्तद्वंद्व, अपने मित्र द्वारा किया गया विश्वासघात, उत्पीड़न, अत्याचार जैसे तत्वों को पाठकों के समक्ष लाती है। कहानी में समीर और सुरभि दोनों ही अग्निस्नान करते हैं और इस स्नान से मुक्त होते हैं। राधेश्याम भारतीय की "मुझे माफ़ कर दो!" कहानी सकारात्मक सन्देश देती इस संकलन की एक प्रतिनिधि कहानी है जो पाठकों को प्रभावित करती है। यह रचना इस पुस्तक की मुकम्मल और उद्देश्यपूर्ण कहानी है। इस कहानी में एक पात्र जिसे दूसरे पात्र ने पैसे देकर उस लड़की पर एसिड फेंकने को कहा था जिसे दूसरा पात्र चाहता था, लेकिन वह लड़की उसे पसंद नहीं करती थी। कहानी का पहला किरदार दूसरे किरदार को पैसे वापस कर देता है और कहता है - "जिसे तुम प्यार कहते हो ... वास्तव में वह प्यार है ही नहीं। किसी को पा लेना ही प्यार नहीं। किसी के लिए त्याग करना भी प्यार है। प्यार करने वाले तो अपने प्रेमी की राहों में खुशियों के फूल बिछा देते हैं ... और तुम बिछाने चले थे ...। तुम लोग वास्तव में प्यार का अर्थ समझते ही नहीं। तुम प्यार को वासना समझते हो... वासना"। लेखक ने बहुत ही सटीकता से सामाजिक मूल्यों के ह्रास के प्रति चिंता व्यक्त की है। कहानीकार रोचिका अरुण शर्मा की "परी हो तुम" कहानी राहुल के सच्चे प्यार की कहानी है। एसिड अटैक से पीड़ित प्रियंका पूरी तरह से टूट जाती है लेकिन राहुल हिम्मत नहीं हारता है और प्रियंका का मनोबल बढ़ाता रहता है। एसिड अटैक से प्रियंका का पूरा चेहरा झुलस जाता है लेकिन राहुल को तो प्रियंका परी ही लगती है। राहुल इलाज के लिए प्रियंका को अमेरिका ले जाता है और वहाँ उसका इलाज करवाता है। कुछ समय बाद वह प्रियंका को एक सौंदर्य प्रतियोगितामें भाग लेने हेतु तैयार कर लेता है। प्रियंका सौंदर्य प्रतियोगिता जीत जाती है जिससे उसका मनोबल बढ़ जाता है। कहानी का शीर्षक कथानक के अनुसार है और शीर्षक कलात्मक भी है। कहानी सकारात्मक है। इस कहानी में लेखिका की परिपक्वता, उनका

सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

रेणु वर्मा की "छींटों की चीखें" कहानी में सिर्फ शक़ की वजह से केशव अपनी पत्नी नंदिता पर गुंडों को पैसे देकर एसिड अटैक करवाता है और अंत में उसे अपनी पत्नी के मरने का इतना अधिक पश्चाताप होता है कि वह स्वयं भी फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेता है। प्रबोध कुमार गोविल "खिलते पत्थर!" कहानी में कामवाली बाई अपनी मालकिन सुष्मिता जी पर एसिड अटैक करके भाग जाती है। पूनम मनु की "खंडित" कहानी में अपनी सहेली नंदिता पर हुए एसिड अटैक को ऋतु नहीं भूल पाती है और अक्सर रात में उठाकर नंदू-नंदू चिल्लाती है। ऋतु के पति सुभाष और उनकी दोनों बेटियाँ ऋतु के रात में नींद में अचानक चिल्लाने पर परेशान रहते हैं। कहानी के अंत में ऋतु के चिल्लाने का कारण मालूम पड़ता है। इस कहानी में अवचेतन मन की अवधारणा है। यह कहानी जीवन के प्रत्यक्षीकरण की कहानी है। यह रचना ऋतु के मानसिक अंतर्द्वंद्व की कहानी है। सत्या शर्मा "कीर्ति" की "सफर अब भी जारी था" रोचक कहानी है। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखी कहानी है। इसमें कहानी का नैरेटर एक लेखक है जो अपनी कहानी के लिए पात्रों को खोजने के लिए सफ़र करता रहता है। एक सफ़र में जब वह एक एसिड पीड़िता की कहानी सुनता है तब उसे कहानी के अंत में मालूम पड़ता है कि वह भी इस कहानी का एक पात्र है। कथाकार ने भारतीय समाज के यथार्थवादी जीवन, मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से और बहुत सुंदर चित्रण किया है। कहानी में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। डॉ. लता अग्रवाल "रिसन" कहानी में अपनी बच्ची राम्या के सामने हृतेश अपनी पत्नी पर तेज़ाब की शीशी उड़ेलकर भाग जाता है। राम्या सॉफ्टवेयर इंजीनियर हो गई है। उसकी माँ राम्या की शादी करना चाहती है लेकिन राम्या शादी के लिए तैयार नहीं होती है। राम्या की माँ राम्या को समझाती है कि दुनिया के सभी पुरुष तुम्हारे पापा जैसे नहीं होते। परन्तु राम्या शादी नहीं करना चाहती, उसे पुरुष जाति से ही नफ़रत हो चुकी है। लेखिका ने इस कहानी के अंत में लिखा है रिश्तों की इस टूटन से संबंधों का जो रिसाव हुआ है उसकी रिसन मेरी बच्ची के जीवन को लील रही है। क्या कोई है जो मेरी सहायता करे? ताकि मेरी बच्ची का यह नीरस जीवन मरुस्थल की धूल भरी आँधियों से निकलकर स्निग्ध सरिता में डूबकी लगा रसमय हो जाए . . . ।

ये कहानियाँ समाज को आईना दिखाती हैं। इस संग्रह की कहानियाँ हमारी चेतना को झकझोरते हुए नफ़रत, वहशीपन, बदले की भावना जैसी हिंसक ताक़तों का विरोध करते हुए अन्याय के विरूद्ध संघर्ष को प्रेरित करती है। ये कहानियाँ एक व्यापक जागरूकता की विचारोत्तेजक कहानियों का संग्रह है, जिसमें हमारे समय का यथार्थ ध्वनित है। इस संग्रह की कहानियाँ पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती हैं। पारिवारिक, सामाजिक सच्चाइयाँ इन कहानियों में इस कदर साकार होती हैं कि पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते है। कहानियों के चरित्र वास्तविक चरित्र लगते हैं, कृत्रिम या थोपे हुए चरित्र नहीं। इस संकलन की कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है, पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है।

यह पुस्तक अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में सक्षम है। देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से इस "अम्लघात" संग्रह की कहानियाँ सफल है और अपने उद्देश्य का पोषण करने में सक्षम रही हैं। इस पुस्तक की कहानियों से इस पुस्तक की संपादक सुधा ओम ढींगरा और इस पुस्तक में शामिल सभी कहानीकारों की समाज के प्रति सकारात्मक सक्रियता दृष्टिगोचर होती है। निश्चय ही प्रवासी साहित्यकार, कथाकार सुधा ओम ढींगरा बधाई की पात्र है। आशा है कि सुधा ओम ढींगरा के संपादन में संकलित पुस्तक "अम्लघात" (एसिड अटैक की कहानियाँ) का साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

000

नई पुस्तक

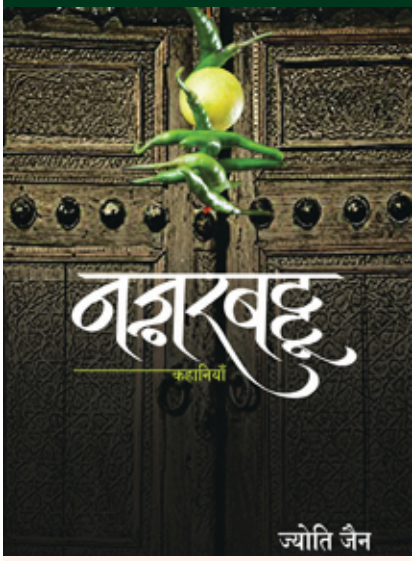

नज़रबट्टू

(कहानीसंग्रह)

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

इस कहानी संग्रह में वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार ज्योति जैन की बीस कहानियाँ संकलित हैं। पंकज सुबीर इस संग्रह के बारे में कहते हैं - ज्योति जैन के अंदर का कथाकार मन जीवन और ज़मीन दोनों से जुड़ा हुआ है; वे एक क्षण को भी कहानी पर अपनी पकड़ कमज़ोर नहीं पड़ने देती हैं। इतने संवेदनशील विषय का निर्वाह इतने सुंदर तरीक़े से करती हैं कि पाठक उनकी लेखनी के प्रवाह के साथ कहानी में बहता चला जाता है। ज्योति जैन की कहानियाँ हमें आश्वस्त करती हैं कि लोक और जीवन की कहानियाँ लिखने का सिलसिला अभी समाप्त नहीं हुआ है। ये कहानियाँ हम सब के जीवन के आसपास की कहानियाँ हैं। इन कहानियों के पात्र मानों हमारे ही जीवन से टहलते हुए ज्योति जैन की कहानियों समा गए हैं। इन पात्रों के गठन में कहीं कोई छद्म या आडम्बर नहीं है। इस संग्रह की कहानियों जीवन बिखरा हुआ है। इन कहानियों को पढ़ते समय हम परिवर्तित हो रहे समाज का चेहरा भी देख सकते हैं। संग्रह की कहानियाँ देर तक हमारे साथ बनी रहती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

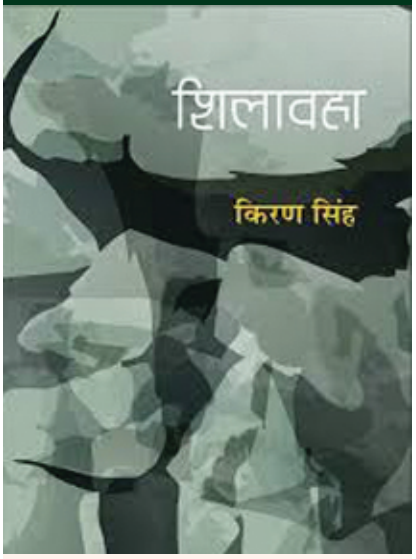

शिलावहा

(उपन्यास)

समीक्षक : अनिल प्रभा कुमार

लेखक : किरण सिंह

प्रकाशक : आधार प्रकाशन, पंचकूला

अनिल प्रभा कुमार
com 119, Osage Road, Wayne, NJ-07470
मोबाइल- 973 978 3719
ईमेल- aksk414@hotmail.com

सदानीरा शिलावहा बन गई है और किरण सिंह धर्मसत्ता, पितृसत्ता, सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों, वर्ण व्यवस्था और न जाने कितने ही सभ्य समाज में, मानवीयता के प्रवाह में अवरोध बन खड़ी मान्यताओं को अपने तर्क और प्रश्नों के प्रबल आघात से बहा ले जाने वाली लेखिका बन जाती है।

"शिलावहा" की मुख्य धारा में कितनी ही छिपी हुई कहानियाँ सतह पर आकर न्याय माँगती है प्रश्न करती हैं, झकझोरती हैं और कुछ सोचने को विवश करती हैं। युगों से आस्था की धरती में धँसी चेतना की जड़ें विरोध करना चाहती हैं। मानवता की शाखाओं पर संवेदना के फूल नए रूप में खिलना चाहते हैं, खिलते हैं।

आसान नहीं होता परम्पराओं को ललकारना। स्थापित छवियों को भग्न करने के लिए एक विशेष प्रकार के साहस की आवश्यकता होती है। वह साहस, वह निर्भीकता धीरे-धीरे आती है। अपनी अन्तर्शक्ति से उत्पन्न ऊर्जा से समाज के षड्यंत्रों और पाखंडों को ध्वस्त करने के उपरान्त ही आप धर्म और संस्कृति के नाम पर पितृसत्ता द्वारा रचे गए भीषण कुचक्र को निरावरण करने का साहस अर्जित कर पाते हैं। इसमें आपकी निष्ठा पर ही प्रश्न उठ सकते हैं और आप संशय के घेरे में घिर सकते हैं। अभिव्यक्ति सदैव यह ख़तरा मोल लेती आई है।

इस कथा में अहल्या से माँ गौतमी कहती हैं, "नहीं...नहीं! कोई देवता नहीं.....रिशि-महर्षि कुछ नहीं।.....किसी भी बिपद में स्वयं को पुकारो! स्वयं को याद करो!"

किरण सिंह ने भी यही किया है। वह एक पौराणिक कथा की दुर्गम चढ़ाई पार करके उस स्थल पर पहुँची हैं जहाँ उनकी दृष्टि में कोई बाधा- अवरोध नहीं। यह उनका निजी पर्वतारोहण नहीं। वह स्त्री जाति के दमन का कुचक्र विध्वंस करती, उसके लिए राह बनाती "शिलावहा" के तट पर पहुँच कर समूची स्त्री जाति, मनुष्यता को पुकार रही हैं।

इस उपन्यासिका में मुख्य कथा पौराणिक अहल्या की है। इसके साथ ही कई अवान्तर कथाएँ जुड़ती जाती हैं और चिन्गारी अग्निपुंज बन जाती है। अहल्या पर आरोप है कि उसने विवाहिता स्त्री होकर भी पर-पुरुष इन्द्र से शारीरिक संबंध बनाए। इन्द्र पर-स्त्री से, छल से उसका भोग करने का अपराधी है। वर्षों तक अहल्या शापित होकर शिला बनी रही। अहल्या को शिला से मानवी में परिवर्तित करने राम आए –एक दिव्य पुरुष। यह पौराणिक कथा है। इस बार शताब्दियों के उपरान्त इस अहल्या की कथा में नए प्राण फूँकने का, उसे न्याय दिलाने का बीड़ा उठाया एक इसी लोक की स्त्री ने। केवल अपनी अन्तर्मन की प्रतिबद्धता और लेखनी के बूते पर।

यह लेखिका का स्व-चयनित निर्णय था। अहल्या की ओर से उसका मुक़दमा लड़ना,उसे न्याय दिलवाना। समय की खाइयों में यह प्रकरण दब चुका था। समाज के न्यायधीशों के अनुसार अहल्या अपराधिन घोषित हो चुकी थी। उसे दंड मिल चुका था। अभियोग समाप्त। इस असत्य को इतनी बार, इतनी तरह से दोहराया गया कि यही सत्य मान लिया गया। किरण सिंह ने वही मृतपाय प्रकरण उठाया। एक कठिन चुनौती के रूप में स्वीकारा। उन्होंने पूरी शिद्दत के साथ उस प्रताड़ित, दमित, लांछित और अपराधिनी मान ली गई दंडभोगिता को न्याय दिलवाने के लिए कटिबद्ध हो धर्म, संस्कृति और समाज के कितने ही दस्तावेज़ों को प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए खंगाला है।

अहल्या की जर्जर, प्रचलित कथा को 'शिलावहा' में यूँ आधुनिक सोच के रसायनों के घोल

से धो कर, नयी तार्किकता और संवेदना की धूप में सुखाया है कि उसके नये अर्थ उजागर हो गए। अहल्या के निर्दोष होने के पक्ष में ये तर्क, एक नए समय की रोशनी में, एक नई लिखावट में पाठकों के सामने प्रकट होते हैं। न्याय की देवी को अहल्या की पैरवी करने वाली लेखिका ललकारती है कि वह आँखों से युगों से बँधी मान्यताओं की जीर्ण पट्टी को हटाकर नई दृष्टि से साक्ष्यों को देखे।

"शिलावहा" पढ़ते हुए स्थापित मूल्यों की चूलें हिल जाती हैं। अहल्या-इन्द्र प्रसंग की पुनर्रचना की गई है। वह अनैतिक, अनैच्छिक संबंध नहीं। नैसर्गिक प्रेम पर आधारित संबंध है। यदि किसी संबंध को प्रश्न की परिधि में होना चाहिए तो वह है पैंसठ वर्षीय गौतम ऋषि और पन्द्रह वर्षीय उनकी पालित पुत्री अहल्या का वैवाहिक सम्बन्ध।

एक स्थान पर अहल्या गौतमी से प्रश्न पूछती है: "अम्मा बबूल कब मरता है?"

"एक पात, स्वयं में आग लगा कर, कोटर में घात से बैठ जाए।"

वही अहल्या करती है। वह प्रेम की अगन अपने भीतर लगाकर सब कलुषता के बबूल झुलसाना चाहती है। इस पुस्तक की महत्त्वपूर्ण भूमिका में रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं:

"किरण सिंह संस्कृति को सामंजस्य और संतुलन की विराट चेष्टा के रूप में देखती हैं जिसे कुचलने के लिए पूरा तंत्र अपनी ताक़त, दुरभिसंधियों और साजिशों के साथ संगठित खड़ा है।"

अहल्या जन-मत को जागृत करती है। विश्वामित्र और गालव की कथा के रेशे उघाड़ते हुए व्यंग्य और विद्रूप से कहती है; "महान गुरु-शिष्य परम्परा वाले आर्यावर्त की जय।"

अतिथि सेवा का विकृत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, जब ऋषि सुदर्शन अपनी पत्नी ओघवती को ब्राह्मण के वेश में परीक्षा लेने आए देवता को भेंट कर देते हैं तो पहरे पर खड़े सुदर्शन पर सब देवताओं ने फूल बरसाए और वह सदेह स्वर्ग जाते हैं।

संस्कृति के इस निकृष्ट और भ्रष्ट रूप पर व्यंग्य करते हुए अहल्या कहती है:

"अतिथि देवो भव:। जय आर्य संस्कृति।"

अहल्या का जन्म एक प्रयोग है। शेष स्त्रियों को सिखाने के लिए एक सबक। एक षड्यंत्र स्त्री जाति के विरुद्ध। एक स्थान पर ब्रह्मदेव कहते हैं:

"हमें ऐसी व्यवस्था तैयार करनी है कि एक- एक माँ, स्वयं अपनी बेटी को दूध के साथ पिलाए कि वह बेटों से हीन है। स्त्री के मुख से अनायास निकले कि स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु होती है। वर्ण व्यवस्था की सबसे निचली पायदान भी दुर्भाग्य का ठीकरा स्त्री के सिर फोड़े.....जब रक्त मज्जा, हवा-पानी, पत्ती-पत्ती यह मान ले कि स्त्री नीच होती है...तब वह व्यवस्था जिसे क्रान्ति कहते हैं, वह आ जाए तो भी, रसातल में पहुँच चुकी स्त्री, कितना भी ऊपर चढ़े, दोयम श्रेणी की ही बनी रहेगी। वह अपमान को अपनी दिनचर्या में शामिल कर ले...पराधीनता उसके स्वभाव में आ जाए।..... क्योंकि स्त्री के उठते ही उसकी झुकी हुई रीढ़ और ग्रीवा पर रखा देव-युग गिर जाएगा।"

यही पितृसत्ता की रुग्ण सोच है जिस पर लेखिका आघात करती है। हमारे समाज की बजबजाती रूढ़ियों को वह एक-एक कर सामने लाती है और दिखाती है उनका घोर कुरूप रूप। इस पूरी कथा में यही विकृत परम्पराएँ और रूढ़ियाँ अनावृत की गई हैं। इस भयंकरता के बीच यदि कुछ कोमल और सुन्दर बचता है तो वह है 'प्रेम'।

कथा कहीं भी पुरातन नहीं लगती। पात्र, उनके नाम, परिवेश पौराणिक हैं। कथा के मूल प्राण में समय ने कोई अन्तर नहीं डाला। अब भी वही धर्मसत्ता के अन्ध विश्वास को बनाए रखने के हथियार हैं। वही स्त्री दमन के लिए पितृसत्ता के तर्क हैं। कहीं कुछ परिवर्तन नहीं। यही कारण है कि इस इक्कीसवीं सदी में भी शिलावहा उतनी ही सार्थक है, अभीष्ट है जितनी वह अपने उद्गम काल में रही होगी।

किरण सिंह के लेखन में एक विशेषता दिखती है कि वह कितनी भी नकारात्मक, भयानक और अँधेरी परिस्थितियाँ हों, उनमें से सकारात्मकता के जुगनू एकत्रित कर हमेशा कथा को आशावादिता के मोड़ तक खींच कर ले आने में समर्थ हैं। देश में दुर्भिक्ष की विकट स्थिति से कथा का प्रारम्भ होता है। वहाँ भी 'अकाल में उत्सव' जैसी परिस्थितियाँ हैं। अहल्या की रचना के पीछे के कारण, राम के अभ्युदय की अवधारणा, अहल्या और इन्द्र के नैसर्गिक प्रेम की कथा, पितृसत्ता की वर्जनाएँ, वर्ण-व्यवस्था की अमानवीय स्थितियाँ, मर्यादा के रक्षकों द्वारा ही मर्यादा के भग्नावशेष निर्मित करना, कितने ही कगारों को छूती हुई यह कथा 'प्रेमबाड़ी' में अपना अन्तिम विश्राम पाती है।

"प्रेम में डूबी स्त्रियों के चेहरे संसार के सबसे सुन्दर चेहरे हैं। यह बढ़ता जाता गाँव 'प्रेमबाड़ी' है। जहाँ दुर्भिक्ष को पराजित करने के लिए बाँस के बिरवे रोपे जाते हैं। जहाँ प्रेम को सम्मान और आश्रय मिलता है। अपने प्रेमी को उसका शारीरिक और आत्मिक बल लौटा देने को जहाँ त्रिभुवन सुन्दरी अहल्या कटिबद्ध है तो वहीं प्रेम में स्वार्थी और कायर हो गए इन्द्र के लिए संदेश भी है, "लड़ाइयाँ भुजाओं से नहीं कलेजे से लड़ी जाती हैं।"

किरण सिंह ने 'सत्य' लिखा है पर उसे 'प्रिय' का मख़मली आवरण नहीं ओढ़ाया। शिलावहा का सत्य नग्न है, चौंकाता है। नग्न सत्य के साथ आँख मिलाने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। किरण सिंह कभी भी सामान्य, सुविधाजनक विषयों पर नहीं लिखतीं। वह अपने भीतरी लेखक को चुनौती देते हुए आगे बढ़ती हैं। इस बार उन्होंने 'शिलावहा' में एक गिरी हुई, पाषाण प्रतिमा में परिवर्तित कर दी गई स्त्री का हाथ थामा है। उसके साथ अपने पूरे जीवट और सामर्थ्य के साथ खड़ी हुई हैं।

यह एक शुभ संकेत है कि हमारे इस समय में एक लेखिका ने पौराणिक कथा से भिड़कर, तर्क और संवेदना के अस्त्रों से लैस होकर, स्त्री-विमर्श की एक ऐसी सशक्त रचना प्रस्तुत की है कि जिसे आने वाली पीढ़ियाँ पढ़ेंगी और पहचानेंगी इसकी तार्किक ऊर्जा को।

000

पुस्तक समीक्षा

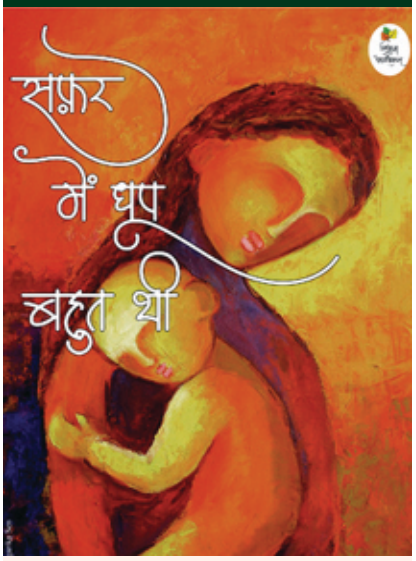

सफ़र में धूप बहुत थी

(उपन्यास)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ज्योति ठाकुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"सफ़र में धूप बहुत थी" ज्योति ठाकुर की पहली कृति है। "सफ़र में धूप बहुत थी" पारिवारिक संबंधों पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है। इस लघु उपन्यास में स्त्री पात्रों के सांसारिक संघर्ष की कहानी रची गई है। जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना, समस्या, आकांक्षा इस उपन्यास में चित्रित है। इस कृति में ज़मीनी सच्चाइयों का अंकन है। इस उपन्यास की कहानी हमें ऐसे अँधेरे कोनों से रू-ब-रू करवाती है कि हम हैरान रह जाते हैं। यह घोर यथार्थवादी उपन्यास है। पुरुष प्रधान समाज में जी रही बेबस, बंधनों में जकड़ी स्त्री जानकी के शोषण की व्यथा कथा है। जानकी के माता-पिता ग़रीब थे। एक रिश्ता जानकी की बड़ी बहन शारदा के लिए आता है लेकिन तब शारदा घर में नहीं थी, वह छात्रावास में थी। तब लड़के वालों ने कहा कि जो लड़की चाय-नाश्ता लेकर आई थी, वह कौन है? हमें तो यही लड़की पसंद है। वह लड़की जानकी थी। लड़के वाले जानकी को शगुन के पैसे देकर रिश्ता पक्का कर लेते हैं। इस तरह की घटनाएँ आज से 30-40 साल पहले काफी देखने को मिलती थीं। लेकिन कुछ दिनों के बाद जानकी वह रिश्ता तोड़ देती है क्योंकि वह लड़का उसे पसंद नहीं था। फिर जानकी की बड़ी बहन की शादी एक शिक्षक श्याम से होती है। श्याम के साथ एक और शिक्षक राम की पदस्थापना उसी जगह होती है। राम दिखने में खूबसूरत था। राम और श्याम में दोस्ती थी। श्याम के साथ राम भी जानकी के घर आने लगा और फिर राम जानकी का हाथ माँग लेता है और दोनों की शादी हो जाती हैं। राम ने जब शिक्षा विभाग में ज्वाइन नहीं किया था तभी से राम की आँखों में एक सपना बसा हुआ था कि वह पुलिस विभाग में उप निरीक्षक के पद पर चयनित होकर नौकरी करे। राम मेहनत करके पुलिस विभाग में उप निरीक्षक के पद पर चयनित हो जाता है और फिर वह शराब पीने लगता है और जानकी के साथ मारपीट करता है। जानकी जीवन भर अपने पति राम के अत्याचार सहन करती है। इस कृति में जानकी के पति राम के विवाहेत्तर संबंधों को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है। जानकी का पति राम कई दिनों तक अपनी बीवी और बच्चों की ख़बर नहीं लेता है, न ही उन्हें पैसे भेजता है और वह अन्य स्त्रियों के साथ अय्याशी करता रहता है। अन्य स्त्रियाँ और कोई नहीं, जानकी की सगी बहनें शारदा व सुनीता हैं। जब राम का स्थानांतरण झाबुआ होता है तब वहाँ राम तलाकशुदा यासमीन से संबंध स्थापित कर उसके साथ रहने लग जाता है। इस उपन्यास की सभी घटनाएँ पुरुष द्वारा प्रताड़ित शोषित स्त्री की असहनीय दास्ताँ को बयान करती है। पति के होते हुए भी जानकी परिवार का बोझ खुद अकेले ढोती है। एक स्त्री अपने घर परिवार

के विकास के लिए अपना पूरा जीवन होम कर देती है। जानकी की कोख से जब तीसरी बार बेटी पैदा होती है तब बेटे की चाहत में पूरे परिवार में मातम सा छा जाता है और तो और जानकी की माँ सुखलाल देवी अपना गुस्सा नवजात बच्ची पर उतारती है। अंत में जब जानकी के चारों बच्चे सरकारी विभागों में अधिकारी बन जाते हैं और उनकी शादियाँ होकर वे सेटल हो जाते है तब उनके पास अपनी माँ जानकी के लिए समय नहीं होता है, तब जानकी पूरी तरह से टूट जाती है। इस तरह की घटनाएँ चारों तरफ बिखरी पड़ी हैं जिन्हें लेखिका ने सँवारा है। उपन्यास का कथानक अनेक घटनाओं और नाटकीयता से धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। ज्योति ठाकुर इस उपन्यास के माध्यम से महिलाओं की आत्मीय पीड़ा, मानसिक अंतर्द्वंद्व, अपने पति द्वारा किया गया विश्वासघात, उत्पीड़न, अत्याचार जैसे तत्वों को पाठकों के समक्ष लाती है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए इस उपन्यास की मुख्य किरदार जानकी के अंदर की छटपटाहट, उसके अंतर्मन की अकुलाहट को पाठक स्वयं अपने अंदर महसूस करने लगता है। जानकी के जीवन में घटनाओं-दुर्घटनाओं की बाढ़ आती है लेकिन जानकी अपनी जिजीविषा और संघर्ष से अपने बच्चों का बेहतर भविष्य बनाती है। उपन्यास के प्रमुख पात्र जानकी, परी, वर्षा, मानसी, विक्रम, शोभाराम अपनी अपनी जगह जीवन का संघर्ष करते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं। इस उपन्यास में संघर्षशील और आशावादी जानकी, परी, वर्षा, मानसी जैसी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं जो परिस्थितियों के सामने झुकती नहीं हैं। जानकी की बेटियाँ भी अपने पिता राम को दोषी मानकर कटघरे में खड़ा करती है। लेखिका ने इस कृति में सामाजिक यथार्थ और परिस्थितियों का सटीक शब्दांकन किया है। नारी उत्पीड़न का घोर पाश्विक रूप और पुरुष की मानसिकता का विकृत रूप देखना हो तो आपको इस उपन्यास को पढ़ना होगा। कथाकार ज्योति ठाकुर ने इस पुस्तक में बेहिचक सत्य को उद्घाटित किया है। उपन्यास के कुछ अंश की बानगी देखिए जिससे जानकी, राम के चरित्र को समझने में सहायता मिलेगी।

आज जानकी बहुत खुश थी इसलिए नहीं कि उसके रिश्ते की बात पक्की हो गई, सिर्फ इसलिए कि आज जो शगुन के पैसे मिले हैं उन पैसों से वह अपने भाई के लिए कपड़े भिजवा सकेगी।

बच्चों के लिए त्यौहार का सिर्फ एक ही मतलब था, पापा का घर आना, शराब पीकर रात भर परेशान करना और उनके लिए मांसाहारी खाना ही बनाना बस।

ईश्वर ने न जाने कौन सी घड़ी में जानकी का भाग्य लिखा था और जैसे ईश्वर उसके भाग्य में सुख लिखना ही भूल गए हों!

उस रात दोनों बहनों ने एक पल के लिए भी आँख बंद नहीं की थी, क्योंकि एक बाप के अवैध संबंधों का जवान बेटियों के सामने खुलकर सामने आना जीते जी मर जाने के समान था।

दोनों बहनों ने राम को जगाया और कहा कि आप इसी समय हमारा घर छोड़ कर चले जाओ। आप बाप कहलाने के लायक नहीं हो। वर्षा ने अपने फटे हुए कपड़े राम को दिखाए और पूछा कि कोई बाप अपनी बेटी के कपड़े ऐसे फाड़ता है क्या? जवाब दो।

उपन्यासकार ने कथावस्तु को गति देने के लिए कथोपकथन शैली का सहारा लिया है। कुछ संवादों द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है। पात्रों का चरित्र चित्रण, व्यवहार स्वाभाविक है। इस उपन्यास का शीर्षक कथानक के अनुसार है और शीर्षक कलात्मक भी है। कथानक में सहजता है। पुस्तक में कुछ प्रूफ और टंकण की त्रुटियाँ हैं। "सफ़र में धूप बहुत थी" एक सशक्त उपन्यास है जिसमें स्त्री जीवन की त्रासदियों को ज्योति ठाकुर ने जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। ज्योति ठाकुर सशक्त उपन्यास लिखने के लिए बधाई की पात्र है।

ज्योति ठाकुर की प्रथम कृति "सफ़र में धूप बहुत थी" का साहित्य जगत् में स्वागत है, इस शुभकामना के साथ कि उनकी यह यात्रा जारी रहेगी।

000

नई पुस्तक

काग भुसण्ड

(व्यंग्य उपन्यास)

लेखक : राजीव तनेजा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

व्यंग्यकार राजीव तनेजा का व्यंग्य उपन्यास "काग भुसण्ड" नाम से शिवना प्रकाशन से हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। उपन्यास को लेकर साहित्यकार अंजू खरबंदा कहती हैं- "काग भुसण्ड" ऐसा लघु उपन्यास है जिसे एक ही बैठक में मज़े से पढ़ा जा सकता है। राजीव जी के लेखन की विशेषता है उनके द्वारा उत्पन्न किया गया रहस्य, जिसे जानने के लिये पाठक बेसब्री से अन्त तक इंतज़ार करता है। इस उपन्यास को जब पढ़ना शुरू किया तो राजीव जी के लेखन की रवानगी को महसूस किया। एक व्यक्ति कैसे दूसरों की कोमल भावनाओं से खेलता है, उसके इमोशंस का फायदा उठाने की ताक में रहता है और फिर निडर होकर दूसरे शिकार की तलाश में निकल पड़ता है। ऐसे लोग हमारे समाज पर कलंक की भाँति होते हैं जिन्हें अपने स्वार्थ के आगे कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। सच में! ऐसे लोगों को सबक सिखाना बेहद आवश्यक है। मुझे पूरी आशा है कि लाजवाब शब्दों से सजा यह लघु उपन्यास आपको बेहद पसंद आएगा।

000

केंद्र में पुस्तक

खिड़कियों से झाँकती आँखें

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : युगेश शर्मा, लता अग्रवाल, प्रतिभा सिंह

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

युगेश शर्मा
' व्यंकटेश-कीर्ति '
११, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन
चूना भट्टी, कोलार रोड
भोपाल - 462016
मोबाइल- 9407278965

डॉ. लता अग्रवाल
30, एमआइजी, अप्सरा कॉम्प्लेक्स – A
सेक्टर, इंद्रपुरी, भोपाल-462022
मोबाइल -9926481878

प्रतिभा सिंह
द्वारा आशुतोष सिंह, 99A/2A
न्यू बैरहना, इलाहाबाद, 211002 उप्र
मोबाइल -7080786399

आज की कचोटती सच्चाइयों से साक्षात्कार कराती कहानियाँ

युगेश शर्मा

आज की बौद्धिक चेतना चाहे कितनी ही तकनीकी, प्रगतिशील और तार्किक क्यों न हो गई हो, लेकिन साहित्य के पुरोधाओं ने साहित्य की जो परिभाषा की है, वह अब भी यथार्थ और प्रभावी है। साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि उसमें सबका हित संनिहित रहता है। इस हित के भीतर मंगल और कल्याण की उत्कट भावना का समावेश रहता है। अभिप्राय यह कि साहित्य सृजन एक सकारात्मक और रचनात्मक कर्म है। यही कारण है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं के शिल्प में समय की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन आने के बाद भी उसकी मूल आत्मा शाश्वत बनी हुई है। 21वीं सदी में सम सामयिक तक़ाज़ों के कारण जीवन मूल्यों में जो नकारात्मकता आई है, वह साहित्यकारों के सामने भी एक बड़ी चुनौती है। इस नकारात्मकता ने जीवन के हर क्षेत्र में एक उथल पुथल सी मचा डाली है और मानवीय रिश्ते भी तेज़ी से स्वार्थलिप्सा, संवेदनहीनता और पलायनवाद के शिकार होते जा रहे हैं। जैसे-जैसे आधुनिक जीवन में अर्थ की प्रधानता बढ़ रही है और पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्ते भी काले धन की चाबी से खुलने लगे हैं वैसे-वैसे आज के मानवीय रिश्ते भी तेज़ी से विचलन की ओर बढ़ रहे हैं। जो भारतीय युवा धनार्जन के लिए विदेश प्रवास पर जाते हैं यह सच है कि उनमें से अधिकतर अपने पारंपरिक रिश्तों और संस्कारों से दूर होते जा रहे हैं। भारतीय रिश्तों की ऊष्मा, ऊर्जा और आत्मीयता के साथ उनका रिश्ता टूटता सा दिखाई दे रहा है। आहत करने वाली नकारात्मक स्थिति के मौजूद रहते अब भी सकारात्मकता की उजली किरण बाकी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रवासी भारतीय युवाओं और भारतीय परंपराओं एवं संस्कारों को लेकर सर्वत्र निराशा ही निराशा नहीं है, आशा की संतोषजनक उपस्थिति भी है बशर्ते धैर्य और सूझबूझ के साथ उसको तलाशा और स्वीकारा जाए।

यह विश्लेषण मैंने अमेरिका में बसी यशस्वी हिन्दी कथाकार सुधा ओम ढींगरा के छठवें कहानी संग्रह 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। वे प्रवासी भारतीय कथाकारों में एक अग्रणी श्रेष्ठ कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ क़स्सागोई के मामले में तो मालामाल हैं ही, साथ ही उनमें भारतीय जीवन मूल्यों, परंपराओं और संस्कारों को लेकर एक ख़ास प्रकार की ऐसी चिंता भी विद्यमान है, जिसमें सकारात्मक बदलाव का आह्वान भी है। वे चाहती हैं कि भारत की प्रवासी युवा पीढ़ी और भारत की मूलभूत अच्छाइयों के बीच जो अलगाव की खाई निर्मित हो रही है, वह न हो और युवागण विदेशों में धनार्जन करते हुए भी अपनी मातृभूमि की गंध को अपने भीतर बनाए रखें। अमेरिका में अपने जीवन का लंबा समय व्यतीत करने के बाद भी सुधा जी के मन-मस्तिष्क में भारत के प्रति को अगाध प्रेम है, वह इस कहानी संग्रह की कहानियों में शिद्दत से अभिव्यक्त हुआ है। आपने अपनी कहानियों में अमेरिका के सामाजिक जीवन, वहाँ की संस्कृति और वहाँ के भूगोल का जो यथार्थ चित्रण किया है- वह ज़ाहिर करता है कि वे अमेरिका के विभिन्न पक्षों के साथ कितनी गहराई से जुड़ चुकी हैं।

संग्रह की कहानियाँ पाठकों को कथा के क्रमिक विकास के माध्यम से अमेरिका से भी परिचित कराती चलती हैं। इन कहानियों में भारत और अमेरिका दोनों के साथ साक्षात्कार होता चलता है। जिन ज्वलंत चिंताओं और चुनौतियों पर बहुत से कथाकार कलम चलाने से बचते रहते हैं, सुधाजी ने उन्हीं को अपनी कहानियों का केन्द्रीय विषय बनाया है। उनका यह दृष्टिकोण इस बात की पुष्टि करता है कि वे अमेरिका में बस जाने के बाद भी भारत की चिंताओं और चुनौतियों के साथ गंभीर दायित्व भाव से अनुप्रेरित होकर जुड़ी हुई हैं। यही कारण रहा है कि इस संग्रह की कहानियों में सुधाजी ने आज की कचोटती- उद्वेलित करती सच्चाइयों से साक्षात्कार कराया है।

शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.) द्वारा वर्ष 2019 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' में कुल आठ कहानियाँ शामिल हैं। इन आठ कहानियों में जीवन के आठ अल्हदा रंग कथाकार ने प्रस्तुत किए हैं। सबका लक्ष्य भारतीयों का कुशल मंगल ही है। भारतीय परिवार बिखराव और कड़वाहट से बचें, यह कथाकार की आंतरिक कामना रही है और अब भी है। एक प्रवासी कथाकार के मन में अपनी मातृभूमि के प्रति ऐसी चाहत, आकांक्षा और उत्कट भावना सचमुच आह्लादित करती है। कड़वा सच तो यह है कि विदेशी चकाचौंध और धन के प्रबल प्रवाह में बहकर ज़्यादातर भारतीय प्रवासी कथाकार अपने देश की चिंता करने और उसकी ज्वलंत समस्याओं को केन्द्र में रखकर कथा लेखन करने में अधिक रुचि नहीं लेते। ऐसा आभास होता है जैसे वे अपनी जन्मभूमि की पुकार को अनसुनी करने की आदत डाल चुके हैं। ऐसे कथाकार भारत के युवा प्रवासियों के भारतीय रिश्तों, संस्कारों और उनको परिवार के सुख-दुख से विलग करने वाली मनोवृति को हवा देने का काम ही तो कर रहे हैं।

'खिड़कियों से झाँकती आँखें', संग्रह की पहली और शीर्षक कहानी है। इस कहानी के पारायण के पश्चात् ऐसा अहसास होता है जैसे संवेदनशीलता की पूँजी से समृद्ध कथाकार ने आँसुओं में स्याही घोलकर इस कहानी को रचा है। देश चाहे अमेरिका हो या भारत, बुज़ुर्ग लोग इन दिनों जिन त्रासद दुश्वारियों से गुज़र रहे हैं, उनका यथार्थ चित्रण इस कहानी में हुआ है। कहानी कहती है कि मन के रिश्ते जन्मते नहीं, संवेदनशील बनकर स्वयं खोज लिए जाते हैं। व्यक्ति चाहे तो विदेशी धरती पर भी रिश्तों की गंध को बिखेर सकता है। कहानी का एक पात्र डॉ. रेड्डी कहानी के नायक डॉ. मलिक से ठीक ही तो कहता है - "जीवन की लंबी यात्रा में दिल के रिश्ते ही काम आते हैं, उन्हें सँभालकर रखना।"... 'वसूली' इस संग्रह की दूसरी महत्वपूर्ण कहानी है। इस भौतिकवादी दौर में पैसों की तुलना में रिश्तों की कोई ख़ास कीमत नहीं रह गई है। नई पीढ़ी के लोग माता-पिता का ऋण चुकाने की बजाय नाशुक्रापन दिखाते हुए उनको अपमानित और उपेक्षित करने में अपनी शान समझने लगे हैं। स्वार्थ सिद्धि की मनोवृत्ति के चलते वे उचित-अनुचित को भी भूल जाते हैं। कहानी बहुत कचोटती है। प्रवासी छोटे बेटे द्वारा माँ बाप के लिए बनाए गए मकान को बड़ा बेटा बिकवाकर अपना हिस्सा वसूल लेता है। छोटा बेटा माँ बाप को बेघर नहीं देखना चाहता और मकान की बिक्री से मिली अपने हिस्से की रकम से उनके लिए तत्काल नया मकान ख़रीदता है और उनके नाम से उसकी रजिस्ट्री करवाता है। कथाकार ने कहानी में मानव-प्रवृति के दो चित्र बहुत ही कुशलता के साथ उकेरे हैं।

संग्रह की तीसरी कहानी है- 'एक ग़लत कदम।' यह सधी हुई कहानी इस ग़लतफहमी को निर्मूल साबित करती है कि विदेशी संस्कारों में पली-बढ़ी बहू भारतीय परिवेश में अच्छी बहू साबित नहीं हो सकती। अमेरिका में जन्मी बहू जैनेट का विरोध करने वाली सास उस समय खुशी में नहा उठती है जब उसकी वही विदेशी बहू ससुर और सास के नये घर में प्रवेश करते समय पूजा की थाली लेकर उनकी अगवानी करते हुए हल्दी कुमकुम का टीका सास के माथे पर लगाती है। तब गलतफहमी के सारे बादल छँट जाते हैं।... पत्र शैली में लिखी गई चौथी कहानी का शीर्षक है - 'ऐसा भी होता है।' कहानी में बहुत ही मार्मिकता के साथ भारत की एक पुरानी समस्या की तह में जाने का बहुत सार्थक प्रयास कथाकार ने किया है। यह समस्या है- बेटे-बेटी में भेदभाव। उपेक्षित होने के बावजूद उन्नति की बुलंदियों को छूकर विदेश में बस जाने पर भी परिवार की भरपूर मदद करने वाली बेटी ने अपने पिता और अपनी माता को झकझोरने वाला पत्र लिखा है। कहानी का संदेश है कि बेटियाँ भी अब बेटों की बराबरी में खड़ी हो गई हैं। उन्हें बेटों से कमतर न समझा जाएँ।

'कॉस्मिक की कस्टडी', संग्रह की पाँचवीं कहानी अलग ही भावभूमि की है। आज जबकि इंसान के प्रति इंसान के लगाव और प्रेम का झरना सूखता जा रहा है, ऐसे समय में अमेरिकी जीवन शैली में कुत्तों के प्रति लोगों की आत्मीयता चौंकाती है। कहानी में

कॉस्मिक नामक कुत्ते की कस्टडी पाने की गंभीर कवायद का रोचक चित्रण है। बेटा प्रेम से अंतत: माँ की इच्छा के अनुसार बीगल नस्ल के कुत्ते को माँ को सौंपते हुए कहता है- "मॉम सँभालो अपने छोटे बेटे कॉस्मिक को...।" कॉस्मिक को पाकर माँ खुशी से भर उठती है। इसी सुखद माहौल में बेटा माँ को अपनी गर्ल फ्रेण्ड से परिचित कराता है और माँ उसके साथ रिश्ते को मौन स्वीकृति दे देती है। यह भी सचमुच बहुत ही प्यारी कहानी है।... संग्रह की छठवीं कहानी है- 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना।' यह सच्चे प्रेम से सराबोर कहानी है। कहानी को पढ़ते समय गुलेरीजी की अमर कहानी 'उसने कहा था' की उत्सर्ग से ओतप्रोत भावभूमि से बार-बार साक्षात्कार होता है। कथाकार ने अमेरिका की प्राकृतिक स्थितियों का दुर्लभ वर्णन कहानी में किया है, जो उनके तत्संबंधी विशद् ज्ञान को रेखांकित करता है। कहानी भारतीय युवक विजय और अमेरिकी युवती जैनेट की एक ऐसी प्रेम कहानी है, जो सच्चे प्रेम का एक नया अध्याय रचती प्रतीत होती है। सच्चे प्रेम में कितनी गहराई और कितनी ऊँचाई होती है यह कहानी की बुनावट स्वयं बताती है। मन करता है इस कहानी को बार-बार पढ़ा जाए।

संग्रह की सातवीं कहानी का शीर्षक है- 'अँधेरा उजाला।' इस कहानी में एकाधिक अंतर्कथाएँ भी समानांतर चलती है।' कथाकार ने इस सच को उजागर किया है कि पर्याप्त अवसर मिल जाएँ तो निम्न कोटि का काम करने वाले उपेक्षित सर्वहारा लोग भी प्रगति की बुलंदियों को छू सकते हैं। इसके अलावा कहानी में कला जगत् की ओछी प्रतिस्पर्धा के भीतर की पाप कथा को भी रेखांकित किया गया है। एक प्रवीण गायक के फ़न को प्रतिस्पर्धी गायक द्वारा ज़हर देकर किस तरह मिटा दिया जाता है, उसका मार्मिक चित्रण कहानी में हुआ है। कहानी में पंजाबी लोक गीतों की मनभावन रसधारा भी कथाकार ने खूब प्रवाहित की है। कहानी को पढ़ते-पढ़ते कई बार पंजाब की गाती-नाचती धरती से दर्शन हो जाते हैं। कहानी की नायिका का चरित्र चित्रण सुधाजी ने इतनी खूबसूरती से किया है कि मन बरबस वाह-वाह कह उठता है।... संग्रह की आठवीं और अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' अलग ही तेवर वाली कहानी है, जो अमेरिका के व्यावसायिक जीवन का यथार्थ परिचय देने के साथ- साथ वहाँ प्रचलित धोखाधड़ी के एक तरीके से भी बड़े रोचक ढंग से रू-ब-रू कराती है। प्रवासी भारतीय महिलाएँ अमेरिका में अपनी कार्यकुशलता से व्यवसाय जगत् में किस तरह अपने पैर जमा चुकी हैं, यह भी कहानी बताती है। कहानी प्रेरित करती है कि यदि व्यक्ति के पास पर्याप्त धन है और वह उसको लोक कल्याणकारी कामों में लगातार है तो उसे सुकून और पुण्य दोनों की प्राप्ति होगी।

कहानियों की बुनावट, भाषा और शैली सहज, प्रभावी और आकर्षक है। भाषा में पंजाबीपन अतिरिक्त आनंद देता है। इन कहानियों की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वे पाठक को अपने साथ लिए चलती हैं और किसी भी सोपान पर न तो उन्हें भटकाती हैं और न ही निराश करती हैं/

000

मानव मन को चेतना प्रदान करती आँखें....

डॉ. लता अग्रवाल

कहानी का फलक काफी विस्तृत होता है, कहानी अपने में देश, काल और सभी वातावरण समेटे होती है। इसी तर्ज पर प्रवासी कहानियों ने कहानी को काफी विस्तार दिया है। सात समन्दर पार की संस्कृति, वहाँ का जन-जीवन, लोगों के आचार –विचार और व्यवहार आज भी अधिकांश भारतीयों के लिए रोमांच पैदा करता है। इस दृष्टि से भारत की ज़मीन से अंकुरित साहित्यकार जब विदेश की भूमि पर स्थापित हुए तो उनकी कलम के बहाने हमने न केवल विश्व के दर्शन किए बल्कि वहाँ की संस्कृति और जन जीवन को भी समझा। इन्हीं प्रवासी साहित्यकारों में नाम लेना चाहूँगी सुधा ओम ढींगरा का। पिछले दिनों उनका एक कहानी संग्रह 'कौन सी ज़मीन अपनी' पर बात करने का अवसर मिला और अब 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' पढ़ा।

अपने देश की स्मृतियों को हृदय में समेटे आजीविका की ख़ातिर विदेश की ओर रुख करना आज के युवाओं का शौक ही नहीं विवशता भी है। शिक्षा और रोज़गार के लिए विदेश की सरज़मीं की ओर रुख करते भारतीय युवाओं की पीड़ा, विवशता, कुंठा को दर्शाती है संग्रह की पहली और शीर्ष कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें'। जीवन संघर्ष जब अपनी ही ज़मीन पर दूभर हो रहा है ; जहाँ अपनों के स्नेह का खाद पानी है, ऐसे में एक अनजानी ज़मीन पर, अनजाने लोगों के बीच इस संघर्ष का रूप कितना घना होगा कल्पना की जा सकती है। कभी-कभी ये बच्चे दोहरी मार झेल रहे होते हैं। माता-पिता घर गृहस्थी के दायित्वों से उनका कंधा इस कदर लाद देते हैं, कि उन्हें न चाहते हुए भी विदेश का रुख करना पड़ता है। ऐसे ही माँ बाप का क़र्ज़, कुँवारी बहनों के ब्याह, भाइयों की चिंता की गठरी लिए वे विदेश की ज़मीन पर पहुँच तो जाते हैं, मगर जिस तरह नई मिट्टी में अपनी पकड़ बनाने किसी पौधे को जद्दोजहद करनी पड़ती है, इसी जद्दोजहद का सामना करते हैं ये युवा, जिसका ज़िक्र लेखिका करती हैं-

"भारत या पाकिस्तान से पढ़कर आए डॉक्टर को नौकरी दूर-दराज़ के छोटे-छोटे शहरों या कस्बों में मिलती है।" (पृ.-१०) मुख्य धारा से जुड़ने के लिए उन्हें कितना कुछ सहना पड़ता है। इस दौरान वे जिन स्थितियों से गुज़रते हैं उससे उपजी ग्लानि, टूटन और भीतर का अंतर्द्वंद्व है इन कहानियों में।

एक और विश्व व्यापी समस्या जिसकी ओर लेखिका ध्यान आकर्षित करती हैं। वृद्धावस्था की पीड़ा। जहाँ कथा का नायक पहुँचता है वहाँ उसे खिड़कियों से झाँकती आँखें सहमा देती हैं। कारण स्पष्ट है,

"यहाँ तो दो या चार आँखें ही दिख रही थी मुझे शून्य में टंगी स्थिर सी।"(पृ.-१५) ये टंगी स्थिर आँखें जिसमें नीरवता है। जीवन के प्रति, अपने ही बच्चों से उपेक्षित ये वृद्ध, अब हर युवा को उसी चश्मे से देखते हैं। यही कारण है वे सीधे संवाद करने से डर रहे हैं। डॉ. रेड्डी की समस्या आज कई माता-पिताओं की हैं, हम कह सकते हैं; वे एक प्रतिनिधि पात्र हैं।

बेटे के एक फ़ोन को तरसते हैं, बेटा भी दूरी बनाने इस हद तक जा पहुँचा है कि अपना फ़ोन नंबर भी सीक्रेट रखता है। दूसरी तरफ एक और समस्या जो हम सोचते थे केवल भारत की समस्या है, अंतरजातीय विवाह की अस्वीकृति। रेड्डी दंपति के बेटे से अलगाव का कारण बनी। 'खिड़कियों से झाँकती' ये वीरान, एकाकीपन से बोझिल थकी आँखें अपनों की राह में आँसू बहाते हुए आज भी उम्मीद का चिराग जलाए हैं। अंतत: "जीवन की लंबी यात्रा में दिल के रिश्ते ही काम आते हैं।"(पृ.-२२) लेखिका का यह सूक्त वाक्य व्यावहारिक है।

अभाव और दर्द परिवार को जोड़े रखता है, इसका उदाहरण हम पांडवों के रूप में देखते हैं, दु:ख में एक दूजे के साथ रहे भाई। हर इन्सान के भीतर कौरव और पांडव दोनों रहते हैं, निर्भर करता है उन्हें कैसी संगति मिलती हैं उस अनुरूप उनके गुणों का विकास होता है। ऐसी ही कहानी है 'वसूली', जो बताती है, संस्कार केवल भारत में ही नहीं बसते, अच्छाई - बुराई हर जगह होती है। इसका उदाहरण है सुलभा, विदेश की ज़मीन में रहकर उसमें एक आदर्श बहू के सारे गुण मौजूद है। वह पति की अच्छी सहचरी साबित होती है जबकि भारतीय परिवेश से आई बहू घर वालों का आसरा छीन लेती है। लेखिका स्वयं एक स्त्री हैं और काफी अरसे से विदेश में रह रही हैं। उसी अनुभव से वे विदेशी स्त्रियों के प्रति श्रद्धा का भाव प्रस्तुत करती हैं, जो संकीर्ण सोच के दायरे को तोड़ने में सहायक है। अन्त में बेटे का निर्णय सीख देता है-

"नया घर सिर्फ माँ - बाबा का होगा, उस पर किसी बच्चे का कोई हक़ नहीं होगा। उसके बाद उस घर में वे माँ-बाप रहेंगे जिनके सर पर से छत उनके बच्चे छीन लेते हैं।" नवीन दृष्टिकोण और निर्णय को दर्शाती सुकून देने वाली कहानी।

युवा सदैव गलत नहीं होते और प्रौढ़ सदैव सही नहीं होते। ग़लतियाँ तो मन के भरम से भी हो जाती हैं। और अहसास होता है कि वही एक ग़लती ज़िंदगी का 'एक ग़लत कदम' साबित होती है। दो जेनरेशन के बीच की सोच, जो स्वाभाविक है इसलिए सर्वत्र है। यह सर्वव्यापी समस्या है। वर्षों से विदेश में रह रहे दयानन्द की सोच वही है कि संस्कार तो भारत की भूमि पर ही है, वे हमारी ख़ुशी में बच्चों की ख़ुशी जबकि शकुंतला बच्चों की ख़ुशी में अपनी ख़ुशी तलाशती है, निस्संदेह माँ का स्वाभाविक गुण है। पिता की इसी संकुचित सोच के रहते, बेटे की विदेशी बहु जैनेट को स्वीकार नहीं करते। बेटे से दूरी बना लेते हैं। बेटे की समझाइश-

"बाबूजी ! अपवाद तो देश –विदेश सब जगह होते हैं।" का उन पर कोई असर नहीं होता, इसके साथ ही अपनी सोच को प्रमाणित करने भारत भूमि कानपुर से अपनी अन्य बहुएँ ब्याह कर लाते हैं। मगर अफ़सोस ! उनका यह भ्रम तब टूटता है, जब वे बहुएँ उन्हें वृद्धाश्रम का रास्ता दिखा देती हैं। ऐसे में वही बहु जैनेट और उसके बच्चे,उनके लिए पलक पाँवड़े बिछाए सामने आती है, न केवल जैनेट बल्कि उसके परिवार के लोग भी। जिसे देखकर दयानन्द को अपनी ग़लती का अहसास होता है। जैनेट के संस्कार, कानपुर की बहुओं से कई दर्जा ऊँचे साबित होते हैं। इसके साथ ही वहाँ की कॉलोनी, भव्य अट्टालिकाओं का दर्शन भी जैनेट के माध्यम से लेखिका ने कराया। बहुत प्यारी, जीवन के प्रति आशा जगाती सकारात्मक कहानी।

'ऐसा भी होता है' सुधा जी की अगली कहानी हैं, जो पत्र शैली में एक गंभीर और अलग हटकर समस्या उठाती है।पिनकोड गलत होने पर 11 माह बाद बेटी को पत्र मिला, यह व्यवस्था पाश्चात्य की जिससे सीख लेने की आवश्यकता है। हमारे देश में पिन कोड होने पर भी डाक नहीं मिलती। यद्यपि लेखिका का यह उद्देश्य नहीं है किन्तु फिर भी सहज दृष्टि व्यवस्था को लेकर तुलनात्मक हो गई। समस्या है लिंग भेद को लेकर "बेटों के होते जब बेटियाँ इतना करती हैं तो फिर उन्हें कमतर क्यों आँका जाता है ?" एक गंभीर सवाल है तमाम बेटियों की ओर से। अमूमन देखा जाता है अपनों से दूर विदेश में बैठी बेटी उनके प्यार को तरसती है और अपने केवल उसे अपेक्षा पूर्ति और महत्त्वाकांक्षा के चश्में से देखते हैं, मानों बेटी न होकर कोई कामधेनु हो। माता -पिता के इस दोहरे रवैये को लेकर बरसों से बेटियों के मन में दबी कसक है, जिसे लेखिका ने बहुत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। दुखद है, स्वार्थ का बीज जब माता-पिता के मन में अंकुरित हो जाता है तो वे बेटियों से उगाही पर तुल जाते हैं। यह परिवार के सिक्के का दूसरा पहलू है, कम ही सही मगर इसकी यथार्थता से इंकार नहीं किया जा सकता। मुझे लगा है इसका शीर्षक वसूली अधिक उपयुक्त होता।

एक रोमांचक और कहूँ सस्पेंस युक्त कहानी, 'कॉस्मिक की कस्टडी' जिसके माध्यम से लेखिका ने वृद्धावस्था का एकाकीपन, तनाव, अकेलेपन, को गंभीरता से उकेरा है। यहाँ मैं यह नहीं कहूँगी कि विदेश के वृद्ध, कारण आज हमारे देश में भी यही स्थिति बन गई है। यह कहानी हमारे देश की ही नहीं अपितु सार्वभौमिक समस्या है। बच्चों के पास अपने ही माता-पिता के लिए वक्त नहीं-

"तुम तो हर समय व्यस्त रहते हो, इसका मतलब यह तो नहीं की तुम अपनी ज़िम्मेदारियों से मुँह मोड़ लो। डॉक्टर कहते हैं कि मैं निराशा में जा रही हूँ...मुझे किसी का साथ चाहिए।" यह दर्द है एक माँ का जिसके लिए वह कॉस्मिक की कस्टडी चाहती है। अब यही कॉस्मिक पूरी कहानी में सस्पेंस बना है जिसे लेखिका ने इस तरह प्रस्तुत किया है कि पाठक यही सोच में हैं कि कॉस्मिक उनका पोता है, जिसे वे अपना अकेलापन दूर करने के लिए वापस चाहती हैं। अंतत: वह निकलता है एक कुत्ता।

यह उपहास या आनंद का विषय नहीं है बल्कि चिंतन का प्रश्न है कि इंसान अपना परिवार बसाता है इसलिए कि वह सुख दु:ख में भागीदार होगा। मगर उन्हें अपने सुख –दु:ख एक कुत्ते से साझा करना पड़ रहा है। कथा समाज को एक चिंतन प्रदान करती है।

इस संग्रह में लेखिका ने अलग-अलग विषयों को उठाया है, कहीं मर्म है तो कहीं सीख, कहीं हास्य के साथ वेदना है तो कहीं रहस्य, जो जाने अनजाने रूह के प्रति हमें

आकर्षित करता है।

'यह पत्र उस तक पहुँचा देना', जैनेट के नस्लवादी मेयर पिता की निरंकुशता, राजनीति के छल-छद्म का कच्चा चिट्ठा खोलती है। माना जाता है हमारे देश में जातिवाद दो दिलों के बीच दीवार पैदा करता है किन्तु यहाँ सेंट लुईस में रंगभेद को लेकर एक पिता का हिंसक रूप दिखाई देता है। ऊपर से राजनीति जो कूटनीति से भरी है जिससे कोई जीत नहीं सकता, बेहद मार्मिक कहानी है। राजनीति के प्रभाव से वह विजय और जैनेट के बीच न केवल दीवार बनाता अपितु विजय को ऐसे चक्रव्यूह में फँसाता है कि आख़िर ज़िंदा दिल विजय ज़िंदगी की जंग हार जाता है। जैनेट की बगावत पिता से-

"आई विल मेक श्योर दिस टाइम यू वोंट विन द इलेक्शन।",सत्ता का मोह इंसान को कैसे हिंसक जानवर बना देता है कि अपनी पुत्री की ज़िंदगी से खेल जाता है। उसी स्थान पर आँधी का आना और जैनेट के नाम का पत्र कार की खिड़की से निकल कर हवा में उड़ जाना, एक रहस्य को जन्म देता है, न चाहते हुए भी रूह पर यकीन होने लगता है। पिता का कहीं कोई संवाद नहीं, मगर उसकी उपस्थिति पाठक के ज़हन में ज़बर्दस्त रही।

ऐसे ही प्यार के बीच दीवार और जातिवाद के नाम पर एक और कहानी जिसकी जड़ें भारत की ज़मीन से निकली हैं, 'अँधेरा उजाला'। मनोज पंजाबी, डॉ. इला, मीना। एक निम्न जाति का बेटा जो मनोज पंजाबी के रूप में अपने हुनर के दम पर पहचान पाता है। वह क्योंकर अपने नाम को बदलने पर विवश हुआ ...? यह भी समाज के लिए विचारणीय है। मनोज गायन के क्षेत्र में शीर्ष पर पहुँचा तो लोगों को उसकी सफलता सही नहीं गई और उन्होंने उसके गले पर आघात पहुँचा दिया, हानिकारक पदार्थ के माध्यम से। मगर मनोज, जिसका जीवन उसका गायन था, फिर अपने फैन (डॉ. इला) को दिए वचन की ख़ातिर जान जोखिम में डाल दी। उफ़! ईर्ष्या कितना घिनौना रूप ले सकती है। मगर एक सच्चाई यह भी है कि हुनर कभी मरता नहीं। यूँ भी-

"कोई किसी के शरीर को मार सकता है उसकी रूह और प्रतिभा को नहीं।" मनोज जीवित था अपनी बेटी मीना की आवाज़ में, जिसे बरसों बाद विदेश की ज़मीन पर इला पहचान लेती है। पाठकों को अपने संग देश से प्रदेश तक की यात्रा कराती मज़बूत कहानी है।

प्रेमचंद का कथन स्मरण हो आया, "मेरे देश को आभूषण का रोग न जाने कैसे लगा, जितना धन आभूषण की खरीदी में व्यय होता है उतना यदि रोज़गार में होता तो देश की आर्थिक स्थिति सुधर सकती थी।" बात यद्यपि उन्होंने भारतीय परिवेश को ध्यान में रखकर कही थी मगर स्त्री मनोविज्ञान तो सर्वत्र एक सा ही रहता है न। हाँ तो हम बात कर रहे हैं संग्रह की अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' की। व्यवसाय के रूप में फल फूल रहा है स्टेट एजेंट का बिज़नेस। आज उपभोक्ताओं के पास समय का अभाव है अत: घर / प्रापर्टी की खरीद फरोक्त के लिए उन्हें स्टेट एजेंट की सहायता लेनी होती है। कहानी की स्टेट एजेंट को सलाम है कि ख़तरे को भाँपकर भी वह अपने कस्मटर को ट्रीट करती है ;क्योंकि यह उसका पेशा है। मगर पूरी सावधानी के साथ। पाठक साँस रोके एक बैठक में पूरी कहानी पढ़ जाता है। जिज्ञासा अंत तक बरकरार जो रहती है, क्या हुआ होगा स्टेट एजेंट का, कैसे बच पाई वह शातिरों के जाल से ...?

दूसरी ओर कथा स्त्री के आभूषण प्रियता के साथ उसके हृदय परिवर्तन को बहुत खूबसूरती से उठाती है। "असुरक्षा के दौर में, जहाँ मैटिरियल थिंग्स और पैसे के लिए लोग कुछ भी कर सकते हैं, मन ज़ेवरों से उचाट हो गया।" और उसने वह अद्भुत निर्णय ले लिया। सारे ज़ेवर बेचकर उसका धन समाज में शिक्षा के लिए लगा दिया। ज़ेवरों का सदुपयोग हुआ। यद्यपि व्यावहारिकता में यह कुछ मुश्किल है, फिर भी कहानी सही दिशा देती है, इससे सबक लिया जाना चाहिए।

जहाँ तक मैं सुधा जी को जान पाई हूँ वे इस यथार्थ पर अमल कर रही हैं। यह तो नहीं कहूँगी कि वे इस पात्र का प्रतिनिधि करती हैं मगर शिक्षा के प्रति उनकी उदारता हम सभी जानते हैं कि अपने धन का बड़ा हिस्सा वे समाज को शिक्षित करने में लगाती हैं।

कहानी संग्रह 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' एक प्रतीकात्मक शीर्षक है, वस्तुत: ये वे आँखें हैं जिनमें समाज का आईना हमें दिखाई देता है। सभी कहानियाँ किसी न किसी रूप में मानव मन को चेतना प्रदान करती हैं। इसमें दोनों ही संस्कृति से पाठक रू-ब-रू होता है, उसे दृष्टि मिलती है कि कमियाँ और अच्छाइयाँ दोनों ही जगह पर होती है। हमें सभी संस्कृतियों का सम्मान करना चाहिए।

000

रिश्तों के बदलते मायने और सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ

प्रतिभा सिंह

बदलाव तो समाज की सतत चलने वाली प्रक्रिया है, हर एक निश्चित समय काल के बाद समाज के स्वरूप में कुछ आविष्कार होते हैं कुछ पुरानी चीज़ें लुप्त भी होती है, और इन सभी कारणों से बदलाव का जन्म होता है। दरअसल सामान्य रूप से समझें तो दो समय के मध्य सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का तुलनात्मक अध्ययन ही बदलाव को प्रदर्शित करता है। यह सामान्य प्रक्रिया भले ही हो, परन्तु इसका प्रभाव असामान्य होता है। समाज की सर्वमान्य और सर्वस्वीकार्य समीकरण ही बदल जाते हैं, इसका प्रभाव दैनिक जीवन तक को प्रभावित करता है। पहले रिश्तों में भावनात्मक पक्ष प्रमुख होता था और इसके कारण रिश्ते प्राथमिक सूची में आते थे, और दिल से निभाने की ईमानदार कोशिश की जाती थी। फिर समय बदला और रिश्तों का स्वरूप भी बदलना शुरू हुआ। लोग भावनात्मक होने के बजाय खुद को सामाजिक तौर पर श्रेष्ठ दिखाने के लिए रिश्तों को स्थान देने लगे, हालाँकि भावनात्मक पक्ष कमज़ोर हुआ परन्तु फिर भी रिश्तों को सम्मान मिलता रहा क्योंकि वह सम्मान सामाजिक भय के कारण मजबूरी थी। फिर समाज का और विकास हुआ और समाज के साथ-साथ रिश्तों कि स्थिति में एक बार फिर बदलाव हुआ, अबकी बार लोग सामाजिक भय से रिश्तों को सम्मान देने के मिथक को तोड़ने लगे, क्योंकि अब लोग प्रयोगवादी या

प्रैक्टिकल हो गए थे। अब वे एक सीमा तक ही रिश्तों को स्थान देने लगे। लोगों ने रिश्तों को अपनी व्यक्तिगत जीवन से अलग कर उसे एक नया स्थान दिया और सीमित समर्पण के साथ उसे अपनी प्राथमिक सूची से बिलकुल ही अलग ही कर दिया। रिश्तों को निभाने के लिए भी एक दिन तय कर दिया और उसी दिन सारे रिश्तों को याद कर उनको जीवित रखे जाने कि कोशिश की जाने लगी। मदर्स डे, फादर्स डे, सिस्टर्स डे, इन दिनों बस रिश्तों को औपचारिक तौर पर निभाया जाता है।

रिश्तों में आई दूरी का सबसे बड़ा कारण संयुक्त परिवार का टूटना है। लोग गाँव से शहरों की ओर, अपने देश से दूसरे देशों की ओर पलायन कर रहे हैं वैसे देखें तो रिश्तों के बीच सरहदों की दूरी मायने नहीं रखती फिर भी बदलती जीवन शैली और वक्त के अभाव में रिश्तों की डोर ढीली पड़ती जा रही है। रिश्तों में आई दूरी का एक कारण आज के समय में प्रचलित सोशल साइट्स और इंटरनेट ने ले लिया है। अपने घर में रहते हुए भी लोग इन्हीं में व्यस्त रहते हैं। उन्हें यह जानने की फुरसत नहीं होती कि सामने वाला व्यक्ति हो सकता है कुछ कहना चाहता हो। बढ़ती सामाजिक दूरी ने अपनों को अलग कर दिया है। बच्चों को अपनी नौकरी पेशा ज़िंदगी से इतनी भी फुरसत नहीं है कि वह अपने माँ-बाप का हाल जान सकें, बल्कि उन्हें वृद्धाश्रम का रास्ता दिखा देते हैं। कहीं पर भाई, भाई की ज़मीन- जायदाद हड़पने को तैयार है, भाई बहन के रिश्ते को तार-तार कर रहा है। अकेलापन भी व्यक्ति को तनाव निराशा का शिकार बना रहा है। इसके चलते व्यक्ति आत्महत्या जैसे अपराध की ओर बढ़ रहा है। व्यक्ति यह नहीं समझता कि बिना परिवार और प्रेम के ज़िंदगी अधूरी है। जीवन को सामान्य बनाने के लिए आपसी प्रेम, सौहार्द और समर्पण की भावना होना आवश्यक है। कभी-कभी व्यक्ति द्वारा किया गया एक ग़लत निर्णय परिवार को बिखरा देता है। परिवारों के टूटने, रिश्तों के बिखरने का दोष समाज केवल वर्तमान युवा पीढ़ी को देता है। वह कहता है कि यह तो अब के ज़माने के हैं, यह सारा किया धरा इनके ज़्यादा पढ़ने- लिखने का है या इनके अंदर कोई संस्कार नाम की चीज़ नहीं है। जबकि ऐसा नहीं है हमेशा युवावर्ग ही ग़लत करें यह सही नहीं है। पिछली पीढ़ी के लोग परंपरा के नाम पर जाति, धर्म, रंगभेद, नस्ल भेद, अपना मुल्क, पराया मुल्क आदि का हवाला देकर सिर्फ अपनी बात को मनवाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जैसे हम पचास वर्ष पूर्व थे, वैसे सब कुछ आज भी चलता रहे। जबकि यह संभव नहीं है। समय-समय पर समाज में बदलाव होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। माता-पिता चाहते हैं कि हमारे बच्चे वही करें जो हम कहते जाएँ। यदि बच्चे ने अपने मन से कदम उठाया तो उसे घर-परिवार, ज़मीन- जायदाद के साथ-साथ रिश्ते से भी बेदखल कर दिया जाता है।

आज के समय में भी कुछ लोगों का मानना है कि लड़कियाँ पढ़- लिख कर क्या करेंगी। उन्हें सिर्फ घर के काम करने की सलाह दी जाती है। उन्हें कहा जाता है कि ससुराल जाकर तो चूल्हा- चौका ही करना है तो पढ़ लिख कर क्या होगा। संयोगवश यदि लड़की विवाह के बाद किसी अच्छे घर पहुँच गई जहाँ लोग संपन्न हैं, तो यही परिवार उससे अनेक प्रकार की अपेक्षाएँ करने लगता है। तब वह यह नहीं सोचता कि लड़की को तो हमने पढ़ाया-लिखाया नहीं, नौकरी की इजाज़त नहीं दी तो वह कैसे इन सब की अपेक्षाओं पर खरी उतरेगी। लड़की ने ऐसा करने से इनकार किया तो उस से रिश्ता तोड़ लिया जाता है। हमारा समाज दोगला है वह लड़की- लड़के में जन्म से ही भेद-भाव करता आया है परंतु अपेक्षाएँ बराबर रखता है।

सुधा ओम ढींगरा प्रवासी लेखिका हैं। 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' उनका सातवाँ कहानी संग्रह है। इस संग्रह में कुल आठ कहानियाँ संग्रहित हैं। इस संग्रह की कहानियाँ युवाओं का क़स्बों से महानगरों में पलायन, बुज़ुर्गों की उपेक्षा, महिलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, अकेलेपन से उभरते वृद्ध, पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना-बाना, रिश्तेदारों की संवेदनहीनता, पारिवारिक रिश्तों का विद्रूप चेहरा, समयानुसार बदलते सामाजिक रंग, छुआछूत, जातीयता, सवर्ण मानसिकता, नस्ली भेदभाव, माँ की कोमल भावनाओं इत्यादि बुनियादी सवालों से साक्षात्कार कराती नज़र आती हैं। लेखिका का यह संग्रह आज के समय और समाज के यथार्थ को बखूबी प्रस्तुत करता है। कहानियों के पात्र मानवीय मूल्यों को बचाने की जद्दोजहद करते हैं, और साथ ही करुणा, प्रेम, मानवीय चेतना, परोपकार के वैचारिक अंतर्द्वंद्व के भाँवर में डूबते-उतराते हैं। कहानियों के पात्रों का नाम कथावस्तु के अनुकूल है। सभी पात्र अपनी विशिष्टता के साथ उपस्थित होते हैं। कहानियों के शीर्षक अपने विषय के अनुकूल स्पष्ट, अर्थपूर्ण और प्रतीकात्मक हैं। लेखिका कहानियों के माध्यम से अपने समय और समाज की तमाम तरह की विसंगतियों, विडंबनाओं से पर्दा उठाती चलती हैं। सभी कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। कहानियों के कथ्यों में विविधता है। लेखिका ने भारतीय समाज के यथार्थवादी जीवन, आम आदमी का संघर्ष, स्त्री संवेगों व मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से चित्रण किया है।

इस संग्रह की पहली कहानी 'खिड़कियों से झांकती आँखें' विदेश में रह रहे बुज़ुर्गों के अकेलेपन को, उनके टूटन को दिखाती है। ये ऐसे बुज़ुर्ग हैं जो अपने बच्चों द्वारा छोड़ दिए गए हैं या अपने ही किसी अहम् ने उन्हें उनसे दूर कर दिया। जब ये किसी युवा को देखते हैं तो उनमें अपने बच्चों को खोजने लगते हैं। डॉक्टर मलिक क़स्बे में नए आए हैं और जब से आए हैं तब से अज़ीब सी नज़रें उदास, परेशान, बोझिल, किसी को खोजती पीड़ित आँखें लगातार उनका पीछा कर रही हैं। एक दिन बुज़ुर्ग डॉक्टर रेड्डी दम्पत्ति अपनी व्यथा कथा डॉक्टर मालिक को बताते हैं। मिसेज़ रेड्डी बताती हैं कि अपने संस्कारों में बंधे हम अड़े रहे और वह अपनी ज़िद पर डटा रहा। ऐसे में दूरियाँ इतनी बढ़ गई; जिसका हमें एहसास नहीं हुआ और इस तनातनी में हमने बेटा ही खो दिया। अंत में डॉक्टर रेड्डी कहते हैं- "जीवन की लंबी यात्रा में दिल के रिश्ते ही काम आते हैं, उन्हें सँभाल कर रखना"। इस

कहानी में हम देखते हैं कि कैसे एक दूसरे का अहम् और संस्कारों के बंधन माता - पिता को बेटे से अलग कर देते हैं जिसका पछतावा उन्हें उम्र भर होता है। वो समझ जाते हैं कि हमारे ईगो ने हमारे सबसे प्रिय को हमसे दूर कर दिया लेकिन ये समझने में तो उन्होंने देर कर दी। वक़्त ने उनसे सब कुछ छीन लिया। संग्रह की दूसरी कहानी 'वसूली' है जो अपने शीर्षक को यथार्थ रूप देती है। कैसे परिवार का ही एक सदस्य परिवार के लिए किए गए कर्त्तव्यों की एक दिन वसूली करने लगता है। वह यह भी नहीं सोच पाता कि जिस माँ-बाप ने पूरी ज़िंदगी लगाकर उनकी परवरिश की उन्हीं माँ-बाप को घर से बेदखल कर रहे हैं। लेकिन माँ-बाप के सभी बच्चे एक जैसे नहीं होते एक ऐसा भी है जो उन्हें घर दिलाता है। केवल उनका घर जिसे फिर कोई न छीन सके। अपनों के लिए जो भी किया जाता है वह नि:स्वार्थ होता है, हक के लिए नहीं। लेखिका ने 'एक गलत कदम' कहानी के माध्यम से हमारे समाज के उस सच को उजागर किया है जिसे समाज हमेशा अपने पक्ष में रखता आया है। परंपरावादी समाज मानता है कि केवल उसके जाति धर्म और गोत्र की लड़की ही उनकी परंपरा को आगे बढ़ा सकती है। लेकिन दयानंद की आँखें तब खुलती हैं; जब उनके दोनों छोटे बेटे जिनकी दयानंद ने भारतीय और अपने संस्कार वाली लड़कियों से शादी करवाई थी, वही बेटे- बहू आज उनको वृद्धाश्रम में छोड़ कर चले गए। जिस बेटे को उन्होंने आज से सत्रह साल पहले यह कहकर ठुकरा दिया था कि 'जैनेट(अमेरिकी लड़की) उनके घर की बहू नहीं बन सकती' वही बेटे-बहू आज उनको वापस घर ले जाते हैं और उन्हें पूरे मान सम्मान के साथ अपना लेते हैं।

लेखिका ने स्त्रियों को केंद्र में रखकर भी कहानियाँ लिखी हैं। इस संग्रह की कहानी 'ऐसा भी होता है' एक ऐसी पंजाबी लड़की की कहानी है। जो ब्याह के बाद अमेरिका आती है। माँ बाप को उससे बहुत सारे अपेक्षाएँ होती हैं, जिन्हें वह दस साल तक पूरा करती है। लेकिन एक दिन बोलती है जब पढ़ाना - लिखाना था तब पढ़ाया नहीं और अब आप चाहते हैं कि जो-जो आप कहें मैं करती जाऊँ, लेकिन अब यह नहीं होगा मेरा भी घर परिवार है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने लड़की और लड़के में भेदभाव करने वाले लोगों का लड़की के ससुराल जाने पर स्वार्थी हो जाने और लड़की से भी उतनी अपेक्षाएँ रखने का वर्णन करती हैं। लेखिका ने पात्रों के मनोभावों और उनके अंदर के अंतर्द्वंद्व को बखूबी निभाया है। देश और समाज किसी कलाकार को भी नहीं छोड़ता। वह चाहता है कि कला भी किसी व्यक्ति के अंदर जाति और धर्म देखकर पैदा हो। अगर यह किसी नीची जात के अंदर है तो उसे मार दिया जाता है। ऐसे कलाकार को ज़िंदगी से हाथ धोना पड़ता है या तो गुमनामी के साए में विलुप्त हो जाना पड़ता है। लेकिन समाज यह नहीं जानता कि एक को मारोगे तो दूसरा पैदा हो जाएगा। कोई किसी के शरीर को मार सकता है उसकी प्रतिभा को नहीं। 'अँधेरा - उजाला' एक ऐसे ही लड़के की कहानी है जो अच्छा कलाकार होने के बाद भी समाज और सवर्ण मानसिकता की भेंट चढ़ जाता है।

इस संग्रह की सभी कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है। पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं होती। शिल्प और कथानक की दृष्टि से कहानियाँ बेजोड़ हैं। देश काल एवं वातावरण की दृष्टि से इस संग्रह की कहानियाँ सफल है। लेखिका ने पात्रों के उजड़े जीवन में रंग भरने का भरसक प्रयास किया है। सभी कहानियाँ रोचक हैं जो पाठक को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। सभी पात्रों की भाषा सहज और सरल है। वस्तु चयन में लेखिका ने सामाजिक यथार्थ पर अपनी दृष्टि केंद्रित की है। लेखिका ने इस संग्रह के माध्यम से प्रवासी और भारतीय साहित्य को एक नया आयाम दिया है। लेखिका का प्रवासी होना सभी कहानियों में परिलक्षित होता है, यही कारण है कि उन्होंने विदेशी पात्रों के मनोभावों को भी बखूबी निभाया है।

000

नई पुस्तक

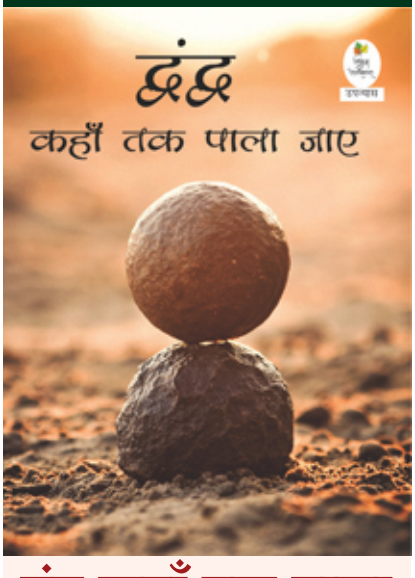

द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए

(उपन्यास)

लेखक : आदित्य श्रीवास्तव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

युवा लेखक आदित्य श्रीवास्तव का पहला उपन्यास 'द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए' के नाम से शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर हाल में ही आया है। आदित्य श्रीवास्तव अपने इस उपन्यास के बारे में कहते है- इस कहानी के सारे पात्र बहुत साधारण हैं। बल्कि यह कहूँ कि आपकी मेरी तरह ही हैं तो कोई ग़लत नहीं होगा। वो इसलिए क्योंकि उन सब किरदारों की भूमिका इस कहानी में वैसी ही है जैसी हम सब की आम ज़िंदगी है। हो सकता है इस कहानी के किरदार आपको अपने आस-पास ही नज़र आ जाएँ। हो सकता है इस कहानी में आपकी भी कोई कहानी छुपी हो। यह भी हो सकता है कि इसमें जो भी जैसा भी घटा है वो कुछ-कुछ आपके जीवन में भी घटा हो। जिस तरह मोहब्बत किसी उम्र की मोहताज नहीं होती ठीक उसी तरह यह कहानी भी किसी उम्र वर्ग के लिए सीमित नहीं है। यह आपकी ख़ुद की कहानी हो या इस कहानी के किसी पात्र की भूमिका में आप ख़ुद कभी रहे हों।

000

पुस्तक समीक्षा

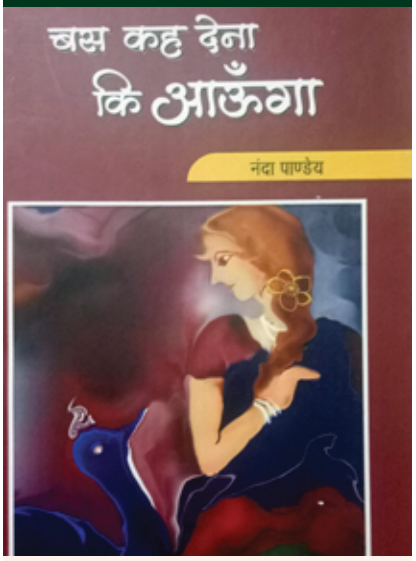

बस कह देना कि आऊँगा

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : नंदा पाण्डेय

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला- हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल - 09931117537
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

'बस कह देना कि आऊँगा' नंदा पाण्डेय का पहला कविता-संग्रह है जिसमें कवयित्री की पचपन कविताएँ शामिल हैं। ये कविताएँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इन कविताओं में कवयित्री की तड़प, बेचैनी और बेताबी का बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है। कवयित्री अपने प्रिय की आस में पूरी ज़िंदगी गुज़ार देने को तैयार है, बशर्ते उसका प्रिय यह कह कर जाए कि मैं आऊँगा।

कवयित्री नंदा पाण्डेय ने अपनी कविताओं के बारे में 'अपनी बात' में स्वीकार किया है कि "पतझड़ में पत्तों का गिरना, अंधेरी रात में परछाइयों का गहराना, परिंदे का घरौंदा बनाना और घरौंदे का अपने आप बिखर जाना....ऐसी कितनी ही बातें बहा ले जाती हैं मुझे, हवा के झोंकों की तरह और मेरी विस्फारित आँखें वीरान कोनों में अर्थ खोजने लगती हैं। एक सजलता जो भीतर मेरे पलती है, उसके साथ गहरा रिश्ता है मेरा और जिसने मेरे लेखन को बहुत प्रभावित किया है। मेरे संवेदनशील होने का लाभ मेरी कविताओं को मिला है।"

कवयित्री नंदा पाण्डेय की कविताओं के बारे में हरेराम त्रिपाठी 'चेतन' ने लिखा है कि"बस कह देना कि आऊँगा' में संकलित कविताएँ एकांत की रचनात्मक तृप्ति हैं - सघन एकांत का वैभव। कवयित्री नंदा पाण्डेय इन कविताओं के द्वारा अपने प्रिय की अनुपस्थिति का स्पंदन अनुभव करती हैं,उसका विस्थापन नहीं होने देतीं। कवयित्री ने अकल्पनीय कल्पना- युक्तियों एवं कथन-भंगिमाओं से राग-चेतन की लीक निर्मित की है। उसकी विम्बधर्मी बेचैन भाषा का प्रक्षेप भी सम्मोहक और बेधक बन पड़ा है। इनमें आकांक्षय संज्ञा की उपस्थिति-अनुपस्थिति प्रत्येक कविताओं में मिल जाती है- सामासिक चिह्न के मानिंद।"

'बस कह देना कि आऊँगा' कविता-संग्रह के माध्यम से कवयित्री नंदा पाण्डेय ने प्रेम को विभिन्न कोणों से अनुभूत करने की कोशिश की है। कवयित्री का मानना है कि प्रेम के बिना जीवन निरर्थक है। प्रेम की सिर्फ आस मात्र से जीवन सार्थक बन सकता है। पूरे संग्रह में 'बस कह देना कि आऊँगा' की अनुगूँज ध्वनित हो रही है। आने की आस मात्र से कवयित्री अपने अंदर नए दिव्य-लोक का अनुभव करने लगती हैं। यही कवियत्री की चाह भी है और कामना भी। 'बस कह देना कि आऊँगा' कविता के माध्यम से कवियत्री ने अपने प्रिय से प्रेम भरे मनुहार करती है कि तुम कभी रूठकर चले जाते हो, कभी यह कह कर जाते हो कि तुरंत ही आ जाऊँगा,कभी विलंब की तिथि सुना कर चले जाते हो। लेकिन मैं तो समभाव से तुम्हारा इंतज़ार ही करती रहती हूँ। क्या तुम्हें मुझमें कोई परिवर्तन नज़र आता है? नहीं न! तो फिर इतना ही कह देना 'कि मैं आऊँगा'। इसी के सहारे मैं वर्षों इंतज़ार कर सकती हूँ। कवयित्री लिखती भी हैं–

"पर क्या मुझमें कोई
परिवर्तन दिखता है तुम्हें
मैं तो बस एक समभाव से

तुम्हारा इंतज़ार करती रहती हूँ
तुम आओ न आओ
बस कह देना कि आऊँगा..!"

'कुछ कहना चाहती थी वो' कविता के माध्यम से कवियत्री ने अनकही बातों की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। इसमें 'वो' कुछ कहना चाहती थी, पर कह नहीं पाती थी। वह इसे करीने से सजा कर पुन: कहने के लिए सँजो लेती है जिसे उसने गुज़रे हुए समय में अहसास किया था। इसे वह अपनी यादों के सहारे अभिव्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाती है। कवियत्री ने लिखा है–

"कुछ' कहना चाहती थी वो
पर न जाने क्यों...
'कुछ' कहने की कोशिश में
'बहुत-कुछ' छूट जाता था, उसका...
हर रोज़ करीने से सजाने बैठती
उन यादों से भरी टोकरी को
जिसमें भरे पड़े थे
उसके बीते लम्हों के कुछ रंग-बिरंगे अहसास,
कुछ यादें, कुछ वादे और भी बहुत कुछ....."

'हाँ ! सिर्फ मेरे लिए' कविता के माध्यम से कवियत्री एक ऐसे सूरज की कामना करती है, जो सच के सूरज की तरह ढले नहीं, बल्कि वह सूरज मेरी ज़िंदगी के अंतिम समय तक सिर्फ मेरे लिए ही दहकता रहे। कवियत्री की कामना है कि जीवन की खुशहाली के लिए सुहाग का बना रहना जरूरी है, तभी जीवन सार्थक और रम्य बना रहेगा। कवियत्री ने लिखा है कि–

"और तलाशती हूँ
अपने लिए
एक ऐसा सूरज
जो सिर्फ मेरा हो
जिसका उदय हो सिर्फ मेरे लिए और
जिसके प्रकाश पर
सिर्फ और सिर्फ मेरा
अधिकार हो
जो सच के सूरज की तरह
कभी भी ढले नहीं"

'एक मुलाकात मौत से' कविता के माध्यम से कवियत्री मौत से साक्षात्कार करना चाहती है। वह मौत की अनुभूतियों का अहसास करके अपने प्रिय से गुज़ारिश करती है कि मेरी मौत के बाद मेरी कविता वाली डायरी, गिले-शिकवे, रोना-धोना आदि सब कुछ मेरी जलती हुई चिता में डाल देना। उसे मैं अपने साथ लेकर चली जाऊँगी। फिर लंबी शांति के बाद पुन: तुम्हारे पास ही लौटना चाहूँगी। लेकिन इस बार तुम मेरे अतीत के बारे में मत पूछना। वैसे भी तुम्हारी बातों का असर मेरे तन पर नहीं, मन पर होता है। कवियत्री लिखती हैं–

"इत्मीनान से एक मुलाकात
मौत से करना चाहती हूँ
छू कर देखना चाहती हूँ
अपनी चिता को
सूँघना चाहती हूँ उस गंध को
जो जलते हुए शरीर से निकलती है"

'तुम ही हो खुदा' कविता के माध्यम से कवियत्री अपने प्रिय को भुलाने की लाख कोशिश करती है, पर उसे भुला नहीं पा रही है। वह कहती है कि आज तक मैंने जो कुछ भी लिखा, वह सब कुछ तुम्हारे लिए ही लिखा। मैं तो अपने को भी नहीं समझ पायी। बस यही महसूस करती रही कि तुम ही मेरे ख़ुदा हो। इसे इस प्रकार देखा जाए–

"मुद्दत हुई न भुलाया गया
तुम्हारा चेहरा
क्या करूँ मन को
बेखुदी में जो कुछ भी लिखा
आज तक मैंने
बा-सबब
वास्ता तुमसे ही है
क्या पता है तुमको...?
खुद भी न कभी
खुद को सही समझा,
लगा बस तुम ही हो ख़ुदा!"

'अल्हड़ लड़कियाँ' कविता के माध्यम से कवयित्री ने लड़कियों के अल्हड़पन में किए गए कार्य-व्यापार का बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है। ये लड़कियाँ बिना किसी चीज़ की मोहताज हुए कविता-सृजन की प्रक्रिया से गुज़र जाती हैं। फिर भी ये लड़कियाँ खारे पानी की दो-चार बूँदें बचाकर रख लेती हैं, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह नई कविताएँ सृजित कर सकें। कवियत्री ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है –

"अल्हड़ लड़कियाँ
जाती बरसात में खारे पानी की
दो-चार बूँदें
बचाकर रख लेती हैं
फिर से भीग कर
कविताएँ लिखने के लिए।"

'तुम आना' कविता के माध्यम से कवियत्री अपने प्रिय को आने के लिए कहती है। वह भी तब, जब उसकी वेदना अधरों तक आकर रुक जाए, कुछ कह न पाए। इसके एवज में सिर्फ और सिर्फ आँखों से आँसू की धारा बह चले, तुम आना, भले ही मत आना, लेकिन इतना जरूर कह देना कि मैं आऊँगा। इसी आस में मैं पूरी ज़िंदगी गुज़ार लूँगी। कवियत्री लिखती हैं –

"तुम आना,
जब वेदना मेरी
अधरों तक आकर
रुक जाए पर
कुछ कह न पाए
युगों-युगों से
स्निग्ध उर-तल
बन जाये यमुना
तुम आना..."

'बस कह देना कि आऊँगा' कविता-संग्रह के माध्यम से कवियत्री नंदा पाण्डेय ने एक स्त्री की पीड़ा, वेदना, सोच, प्रेम, मिलन की तड़प, उम्मीद, आदि भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति करने में पूरी तरह सफल हुई हैं। ये कविताएँ पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में पूरी तरह सक्षम हैं। कहीं पर भी पाठकों को ऊब नहीं महसूस होगी। इसमें एक गति है, लय है, प्रवाह है और अपने साथ बहा ले जाने की शक्ति भी है।

पुस्तक की छपाई साफ-सुथरी है और प्रूफ की ग़लतियाँ नहीं हैं। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि यह संग्रह बहुत ही पठनीय बन पड़ा है।

000

पुस्तक समीक्षा

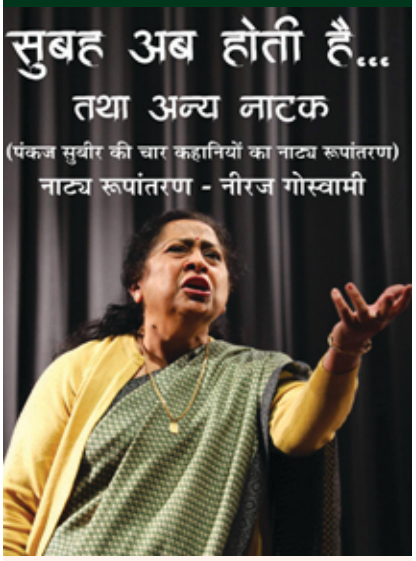

सुबह अब होती है तथा अन्य नाटक

(नाटक संग्रह)

समीक्षक : मधूलिका श्रीवास्तव

रूपांतरण : नीरज गोस्वामी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

मधूलिका श्रीवास्तव
E -101/17
शिवाजी नगर,
भोपाल 462016
मोबाइल-9425007686
ईमल– shrivastavmadhulika@gmail.com

पंकज सुबीर की चार कहानियों का नाट्य रूपान्तरण नीरज गोस्वामी ने किया है। कहानियों का नाट्य रूपांतरण करना यूँ भी कठिन होता है क्योंकि कहानी की आत्मा को जीवित रखना और चरित्रों को पात्रों में ढालना कठिन होता है मगर नीरज गोस्वामी ने यह किया है यह साहित्य जगत् की उपलब्धि है।

"सुबह अब होती है" के प्रारंभ थाने में पहुँचा हत्या का एक गुमनाम पत्र है जिसके सहारे पूरा नाटक तैयार हुआ है। थानेदार अपने अधीनस्थों के साथ नौजवान आई.पी.एस.ऑफ़िसर समर जो प्रोबेशन में हैं की खिल्ली उड़ाते हुए अपनी शेखी बघारता है और जिस प्रकार अधीनस्थ चापलूसी करते हैं वह हमारी प्रशासन व्यवस्था पर कटाक्ष है। गुमनाम पत्र की जाँच में जो तानाबाना बुना गया है वह हर क्षण जिज्ञासा पैदा करता है। नाटक में प्रशासनिक व्यवस्था में वरिष्ठ व कनिष्ठ के संघर्ष का चित्रण भी सजीव है।

समर हत्या के गुमनाम पत्र की जाँच के दौरान बुज़ुर्ग महिला से मिलता है। परिवार में महिलाओं की हैसियत को उजागर करते हुये जब महिला अपने पति से कहती है कि "सारी सोसाइटी से झगड़ा, ट्रेन में झगड़ा, घर वालों से झगड़ा, अख़बार वालों से झगड़ा, बेटियों से झगड़ा, रिश्तेदारों से झगड़ा, कौन है जिससे आप का झगड़ा नहीं ?" बस वह डर से अपना ही नाम नहीं लेती। लेखक पात्र के माध्यम से परिवार में लोगों के व्यवहार की भी लक्ष्मण रेखा खींचता है जब वह महिला समर से यह कहती है कि" दर असल हमें पता ही नहीं चलता कब हम अपने साथ जी रहे लोगों को किस प्रकार और कितना इरिटेट कर रहे हैं हम तो बस अपनी व्यवस्था के आग़ोश में डूबे होते हैं और पता ही नहीं चलता कि हम कब डिक्टेटर बन गए। सनक पहले आदत में बदलती है और फिर उसके बाद वहशी जूनून हो जाती है।" नाटक के अन्त में ही हत्या और हत्यारे का रहस्य सुलझ पाता है जो सशक्त लेखन से ही सम्भव है फलस्वरूप अन्त तक उत्सुकता बनी रहती है।

इसी प्रकार " औरतों की दुनिया " में माँ का अपने बेटे रूपेश से यह कहना कि " बेटा घर तभी घर कहलाता है जब घर के सारे सुर एक हों बेसुरे सुर वाला घर, घर नहीं सराय होता है।" यह कथानक नौजवान बेटे द्वारा अपने चाचा पर ज़मीन को लेकर चल रहे कोर्ट केस से जुड़ा हुआ है और माँ की यह समझाइश परिवारों में होने वाली टूट में महिलाओं की सोच को इंगित करती है। अंत में जब इस समस्या का निदान होता है उस समय चाची का यह कहना कि " तुमने औरतों की दुनिया में झाँकना सीख लिया है।" लेखक द्वारा यह संदेश देने की कोशिश है कि पुरुष को घर की समस्याओं को महिलाओं की निगाह से भी ज़रूर देखना चाहिए जिससे सही हल निकल

सके। लेखक परिवार में होने वाले विघटन और उसके समाधान पर अपना संदेश देने में बहुत कुछ सफल हुआ है।

"कसाब. गांधी @ यरवदा डॉट. इन" का नाट्य रूपांतरण करते हुए गांधी जी व कसाब को चित्रित किया है। गांधी जी यवरदा जेल में बंद मुम्बई अटैक के पाकिस्तानी अपराधी कसाब को जब अपनी बात कहते हैं तो क़ैदी उनसे बात करते हुए बड़बड़ाता है तब जेल प्रहरी को लगता है कि वह मानिसक रूप से विक्षिप्त हो गया है। भारत की आज़ादी के समय किए गए वायदों पर कटाक्ष करते हुए जब कसाब यह कहता है कि "आपके देश की आज़ादी को भी देखा है जिसमें एक आदमी अपनी पत्नी को पाँच हज़ार करोड़ का मकान तोहफे में देता है यह तो ज़मीन-आसमान के अंतर जैसा है, अमीर और ग़रीब के बीच खाई जैसा नहीं", ऐसा कहकर लेखक देश की आज़ादी की पोल खोलता है जिसमें आज़ादी के दौरान अमीर-ग़रीब के अन्तर को पाटने के सब्ज़बाग़ दिखाए गए थे। लेखक का यह कहना कि अन्तर ज़मीन-आसमान का है जिसका मतलब साफ़ है कि यह अन्तर कभी भी ख़त्म नहीं हो सकता। कसाब यह भी कहता है कि यही हाल कमोबेश उसके मुल्क का भी है।

नाटक में जिस प्रकार दो पात्रों के बीच तर्क होते हैं उससे दोनों मुल्कों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति की कमियाँ उजागर करने की कोशिश की गई है।

फाँसी के पहले जेलर का यह कहना कि "अंतिम इच्छा पूछना हमारा काम है मानना नहीं," हमारी जेल व्यवस्था पर कड़ी चोट है।

''चौथमल और पूस की रात'' की कहानी पर बने नाटक का मुख्य चरित्र बहुत विनम्र और पेशे से शिक्षक है। यह गाँव में लम्बे समय से पदस्थ है पर रहता अकेला ही है। गाँव के लोग आदर व व्यवहार के कारण मास्टर जी के घर रोज़मर्रा का कुछ ना कुछ सामान पहुँचाते ही रहते है। घर से दूर रहने के कारण रसिक चौथमल महिलाओं के लिए 'वग़ैरह' शब्द का प्रतीकात्मक रूप उपयोग करते हैं इसलिए इसी शब्द को प्रतीक बनाकर महिला के सत्संग को चित्रित किया गया है। नाटक में होता यूँ है कि गाँव का एक परिवार गुड़ बनाता है और वह गुड़ मास्टर को देना चाहता था, मगर अचानक मुखिया को गाँव से बाहर जाना पड़ता है और शाम को बारिश की संभावना दिखती है तो घर में कोई पुरुष न होने के कारण मुखिया की पत्नी, मास्टर के पास मदद के लिए आती है बस यहीं से मास्टर जी के दिल में 'वग़ैरह' के सत्संग की लालसा उठती है। मास्टर जी मुखिया की पत्नी के साथ रात भर खेत से गुड़ को घर तक पहुँचाने में लगे रहते हैं। इस कोशिश में मास्टर के मन में लगातार यह विचार आते है कि सुबह होने से पहले पूरा गुड़ घर पहुँचाए, जिस से रात का फ़ायदा सत्संग के लिए उठा सके, मगर गुड़ ढोते-ढोते सुबह हो जाती है और पूस की रात ख़त्म हो जाती है। मास्टर जी की 'वग़ैरह' के साथ सत्संग की लालसा पौ फटते ही ख़त्म हो जाती है। लेखक ने कहानी को नाट्य रूपांतरण में बहुत ही अच्छे ढंग से चित्रित किया है। नाट्य रूपांतरण में भाषा का ध्यान रखते हुये व्यवस्था और समाज की कमियों पर कटाक्ष किए हैं जो कि प्रभावशाली हैं मगर लंबे डायलॉग शायद चित्रण के समय उतने प्रभावशाली नहीं लगें।

लेखक ने नाट्य रूपान्तरण करते समय यह कोशिश की है चरित्र अपनी बात कहें और विशेष रूप से महिलाएँ, क्योंकि विशेष फ़ोकस महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर है। मैं सोचती हूँ कि इस विषय पर अभी और भी सटीक लेखन की ज़रूरत है।

नीरज गोस्वामी की भाषा और शैली दोनों ही प्रभावशाली हैं तथा उन्होंने पंकज सुबीर की कहानियों को नाटक में बदल कर आम लोगों तक सामाजिक व आर्थिक विसंगतियों को पहुँचाने का प्रयास किया है।

नाटक में सरल भाषा का उपयोग होने से वे दर्शकों को बाँध रखने में सक्षम होंगे।

बहुत अच्छी कहानियों के बहुत बढ़िया नाट्य रूपांतरण के लिए नीरज गोस्वामी बधाई के पात्र हैं।

000

नई पुस्तक

भूरी आँखें घुँघराले बाल

(कहानी संग्रह)

लेखक : अनुपमा तिवाड़ी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

अनुपमा तिवाड़ी का यह कहानी संकलन अभी हाल में ही शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। संग्रह के बारे में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सत्यनारायण कहते हैं- ऊपरी तौर पर ये हारे हुए पात्र लग सकते हैं लेकिन इनके भीतर एक बेचैनी, एक छटपटाहट भी बराबर है, अपने खोल से बाहर आने की। जो कुछ गलत है उसके खिलाफ खड़े होने की। खास बात यह है कि यहाँ स्त्रियाँ अपने विविध रूपों में मौजूद हैं। यथास्थिति के खिलाफ परिवर्तन के लिए छटपटाती, संघर्ष करती स्त्रियाँ यहाँ अधिकांश कहानियों में देखी जा सकती हैं। थोड़ा बहुत खलता है तो यही कि कुछ कहानियों में लेखिका ने इन्हें अकेला छोड़ दिया है वे उजास की उस लकीर की तरफ इंगित कर सकती थीं जो तमाम अँधेरों के बावजूद अभी भी बची हुई है। यह सारी कहानियाँ वंचितों के पक्ष में हैं। उनके साथ रहने के विचार से लिखी गई हैं।

000

केंद्र में पुस्तक

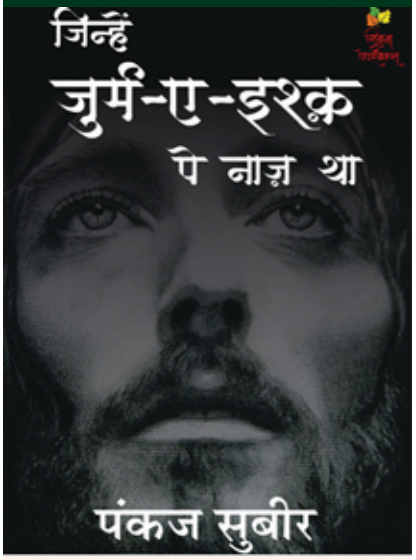

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

(उपन्यास)

समीक्षक : गोविंद सेन, सूर्यकांत नागर, तरसेम गुजराल

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

गोविंद सेन
193, राधारमण कालोनी, मनावर-
454446, जिला-धार, मप्र
मोब: 9893010439

सूर्यकांत नागर
81 , बैराठी कालोनी नं.2 , इन्दौर, (म.प्र.)
मोबाइल- 098938-10050

तरसेम गुजराल,
444-ए, राजा गार्डन, डाक खाना, बस्ती
बावा खेल, जालन्धर, 144021,
मोबाइल- 9463632855

धर्म से जुड़े ज्वलंत सवालों की साहसिक, सटीक, संतुलित और दिलचस्प पड़ताल
गोविंद सेन

जिन्हें जुर्मे-ए-इश्क़ पे नाज था बहुमुखी प्रतिभा के धनी बहुचर्चित कथाकार-उपन्यासकार पंकज सुबीर का नवीनतम विचारोत्तेजक उपन्यास है। यह उपन्यास धर्म से जुड़े हुए ज्वलंत सवालों की निर्भीक, निर्मम, तार्किक, विस्तृत, तथ्यपरक, सीधी, संतुलित और सटीक पड़ताल करता है। उपन्यास में दुनिया के प्रमुख धर्मों के मूल तत्वों, उनके आपसी संबंधों और अनेक अल्पज्ञात तथ्यों को पाठकों के सामने एक रोचक संवाद और चर्चाओं के जरिए रखा गया है। इतिहास गवाह है कि मानव की सारी प्रगति और समूचा विकास धर्म के सवाल पर ठहर-सा जाता है। दुनिया के इतिहास में ऐसा कोई धर्म नहीं आया जो गतिशील हो। विज्ञान की तरह खुद को बदलता रहा हो। लगता है कि हम हज़ारों बरसों से एक ही जगह पर कदमताल कर रहे हैं। वहाँ से तिल भर भी आगे नहीं बढ़े हैं। हमारा अंधत्व आज भी कायम है। धर्म आदमी को लहूलुहान करता रहा है।

भगतसिंह ने कहा था-" मनुष्य को सबसे ज़्यादा नुकसान धर्म ने ही पहुँचाया है।" यह कथन एक कड़वी सच्चाई है। मानव सभ्यता के पिछले पाँच हज़ार के इतिहास में अनेक धर्मों ने जन्म लिया है। एक धर्म की कोख से दूसरा धर्म पैदा होता है। जब नया धर्म पैदा होता है, पुराना धर्म उसका विरोध करता है, उसे समाप्त करने की कोशिश करता है। हत्याएँ करता है। हिंसा की मनाही हर धर्म के मूल में है पर अब तक धर्म के नाम पर आदमी का खून बेहिसाब बहाया जा चुका है। हिटलर और नाजियों ने मिलकर 60 से 80 लाख यहूदियों को मारा। भारत और पाकिस्तान के विभाजन के दौरान 20 लाख से अधिक लोग मारे गए। यह सिलसिला अभी भी थमा नहीं है और आगे भी इसके थमने के आसार नज़र नहीं आते। धर्म ने आदमी और आदमी के बीच ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी कर दी हैं। हिन्दू धर्म से ही जैन और बौद्ध धर्म का जन्म मूर्ति पूजा और आडंबरों के विरोध में हुआ था पर आज दोनों ही धर्म हिन्दू धर्म से अधिक मूर्ति पूजक बन गए हैं और आडंबर करने में लग गए हैं। यहाँ धर्म की भूमिका के संबंध में मुझे दुष्यंत कुमार का यह शेर याद आता है-

आप दीवार गिराने के लिए आए थे
आप दीवार उठाने लगे, ये हद है।

उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर और शाहनवाज़ हैं। पूरा उपन्यास का ताना-बना इन्हीं दो

चरित्रों के इर्दगिर्द कुशलता से बुना गया है। कहानी के अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र शमीम, कलेक्टर वरुण कुमार, पुलिस अधिकारी विनोद सिंह, भारत यादव, सलीम, सलामुद्दीन विकास आदि हैं। उपन्यास की उपकथा में भी कुछ ऐसे गौण पात्र भी हैं जो याद रह जाते हैं जैसे साध्वी, किरण और उसका पति। एक अलग प्रविधि का प्रयोग कर ऐतिहासिक पात्र नाथूराम विनायक गोडसे, मोहम्मद अली जिन्ना और मोहनदास गांधी से भी मोबाइल से कॉल कर संवाद किया जाता है। वे खुद से संबंधित विवाद पर अपना पक्ष रखते हैं जिससे इतिहास के अनेक अज्ञात तथ्यों का खुलासा होता है।

रामेश्वर का चरित्र अद्‌भुत है। वह एक कोचिंग इंस्टीट्यूट चलाता है। उसका दिमाग़ खुला है। वह किसी धर्म विशेष का बंदी नहीं है। वह साहित्यिकी अभिरुचि का पुस्तक प्रेमी व्यक्ति है। ज्ञान और तर्क ही उसकी ताक़त है। वह मानवता का पक्षधर है। वह संवेदनशील है। हर चीज़ को वह तर्क की कसौटी पर कसता है। धर्म की बजाय वह मानवीय रिश्तों को तरजीह देता है। वह इतना साहसी है कि हिन्दू के सामने ही वह हिंदुओं की और मुसलमान के सामने मुसलमानों की कमियाँ भी गिना देता है। मकसद यही होता है कि दोनों ही धर्म के लोग एक साफ नज़रिए से चीज़ों को देखें और उनमें सद्‌भाव पैदा हो। वह हर धर्म के पाखंड का पर्दाफ़ाश करने से नहीं चूकता। वह हिन्दू है पर अपने मुसलमान दोस्त शमीम के बेटे शाहनवाज़ को अपना बेटा बना लेता है। शाहनवाज़ के लिए रामेश्वर उसके पिता का मित्र नहीं बल्कि एक हिन्दू था। शाहनवाज़ के मन में बैठे इस अविश्वास और कट्टरता को वह दूर कर देता है। उसकी धर्म संबंधी दृष्टि को साफ़ करता है। धीरे-धीरे उसका पूर्वाग्रह ख़ात्म हो जाता है। रामेश्वर अपने कोचिंग इंस्टीट्यूट का काम उसके भरोसे पर छोड़ देता है। दोनों के बीच एक अटूट विश्वास और आत्मीयता पैदा हो जाती है। रामेश्वर शाहनवाज़ की मुश्किल को अपनी मुश्किल मानकर केवल चिंता ही व्यक्त नहीं करता बल्कि एक पिता की तरह उसकी भरपूर मदद करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। समय आने पर जान जोखिम में डालकर भी परिवार के सदस्य की तरह उसकी मदद भी करता है। हिन्दू धर्म के कट्टरपंथी युवा विनय जैसे लोग इसके लिए उसकी आलोचना भी करते हैं। हिन्दू होते हुए भी एक मियाँ के लड़के को सिर पर चढ़ाने के लिए उसे लताड़ा भी जाता है। यदि बेटा ही बनाना था तो वह किसी 'अपने वाले' को बनाता। शाहनवाज़ का नाना सलामुद्दीन रामेश्वर पर तोहमत लगाता है कि वह उसके नवासे को दीन के रास्ते से भटका रहा है। यानी हिन्दू और मुसलमान दोनों उससे खफ़ा हैं। पर रामेश्वर इसकी परवाह नहीं करता। वह उन्हें माकूल जवाब भी देता है पर अपनी इंसानियत और संतुलन नहीं खोता।

पूरे उपन्यास का कथानक एक दंगे के इर्द-गिर्द घूमता है। यह दंगा क़स्बे की पुरानी बस्ती और नई मुस्लिम बस्ती ख़ैरपुर के बीच घटित होता है। रामेश्वर, पुलिस और प्रशासन का पूरा संघर्ष और चिंता दंगाइयों से ख़ैरपुर को बचाना और शाहनवाज़ की प्रसव पीड़ा से जूझती पत्नी हिना को प्रसव के लिए अस्पताल तक सुरक्षित पहुँचाना था। दंगे की पूरी प्रक्रिया को उपन्यास में बखूबी उजागर किया गया है। इस दंगे का हर दृश्य बहुत सजीव है। पाठक को लगता है कि वह उस तनावपूर्ण माहौल के बीच ही खुद खड़ा है। क़स्बे और ख़ैरपुर के भूगोल का वर्णन-विवरण अत्यंत सूक्ष्मता से किया गया है। मन में उठाने वाले मनोभावों को भी कुशलता से दर्ज किया गया है।

दंगे होते नहीं बल्कि करवाए जाते हैं। दंगे निजी हितों के कारण करवाए जाते हैं। नब्बे के दशक के शुरूआत के किसी साल में बस्ती में पहला दंगा हुआ था। क़स्बे से करीब एक किलोमीटर दूर नई मुस्लिम बस्ती ख़ैरपुर इसी दंगे की पैदाइश थी। यह दंगा रामनवमी के जुलूस के दौरान एक मुस्लिम पान वाले को हिंदुओं के द्वारा पीट दिए जाने के कारण हुआ था। वह जुलूस राम का न होकर जन्मभूमि का था। उसके बाद पुरानी हिन्दूबहुल बस्ती में रहने वाले मुस्लिमों ने अपने मकान बेचकर छोटी-सी नई मुस्लिम बस्ती खैरपुर बना ली थी। रामेश्वर का दोस्त शमीम भी उस कस्बे से अपना मकान बेचकर खैरपुर में बस गया था। यह बस्ती कट्टर विचारों की पोषक थी।

हर दंगे के पीछे धर्म नहीं होता किसी न किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ होता है। दंगे को बाद में धर्म का रंग दे दिया जाता है। दंगे का असली कारण दब जाता है। कस्बे का दूसरा दंगा धार्मिक संगठन के नेता, धनी और ऐयाश किस्म के आदमी दिनेश खत्री ने करवाया था। उसकी पत्नी के संबंध उसके चौकीदार बनवारी से हो गए थे। दिनेश खत्री ने उसका कत्ल करवा दिया। उसका क़स्बे के दमदार आदमी नवाब खान से झगड़ा था। इसीलिए उसने बनवारी के कत्ल का इल्ज़ाम मुसलमानों पर लगा दिया। शातिर दिनेश खत्री ने बनवारी के समाज के लोगों को भड़का दिया कि तुम्हारे समाज के लड़कों को मुसलमानों ने बकरे की तरह काट दिया है। तुम्हें इसका बदला लेना चाहिए। वह खुद सामने नहीं आ सकता पर पीछे से तुम्हारा साथ दूँगा। अगले ही दिन कुछ लोगों को चुपचाप पैसे देकर क़स्बे के प्रमुख मंदिरों में सेप्टिक टैंक की गंदगी फैला दी गई और क़स्बे की प्रमुख मस्जिद में मरा हुआ सूअर डाल दिया गया। इस तरह शातिर दिनेश खत्री ने कस्बे में हिन्दू-मुस्लिम दंगा करवा दिया।

कस्बे में जो तीसरा दंगा हुआ था, उसके पीछे देह का मामला न होकर प्रेम का मामला था। क़स्बे के एक प्रतिष्ठित व्यवसायी परिवार की हिन्दू लड़की का प्रेम एक मुस्लिम लड़के से हो जाता है। लड़की के भाई ने अपने कुछ दोस्तों को उकसाकर उस मुस्लिम लड़के की हत्या कर दी। इस घटना से क़स्बे में दंगा हो गया। दरअसल दो लोगों के बीच में दंगा होना था लेकिन उसको बहुत चतुराई से दो धर्मों के बीच का दंगा बना दिया गया। धर्म की अफीम चटाकर किसी भी को भी अपने हित के लिए गुमराह किया जा सकता है। उसके बाद उसकी सोच-विचार करने की शक्ति खत्म हो जाती है।

कुछ अवसरवादी और स्वार्थी लोग ऐसे भी होते हैं जो दंगे का फायदा उठाते हुए अपने वाहनों को जलवा देते हैं ताकि उन्हें बीमा और

मुआवजा दोनों मिल जाए। पर वे नहीं समझते हैं कि इसके कारण दो धर्मों के लोगों के बीच कितनी नफ़रत, ग़लतफहमी और दहशत पैदा होगी। जलते वाहनों के सोशल मीडिया पर वायरल होने से दंगे की आग और भड़कती है। इस कृत्य से सलीम जैसे ग़रीब परिवार में दहशत तो फैलती ही है, उनके सामने रोज़ी-रोटी के संकट के साथ जान का जोखिम भी पैदा हो जाता है। दंगे में अक्सर ग़रीब-गुरबे ही मारे जाते हैं। उनका जीना दूभर हो जाता है।

जो दंगा उपन्यास के केंद्र में है वह सरकारी ज़मीन पर कब्ज़ा करने की नीयत से पैदा हुआ था। क़ब्रिस्तान के पास की सरकारी जमीन पर हनुमान मंदिर बना दिया गया है। मंगलवार की शाम को डीजे की तेज़ आवाज़ में लड़के नाचने लगे। ख़ैरपुर के बुज़ुर्गों द्वारा समझाया गया पर लड़के नहीं माने। उनके साथ बदतमीज़ी की गई। इस पर ख़ैरपुर के लड़कों ने डीजे फोड़ कर उनकी पिटाई भी कर दी। पिटे हुए लड़के लौट कर आए और उन्होंने दंगा करवा दिया। नारेबाज़ी, पथराव और आगजनी शुरू हो गई। भीड़ ख़ैरपुर में घुसकर मारकाट करना चाहती थी। पुलिस और प्रशासन उन्हें रोकने की कोशिश में लगे रहे। शाहनवाज़ की पत्नी हिना को प्रसव पीड़ा हो रही थी। उसे अस्पताल पहुँचाना था पर बेकाबू दंगाई भीड़ के कारण यह संभव नहीं था। अंत में रामेश्वर, वरुण कुमार, विनोद सिंह, भारत यादव, विकास आदि की मदद से हिना को देर रात में अस्पताल में पहुँचाया जाता है। सुबह होने से कुछ पहले हिना को डिलेवरी हो जाती है। रामेश्वर उस बच्चे का नाम 'भारत' रखता है।

किसी दंगे को रोकना पुलिस और प्रशासन के लिए कितना मुश्किल होता है, इसका भी बारीकी से चित्रण उपन्यास में हुआ है। यह एक टीम वर्क और अत्यंत कौशल का काम है। अधिकारियों अपनी जान को जोखिम में डालना होता है। त्वरित निर्णय लेने होते हैं। अपने नेटवर्क को सक्रिय करना होता है। सूझ-बूझ से ही वे दंगे पर काबू पाते हैं।

सोशल मीडिया ने ज्ञान की अराजकता फैला दी है। व्हाट्सअप यूनिवर्सिटी में दीक्षित लोग अपना ज्ञान बांटने से बाज नहीं आते। ये लोग अपने अधकचरे ज्ञान के जरिए नफरत फैलाते रहते हैं और खुद को ज्ञानी समझकर तुष्ट होते रहते हैं। किरण का पति रामेश्वर से ज्ञान बघारते हुए कहता है कि हिन्दू धर्म समाप्त होने वाला है क्योंकि मुस्लिमों की संख्या बढ़ रही है। मुस्लिम लोग तो बच्चों की लाइन लगा रहे हैं जबकि हिन्दुओं में एक ही बच्चा पैदा करने का चलन आ गया है। यह ख़तरनाक है। हिन्दू अल्पसंख्यक हो जाएगा। इस पर जब किरण के पति से रामेश्वर पूछता है कि फिर आपका एक ही बच्चा क्यों है। आपको कम से कम आठ-दस बच्चे तो पैदा करने ही चाहिए तब उसकी बोलती बंद हो जाती है। विनय भी रामेश्वर को हिन्दू धर्म के सामने उपस्थित संकट से आगाह करता है। पाकिस्तान में आज़ादी के समय हिंदुओं की संख्या तेईस प्रतिशत थी। आज वहाँ डेढ़ प्रतिशत ही हिन्दू बचे हैं। रामेश्वर उसे अपनी जानकारी अपडेट करने के लिए कहता है। उन्नीस सौ इकहत्तर में पाकिस्तान से टूटकर बंगलादेश बना। बंगलादेश में 22 प्रतिशत हिन्दू हैं जो पहले पाकिस्तान में थे। अब पाकिस्तान में डेढ़ प्रतिशत हिन्दू बचे हैं। इस तरह कुल तेईस प्रतिशत हिन्दू तो आज भी हैं।

पंकज सुबीर का इंसानियत पर विश्वास पाठक को एक नई ऊर्जा और नए हौसले से भर देता है। उसे दृष्टि सम्पन्न करता है। धर्म के मूल को समझने का मौका देता है। धर्म की सभी मूल और महत्त्वपूर्ण बातें पाठक को एक जगह पर मिल जाती है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद पाठक वही नहीं रह जाता जैसा कि वह इसे पढ़ने के पहले था। पूरा उपन्यास चर्चाओं, बातचीत और संवादों के जरिए आगे बढ़ता जाता है। 312 पृष्ठों तक फैला यह उपन्यास इतनी बौद्धिक बहसों के बावजूद कहीं भी बोझिल प्रतीत नहीं होता। भाषा सहज, सरल, सजीव, प्रवाहपूर्ण और चित्रात्मक है। उपन्यास का शीर्षक फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के एक शेर से लिया गया है। इस शेर में थोड़ी नकारात्मकता थी। पर उपन्यास एक सकारात्मक संदेश देता है। दंगे की कोख से जन्मे मोहम्मद भारत खान जैसे बच्चे सांप्रदायिक सद्भाव के लिए संघर्ष कर दुनिया को बेहतर बनाने की कोशिश करेंगे। यही कारण है कि बिलकुल आख़िर में रामेश्वर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ से माफी माँगते हुए कहता है कि जुर्मे-ए-इश्क़ पे नाज़ रखने वाले गुनहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई है। निश्चित ही यह शोधपूर्ण उपन्यास संग्रहणीय दस्तावेज़ तो है ही, एक दिलचस्प दास्तान भी है। यह एक साथ इतिहास और वर्तमान की दशा तो बतलाता ही है, भविष्य की दिशा की ओर संकेत भी करता है। यह कट्टरपंथी ताक़तों को दिया गया एक माकूल जवाब है यह उपन्यास।

000

समकालीनता की पुख्ता ज़मीन पर आधारित उपन्यास

सूर्यकांत नागर

पंकज सुबीर दृष्टि-सम्पन्न रचनाकार हैं। कहानी-उपन्यास के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी उनका सार्थक हस्तक्षेप है। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पर नाज़ था' उनका तीसरा उपन्यास है जो पूर्व के दो उपन्यासों से कई मानों में भिन्न है। उसकी सफलता और लोकप्रियता इसी से सिद्ध है कि एक वर्ष में उसके दो संस्करण आ चुके हैं। दरअसल उपन्यास विभिन्न धर्मों के उद्गम, परस्पर संबंधों, सिद्धांतों-उपदेशों और उनके नाम पर फैलाए जा रहे साम्प्रदायिक वैमनस्य विषयक लेखक की गहरी चिंता का प्रतिफल हैं। उसका भरोसा साम्प्रदायिक सौहार्द में है। अपने मंतव्य को कथा-रूप देने से पहले लेखक ने विभिन्न धर्मो पर गहन अध्ययन, चिंतन और शोध किया है। यहाँ वे एक जिज्ञासु शोधकर्ता के रूप में हमारे सामने हैं। यहूदी, ईसाई, इस्लाम, जैन, बौद्ध और पारसी धर्मों की विशेषता के साथ-साथ उनके दोषपूर्ण विश्लेषण द्वारा बताया गया है कि कट्टरपंथी और सियासतदार कैसे नफ़रत के बीज़ बोकर अपने स्वार्थ की सिद्धी करते हैं। उपन्यास के नायक रामेश्वर के माध्यम से धर्म के मूल उद्देश्य को समझाने का प्रयास किया गया है। जो ग़लत है, उसे ग़लत कहने का साहस लेखक में है, इस बात की चिंता किए बगैर कि धर्मावलम्बी उसे किस रूप में

लेंगे। नायक रामेश्वर धर्म की सत्ता को आँखें मूँद कर स्वीकार करने वालों में नहीं है। धर्म के मामले में वह कुछ अधिक ही दुर्नम्य और तार्किक है। वह मानता है कि एक धर्म से ही दूसरा धर्म पैदा होता है। साम्प्रदायिक दंगे होते नहीं, करवाए जाते हैं। धर्म के ठेकेदार, राजनीतिज्ञ और असामाजिक तत्व स्वार्थ की खातिर दंगे करवाते हैं। धर्म बाद में आता है, स्वार्थ पहले। धर्म ख़तरे में है, कहने भर से उनका काम हो जाता है। अविश्वास की खाई गहरी हो जाती है। जोड़ने वाले सेतु के तार, तार-तार हो जाते हैं। धर्म मनुष्य को सँवारता है तो उसकी मति भ्रष्ट भी करता है। धर्म ज्ञान के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा हैं, क्योंकि धर्म का काम अज्ञान की वज़ह से चलता है। धर्म के इतने बंधन हैं कि मनुष्य चाहकर भी कुछ काम नहीं कर पाता। धर्म का काम जोड़ना है, तोड़ना नहीं। असल धर्म तो मनुष्य को मानवीय बनाता है। हिंसा की मनाही हर धर्म में है, लेकिन धर्म के नाम पर ही लोग हिंसा करते हैं। मानव धर्म से बड़ा कोई धर्म है भला ? धर्म एक है, लेकिन बहुरूपिया तो उसे मनुष्य ने बनाया है।

लेखक ने धर्म और हिंसा के परस्पर संबंध का भिन्न दृष्टि से विश्लेषण कर यह जताने की कोशिश की है कि हर धर्म-ग्रंथ में हिंसा का प्रसंग है चाहे रामायण हो या महाभारत ! चाहे बात शम्बूक वध की हो, ताड़का वध की हो, रावण-वध की या कंस-वंध की हो। द्रोणाचार्य द्वारा दक्षिणा-स्वरूप एकलव्य से अँगूठे की माँग भी हिंसा का ही एक हिस्सा है। मज़े की बात कि इन लोगों को मारने वाला ही ईश्वर हो जाता है।

धर्म से ही धर्म पैदा होता है, इस अवधारणा को पुष्ट करने वाला रामेश्वर का यह वक्तव्य देखिए - यहूदी, ईसाई, इस्लाम तीनों ही धर्म इब्राहीम (अब्राहम या अवराम) को अपना पिता मानते हैं। अबराम की बाद की नस्लों ने ही ये प्रमुख धर्म बनाए। ये तीनों धर्म क़िताबों वाले हैं - मूसा-तोराह, ईसा-बाईबिल, मोहम्मद-कुरआन। ये क़िताबें ईश्वर द्वारा प्रदान की गई हैं तथा इन्हीं के निर्देशों और मार्गदर्शन से इन धर्मों का उदय हुआ है, लेकिन अबराम की ये संतानें आज एक-दूसरे की शत्रु बनी हुई हैं। तीनों के बीच येरूशलम को लेकर संघर्ष जारी है। केवल हिन्दू (वैदिक या सनातन धर्म) ही ऐसा धर्म है, जिसके पास ईश्वर का दिया काई ग्रंथ नहीं है। वस्तुत: यह एक जीवन-शैली है, जिसकी अपनी आस्था, परम्परा, शैली और विश्वास है। जिसने शनै:-शनै: एक संस्कृति का रूप ले लिया। उधर इस्लामिक अनुयायियों का मानना है कि उनके पास ईश्वर का सबसे बाद का दिया आदेश है - कुरआन आख़िरी आदेश है। अर्थात् इस्लाम सबके बाद का धर्म है, इसलिए वही प्रधान है। शेष को खारिज कर देना चाहिए।

उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति और देश-विभाजन की अंर्तकथा भी है। फैंटेसी के रूप में गांधी और जिन्ना को खड़ा कर कांग्रेस, मुस्लिम लीग और विभाजन के पक्ष-विपक्ष के आरोपों-प्रत्यारोपों का तार्किक ब्यौरा है। जिन्ना ने स्वयं को गांधीजी से सीनियर बताते हुए उनकी कई कमज़ोरियों को अपने हिसाब से उद्घाटित किया और उन्हें राजनीति में धर्म के प्रवेश की शुरूआत के लिए जवाबदार ठहराया। जिन्ना के अनुसार ख़िलाफत आंदोलन ही धर्म का राजनीति में प्रवेश का आरंभ था। ख़िलाफत आंदोलन ओर असहयोग आंदोलन साथ-साथ चलाना हिमालयी भूल थी। यहीं से मुस्लिम तुष्टीकरण की शुरूआत हुई थी। यह आरोप भी लगाया कि गांधी को मुस्लिमों के संरक्षक, हितैषी व सरपरस्त बन उनका नेता बनने का शौक चर्राया था। कहीं यही तो हिन्दू विरोध का प्रबल कारण बना, जिसने अंतत: उनकी हत्या की शक्ल अख़्तयार कर ली। एक हिन्दू ने ही हिन्दू को मार डाला।

उपर्युक्त तमाम अवधारणाओं की पुष्टि के लिए पंकज सुबीर ने जिस कथानक का सृजन किया है उसका प्रमुख किरदार उदारमना, साम्प्रदायिक सद्भाव में विश्वास रखने वाला बहुज्ञ, चिंतक रामेश्वर है जो एक कोचिंग संस्थान चलाता है। उसी के यहाँ कार्यरत युवा शाहनवाज़ है जो रामेश्वर की छत्र-छाया में ही पला-बढ़ा और शिक्षित-दीक्षित हुआ। रामेश्वर उसे पुत्रवत् मानता है और शाहनवाज़ के मन में भी रामेश्वर के प्रति पितृ-तुल्य आदर भाव है। कथानक का यह हिस्सा लेखक के निजी अनुभव से उपजे विचार का नतीजा लगता है।

समकालीनता के प्रति लेखक का जज़्बा इसी से स्पष्ट है कि अयोध्या का मसला उठाते हुए उसकी स्थापना है कि धर्म-ग्रंथों के हिसाब से अयोध्या केवल हिन्दुओं का धार्मिक स्थल है। मुसलमानों के किसी धर्म या धर्म-ग्रंथ में अयोध्या का उल्लेख नहीं है। इसे लेकर मुस्लिम समुदाय व्यर्थ में ज़िद पकड़े हुए है। स्मरण रहे, इस सच्चाई से लेखक की निरपेक्षता कहीं बाधित नहीं होती।

क़स्बे के समीप ख़ैरपुर नामक छोटी-सी बस्ती में सरकारी ज़मीन पर हनुमान मंदिर बना दिए जाने और उसके निमित एक बड़े उत्सव को लेकर दो समूहों में शुरू हुई तकरार ने भयंकर दंगे का रूप ले लिया और पूरी ख़ैरपुर बस्ती आतंक के साये में आ गई। ऐसे में पेंच तब फँसता है जब शाहनवाज़ की प्रेगनेंट बीबी का प्रसव समय निकट है और वह दर्द से कराह रही है। हालात ऐसे हैं कि घर से निकालकर उसे डिलिवरी के लिए अस्पताल ले जाना ख़तरे से खाली नहीं है। रामेश्वर इस स्थिति को लेकर बहुत चिंतित है और अपनी पहुँच और पहचान के बल पर शाहनवाज़ की बीवी को सुरक्षित अस्पताल पहुँचाने के लिए पूरी निष्ठा से प्रयासरत है। अंतत: उसका प्रयास सफल होता है और शाहनवाज़ की पत्नी अस्पताल में एक बेटे को जन्म देती है।

उपन्यासकार की सामाजिक प्रतिबद्धता एवं समकालीन चेतना असंदिग्ध है। उपन्यास इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मौजूदा हालात में प्रासंगिक है। विस्तृत विवेचन द्वारा धर्म का असली मर्म समझाया गया है। आज धर्म और राजनीति का जिस तरह घालमेल हो रहा है, राम मंदिर निर्माण को लेकर जो स्थितियाँ निर्मित होती रही हैं और स्वार्थ की ख़ातिर जिस तरह सिद्धांतों-आदेर्शों को तिलांजलि दी जा रही है, उसके मद्देनज़र कृति का महत्त्व बढ़ा है। उपन्यास के सुखद अंत से सकारात्मक सोच को बल मिलता है,

हालाँकि आधुनिक कथा-साहित्य में हैप्पी एंडिग का चलन कम ही है। सकारात्मकता से आशा, उत्साह, उमंग और नैतिकता का संचार होता है, जबकि नकारात्मकता से निराशा, अवसाद और पलायन का भाव पैदा होता है। समकालीनता इस उपन्यास की बड़ी खूबी है। समकालीन शब्द केवज आज का पर्याय नहीं है। उसका काल-बोध विस्तीर्ण है। उसका फलक बड़ा है। उसमें निकट अतीत और निकट भविष्य की आहट भी शामिल है। स्थिति विशेष का व्यापक विश्लेषण जो हमें जीवन, समाज और परिवेश को जानने-समझने का अवसर देता है। सजीव शैली और सतत प्रवाही, अर्थगर्भी भाषा ने यह काम आसान कर दिया है। यद्यपि कथानक की तुलना में संवादों के रूप में दिए गए वक्तव्य कुछ अधिक लंबे हो गए हैं। कुछ स्थलों पर आए विस्तार ओर दोहराव से बचा जा सकता था। दीन, इस्लाम, कुरआन जैसे विषयों की व्यायख्या एकाधिक बार हुई है। कथानक से अधिक वैचारिक टिप्पणियाँ हैं। स्मरण रहे, कथानक रचना के ध्येय और अभ्यांतरिक अर्थ को स्पष्ट करता है। इससे रचना अधिक पठनीय ग्राह्य और सम्प्रेषणीय हो जाती है। बहरहाल, ये छोटी बातें हैं। मुख्य तो है अंतर्वस्तु जो मज़बूत है। लेखकीय प्रतिबद्धता और समकालीनता कृति की पुख्ता ज़मीन हैं जिसके लिए रचनाकार बधाई के पात्र हैं।

000

इन्सानियत की खोज में तर्कपूर्ण आवाज़- जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

तरसेम गुजराल

१. 'जिस पल हम धार्मिक उन्माद और कट्टरता के ख़िलाफ़ कलम उठा लेते हैं उसी पल से हमारी जान पर ख़तरा मंडराना शुरू हो जाता है।'

(अविजित, बांग्लादेश)

२. '२६ फरवरी को जब हम रोशनी से नहाए पुस्तक मेले से वापस अपनी कार की तरफ आ रहे थे, अविजित और मुझ पर इस्लामी कट्टरपंथियों ने जघन्य हमला किया। सड़क के किनारे हमें लगातार छुरे भौंके गए। ये पूरा इलाका पुलिस अधिकारियों, वाडियो कैमरा और हज़ारों हज़ार लोगों से घिरा हुआ था। कोई हमें बचाने नहीं आया, पुलिस देखती रही। मैं उस युवा पत्रकार का शुक्रिया अदा करती हूँ जिसने तत्परता दिखाई और हमें अस्पताल ले गया। लेकिन अविजित को मारा जा चुका था और मुझे शरीर में चार जगह पर जख़्मी कर दिया गया था। मेरे सिर पर वार किए गए थे और मेरा अँगूठा कट चुका था... चार महीने हो चुके हैं, अब भी मेरा इलाज चल रहा है।'

(रफ़ीदा अहमद सोन्या/अनु. शालिनी जोशी)

३. 'धर्म...धर्म ही वह बिन्दु है, जिसके बाद इन्सान जैसे हताश होकर रह जाता है। उसका सारा ज्ञान उस बिन्दु पर आकर कुछ पुस्तकों का मोहताज हो जाता है। भगत सिंह ने कहा था। मानव जाति को सबसे ज्यादा नुकसान धर्म ने ही पहुँचाया है।'

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज़ था।

- पंकज सुबीर

४. 'भारत पर भारतीयों की हुकमत होनी चाहिए न कि हिन्दुओं, सिक्खों या मुसलमानों की।'

- डॉ. तौफीक किचलू, अमृतसर में

भाषण, ट्रिब्यून २० मार्च १९२१

भारत विभाजन की त्रासद घटनाओं तथा असहनीय विस्थापन पर अनेक संवेदनशील कथाकारों ने महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हिन्दी कथा साहित्य को उपलब्ध करवाई हैं। उन रचनाकारों में वे भी थे जिनके सामने दर्द का समंदर था। परन्तु नई पीढ़ी के कथाकार पंकज सुबीर का 2019 में आया उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज़ था' की रचना यह साबित करती है कि वह साम्प्रदायिकता की आग जिसमें घर जले, अमानवीय व्यवहार हुए, कि बेपनाह हिंसा हुई, लाखों लोग विस्थापित हुए, बहनों-बेटियों पर अथाह जुल्म हुए आज भी संवेदनशील मनों में चिंगारी की तरह मौजूद है।

यदि मुझे कोई एक ही पंक्ति इस उपन्यास पर कुछ कहने को बाध्य करे तो कहूँगा 'इन्सानियत की खोज में तर्कपूर्ण आवाज़।'

हमारे स्कूलों की दीवारों पर मोटे शब्दों में लिखा रहता है 'मज़हब नहीं सिखाता में बैर रखना।' सभी धर्मों की पवित्र किताबें सत्यनिष्ठ और मनुष्य मात्र से प्रेम करने का पाठ पढ़ाती हैं। यह हैरान करने वाली प्रक्रिया है कि धर्म से जुनून और फिर अपने धर्म के वर्चस्व और विस्तार के लिए दूसरे धर्म को मानने वालों को छोटी नज़र से देखना और हिंसा तक उतर आना कब और कैसे संभव हो जाता है। फिर मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना, मज़हब यही सिखाता आपस में बैर रखना में बदल जाता है।

और आगे का सफ़र मज़हब पर फिदा हो जाना याने फिदाइन या आतंक में भी बदल सकता है। डॉ. सुरेन्द्र वर्मा ने कहा है- क्रूरता से उत्पन्न भय या दहशत की स्थिति को आतंक कहते है। आतंकवाद भयोत्पादक उपायों का सहारा लेकर अपना काम निकालने का सिद्धांत है। यह डर की उपज है और डराना इसका लक्ष्य है। आतंकवाद संगठित हिंसा का एक रूप है।

(रचनाकर्म डॉ. सुरेन्द्र वर्मा, आतंकबाद बनाम आत्मबल, अंक अक्तूबर-दिसम्बर ०३)

शिक्षक रामेश्वर उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' के आरंभ में ही विद्यार्थी शाहनवाज़ को धर्म की बाबत संतुलित ढंग से समझा रहा है - 'धर्म... धर्म ही वह बिन्दु है, जिसके बाद इन्सान जैसे हताश होकर रह जाता है, उसका सारा ज्ञान उस बिन्दु पर आकर कुछ पुस्तकों का मोहताज हो जाता है। भगत सिंह ने कहा था 'मानव जाति को सबसे ज़्यादा नुकसान धर्म ने ही पहुँचाया है।' बिल्कुल सच कहा था भगत सिंह ने। मैं एक ऐसी दुनिया की कल्पना करता हूँ, जहाँ धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं होगा। जहाँ इंसान केवल इंसान के रूप में ही रहेगा। कोई धर्म नहीं, कोई जात नहीं। लेकिन यह बहुत ही ज़्यादा आदर्शवादी व्यवस्था की कल्पना है, मैं जानता हूँ कि ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

धार्मिक उन्माद को विस्तार देने के लिए जुनूनी लोग ऐतिहासिक प्रतीकों का इस्तेमाल करते हैं।

जब शाहनवाज़ रामेश्वर से पूछता है,

'धार्मिक सत्ता के आने के कोई पूर्व संकेत नहीं मिलते क्या? कैसे समझा जाए कि किसी देश में अब धार्मिक सत्ता आने वाली है?'

तब रामेश्वर का उत्तर है- जब देश के लोग अचानक हिंसक होने लगें, जब उस देश के इतिहास में हुए महापुरुषों में से चुन-चुन कर उन लोगों को महिमामंडित किया जाने लगे, जो हिंसा के समर्थक थे। इतिहास के उन सब महापुरुषों को अपशब्द कहे जाने लगें, जो अहिंसा के हामी थे। जब धार्मिक कर्मकांड और बाहरी दिखावा अचानक ही आक्रामक स्तर पर पहुँच जाए। जब कलाओं की सारी विधाओं में भी हिंसा नज़र आने लगे, विशेषकर लोकप्रिय कलाओं की विधा में हिंसा का बोलबाला होने लगे। जब उस देश के नागरिक अपने क्रोध को काबू में रखने में बिल्कुल असमर्थ होने लगें। छोटी-छोटी बातों पर हत्याएँ होने लगें। जब किसी देश के लोग ज़ोम्बीज़ की तरह दिखाई देने लगें, तब समझना चाहिए कि उस देश में अब धार्मिक सत्ता आने वाली है। किसी भी देश में अचानक बढ़ती हुई धार्मिक कट्टरता और हिंसा ही सबसे बड़ा संकेत होती है कि इस देश में अब धर्म अधारित सत्ता आने वाली है।'

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था/पृ.सं. १७)

धर्म को लेकर मार्क्सवादी समझ सदा विवादों के घेरे में रही है। इसमें ज़्यादातर यही उक्ति प्रचलित रही- 'धर्म जनता की अफीम है।' सच यह है कि मार्क्सवाद का यह कथन ठीक से उद्धृत ही नहीं किया गया। मार्क्स ने कहा था 'धार्मिक पीड़ा वास्तविक पीड़ा की अभिव्यक्ति तथा साथ ही साथ वास्तविक पीड़ा के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन भी है। धर्म उत्पीड़ित प्राणी की आह है। एक हृदयहीन दुनिया का वह हृदय है, उसी तरह, जिस तरह एक आत्माविहीन स्थिति की वह आत्मा है। वह जनता की अफीम है।

(हीसेल के अधिकार संबंधी दर्शक की आलोचना में योगदान की भूमिका (१९४४)

धर्म को इसी अर्थ में अफीम बताया गया कि उसमें एक भ्रामक संसार की रचना की उतनी ही सामर्थ्य है जितनी कि अफीम में होती है। एक उत्पीड़ित व्यक्ति आदमी के लिए धर्म राहत के लिए पलायन का रास्ता प्रदान करता है। 'यह एक हृदयहीन दुनिया का हृदय है, एक आत्माविहीन स्थिति की आत्मा है।' एंगेल्स ने तो इसे एक प्रतिबिम्ब कहा जिसमें लौकिक शक्तियाँ अलौकिक शक्तियों का रूप धारण कर लेती हैं।

रामेश्वर की चारित्रिक दृढ़ता यह है कि एक शिक्षक होने के नाते जब कोई हिन्दू उसके सामने आता है तो वह हिन्दुओं की कमियों को गिनवा देते हैं, जब मुसलमान सामने आता है तो मुसलमानों की कमियाँ गिनवा देते हैं। कबीर ऐसे ही निडर थे, हिन्दू मुसलमान दोनों की रूढ़ियाँ निडरता से बता देते थे। धुँधलके में साफ दृष्टि से देख पाने वाले मेधावी लोग मुश्किल से मिलते हैं, देखकर निडर होकर, बेलाग कहने वाले और भी मुश्किल से मिलते हैं। अध्यापक रामेश्वर में ये दोनों गुण भरपूर मात्रा में हैं। नैतिक दीवालियापन के शिकार, छल-प्रपंच में लिप्त, आत्मप्रवंचना से घिरे लोगों को ऐसे स्वप्नदृष्टा लोग बरदाश्त नहीं होते। उनका शिष्य शाहनवाज़ समझ रहा है कि आज का समय ऐसा नहीं है। 'आजकल तो हिन्दुओं के सामने मुसलमानों की और मुसलमानों के सामने हिन्दुओ की कमियाँ गिनवाने का समय है।' उसे रामेश्वर को लेकर बहुत डर लगता है। उनसे कड़वा नहीं बोलने का अनुरोध किया जाता है। क्यों अपने दुश्मनों की संख्या बढ़ाई जाए।

रामेश्वर घबराने वाले नहीं, अपना दायित्व समझते हैं। कहा 'मैं शिक्षक हूँ बेटा। मेरा काम है ग़लतियाँ बताना। हमारा यह समय तो इसलिए ख़राब हो गया है कि शिक्षकों ने ग़लतियाँ बताना बंद कर दी है। और फिर तुम ही बताओ अगर रमेश का घर गंदा हो रहा है, वहाँ कचरे का ढेर लग रहा है, तो मैं रमेश को बुलाकर उससे कचरा साफ करने की कहूँ या रहीम को बुलाकर उसके साथ बैठकर रमेश के गंदे घर और कचरे की हँसी उड़ाऊँ? जिस पक्ष द्वारा ग़लती की जा रही है, उसी को तो कहूँगा मैं।'

रामेश्वर एक छोटे से क़स्बे में कोचिंग सेंटर चला रहा है। पहले निजी स्कूलों में आठ-दस साल नौकरी की। शादी हुई। दो बेटियों के पिता बने। इक्कीसवीं सदी का पहला दशक गुज़रने को था। इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश परीक्षा के लिए रामेश्वर के द्वारा चलाए जा रहे कोचिंग सेंटर में कम आय वाले परिवारों के बच्चे आ रहे थे। अपने नाम के आगे से सरनेम हटा कर धर्म से मुक्त कर लिया था अपने आपको। धर्म से पल्ला छुटा तो किताबें अंग संग हो गईं। 'दुनिया भर के दर्शन, विचारों और ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें ही अब उसके लिए धार्मिक पुस्तकें हो गई थीं। उसका अपना एक किताबों से भरा समृद्ध पुस्तकालय था, जिसमें दुनिया भर के दार्शनिकों और विद्वानों की किताबों ही भरमार थी।'

शाहनवाज़, जिसका ज़िक्र पहले कर चुके हैं, उस रामेश्वर के पुराने मित्र शमीम का बेटा है। शमीम और रामेश्वर एक ही मोहल्ले में थे। तब मुहल्ले धर्म के हिसाब से नहीं बनते थे। परन्तु फिर दरारें पड़ने लगीं। नब्बे के दशक का शुरूआती साल था, जब पहली बार क़स्बे में रामनवमी की शोभायात्रा निकली जा रही थी। पहले त्यौहार पर इस तरह जलसे-जुलूस नहीं होते थे। जुलूस ही ख़ासियत यह हुई कि निकला तो सामान्य ढंग से किन्तु विशेष इलाके में पहुँच कर विचित्र से नारे लगने लगे। 'कोई नहीं जानता कि हर दंगे में पहला पत्थर किस दिशा से आता है और कौन चलाता है। मगर यहाँ भी अज्ञात दिशा से एक पत्थर आ गया और उसके बाद पूरा कुस्बा पत्थरों और आग के हवाले हो गया। क़स्बे ने पहली बार जाना था कि दंगा क्या होता है।' (पृ.सं. २२)

उस एक दंगे का प्रभाव सब कुछ अलग-अलग कर गया। अब लोग अपने-अपने दायरों में सिमटने लगे, धर्म के आधार पर। कितने शमीमों कितने रामेश्वरों की बस्तियाँ अलग-अलग हो गईं। पंकज सुबीर मर्म तक पहुँचना चाहते है। यहीं टिप्पणी की 'असल में दंगे किसी को नहीं तोड़ते, दंगे के दौरान की अफवाहें और दंगों के बाद की वैमनस्यता ज़्यादा तोड़ देती है। और डरे हुए लोग अक्सर पलायन कर जाते हैं।'

दंगे पहले भी हुए हैं परन्तु यह दंगा छह दिसम्बर की पूर्व पीठिका थी 'जिस समय रामनवमी का यह जुलूस निकाला जाना था, उस समय तक राम से ज़्यादा राम की जन्मभूमि का महत्त्व बढ़ चुका था।'

जन कवि नागर्जुन ने कहा था- 'विवेकानंद ने ही पहली बार कहा था कि गर्व में कहो हम हिन्दू हैं। परंतु विवेकानंद के उस कथन को आज लगभग उलट दिया गया है। विवेकानंद के सामने प्रश्न यह था कि दुनिया के सभ्य देशों के समक्ष अंग्रेज़ शासक भारतीयों को जाहिल-अनपढ़ संस्कार विहीन घोषित करते रहते थे। स्वामी विवेकानन्द ने ज़ोर देकर कहा कि गर्व से कहो हम हिन्दू हैं। परन्तु आज विवेकानंद के उस सूत्र वाक्य को घने कोहरे में डाल दिया गया है।'

भीषण दंगा हुआ। 'कहने वाले उस दंगे के बारे में कुछ भी कहते रहें, मगर यह बात भी सच थी कि क़स्बे का वह भीषण दंगा उस दिन असल में राम के कारण नहीं हुआ था बल्कि वह तो पान के कारण हुआ था।...उस दंगे की यादें आज भी लोगों के अंदर दहशत पैदा कर देती हैं। पूरे का पूरा मुख्य बाज़ार आग की लपटों में घिर गया था। आग यह थोड़े ही देखती है कि उसे कहाँ तक फैलना है। पूरा क़स्बा धुएँ से भर गया था। सरकारी अस्पताल में लोगों और घायलों के ढेर लगे हुए थे। क़स्बे ने आपसी भाईचारे को भुलाकर पहली बार धार्मिक उन्माद और वहशीपन को अपने अंदर महसूस किया था।'

शमीम रामेश्वर का मित्र शाहनवाज़ का हाथ रामेश्वर को सौंपने आया था जिसने बारहवीं पास कर ली थी परन्तु आवारा लड़कों की संगत में बिगड़ता जा रहा था। रामेश्वर ने इस ज़िम्मेदारी को स्वीकार कर लिया।

आसपास के हालात बिगड़ते जा रहे थे। राम जन्म भूमि के समानांतर जमातों का दौर शुरू हो गया था। 'जमातें, जिनके बारे में कहा तो यही जाता था कि धर्म प्रचार के लिए होती हैं, लेकिन उनमें धर्म प्रचार के नाम पर बहुत कुछ चल रहा था। जमातें, जो घूमती रहती थीं। शहर दर शहर।'

दंगे की एक छोटी सी चिंगारी में अफवाहें तेल का काम करती हैं। अविश्वास अफवाहों की उपजाऊ भूमि है। भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमास' में अफवाहों और आत्मरक्षा को लेकर विचार करने के लिए हिन्दुओं की अंतरंग सभा की बैठक हुई। अफवाह थी कि जामा मस्जिद में लाठियाँ, भाले और तरह-तरह का असला इकट्ठा किया जा रहा है। एक व्यक्ति का विचार था हिन्दू लोग पहले अफवाहों को गंभीरता पूर्वक नहीं लेते और फिर प्यास लगने पर कुआँ खोदते हैं। इसी कारण हिन्दुओं के दिल को कठोर बनाने के लिए मुर्गी काटने का अभ्यास करवाया गया। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' उपन्यास में 'धीरे-धीरे यह बातें सामने आने लगी थीं कि होली पर अगर शरीर के किसी हिस्से पर रंग लग गया, तो उस हिस्से की चमड़ी अंतिम समय में खुरच-खुरच कर उतारी जाएगी। दीपावली पर पटाखे छुड़ाना अब कुफ्र हो चुका था।' जमातों की हक़ीक़त थी कि 'जमातों में कोई पढ़े-लिखे विद्वान लोग नहीं होते थे। इनमें बस फुरसती लड़के होते थे जिनके लिए एक निश्चत समय अवधि के लिए जमात में जाना आवश्यक कर दिया गया था। ये ही दूसरे शहरों में जाकर धर्म का प्रचार करते थे।' धर्म संबंधी उनका ज्ञान गहरा न होकर उथला था। उनके जाने पर परिवार को कई तरह की परेशानियाँ उठानी पड़तीं। 'कमाने वाले लड़कों का धर्म प्रचार में चला जाना घर में कितनी परेशानियाँ पैदा करता था, यह घर की महिलाएँ ही जानती थीं। असल में धर्म नाम की इस बला ने अब तक जो भी परेशानियाँ दी है, वे महिलाओं को ही दी हैं। पुरुषों ने तो धर्म नाम की इस व्यवस्था की आड़ में बस लाभ उठाया है।'

हरिशंकर परसाई ने कहा है, 'विचार जब लुप्त हो जाता है या विचार प्रकट करने में बाधा होती है या किसी के विरोध से भय लगने लगता है तब तर्क का स्थान हुल्लड़ या गुण्डागर्दी ले लेती है।'

रामेश्वर का स्नेह, ज्ञान, समझपरकता और विश्वास शाहनवाज़ को बदलता चला गया। कोचिंग का काफी काम ही नहीं, बैंक का लेन-देन घर के छोटे-बड़े काम अब शाहनवाज़ के हाथ में थे। रामेश्वर की बेटियों को कहीं जाना हो (स्कूल-बाज़ार) तो वह ज़िम्मेदारी भी उसी पर थी। उसकी कट्टरता भी फीकी पड़ने लगी थी।

समय खिसकता चला गया। अब तक शाहनवाज़ कानून में एल.एल.एम. भी कर चुका था। रामेश्वर उसे अपना बेटा ही मानता था। उसका विवाह हो चुका था। उसकी पत्नी हिना उम्मीद से थी।

उसने रामेश्वर से एक सवाल पूछा- 'सर, एक बात बताइए... जब अलग पाकिस्तान बन गया, तो यहाँ के सारे मुसलमान वहाँ क्यों नहीं चले गए...? यहाँ क्यों रुक गए?'

प्रश्न साधारण नहीं था। प्रतिक्रियावादी लोग आज भी पूछ रहे हैं।

उत्तर मिला, 'छोड़ कर जाना आसान नहीं होता बेटा। जो लोग विस्थापित होते हैं, बस वे ही जानते है कि विस्थापन की तकलीफ क्या होती है। और फिर जो लोग धर्म आधारित राष्ट्र के बनने से सहमत नहीं थे, वे क्यों आते वहाँ? और अगर सहमत भी होते, तो ज़मीन, जायदाद, संपत्ति तो सब यहाँ थी, कैसे चले जाते छोड़कर?'

शाहनवाज़ ने दो दिन से बस्ती में तनाव के बारे में बताया।

वजह?- 'बस्ती के क़ब्रिस्तान के पास की सरकारी ज़मीन पर अभी तीन-चार महीने पहले अचानक एक मंदिर बन गया। हनुमान मंदिर। और अब कहा जा रहा है कि नए साल के पहले मंगलवार उस मंदिर से बाजे-गाजे के साथ झंडा निकाला जाएगा। इस बात को लेकर बस्ती में आक्रोश देखा जा रहा है।'

यहाँ से आगे का पूरा उपन्यास शाहनवाज़ की पत्नी के बच्चे का जन्म, शहनवाज़ के परिवार का दंगे जैसे हालात में फँसे रहना और धार्मिक कट्टरपंथी के साथ-साथ भारत पाकिस्तान विभाजन की दुखद घटना और कारणों के आसपास ही बुना गया है। कुमार विकल ने 'स्वप्न घर', कविता का आरंभ इस तरह किया - 'पहली बार /उन्होंने / मेरी पीठ पर / जलती सलाखों से आग की भाषा में / एक ऐसे देश का नाम लिख दिया था / जो

दुनिया के किसी नक्शे में नहीं था।'

रामेश्वर शाहनवाज़ के बताए तनाव के पार देख रहा था कहा, 'यह जो साल है यह चुनाव का साल है।... चुनाव वाले साल में वोटों के ध्रुवीकरण के लिए यह सब टोटके साल-डेढ़ साल पहले से ही शुरू कर दिए जाते हैं...। भेड़िए के आने का डर दिखा कर, डरी हुई भेड़ों को आपने बाड़े में बंद करना... आप किसी भी धर्म को मानने वाले हों, कोई भी कितना भी प्रगतिशील धर्म हो आप अपने आप को भेड़ ही समझेंगे।' रामेश्वर यह समझ रहा है कि पाकिस्तान का सवाल हिन्दुस्तान में रह गए मुसलमानों को हमेशा झेलना पड़ेगा। क्योंकि प्रचारित यह किया गया कि मुसलमानों ने अपने लिए अलग देश की माँग की थी। जबकि हक़ीक़त यह है कि मुसलमानों ने नहीं की थी, बल्कि मुसलमान लीडरों ने की थी जिसका समर्थन उस समय के हिन्दू लीडरों ने भी किया था। आम लोगों की सहमति थी या नहीं, यह किसी ने नहीं पूछा। उसके अनुसार, 'इंसानी फितरत में प्रेम बहुत कम है और नफ़रत बहुत ज़्यादा। नफ़रत करने का कोई न कोई कारण तलाश लिया जाता है, बस प्रेम करने की ही वजह नहीं मिलती।'

वह इतिहास से परिचित है कि मुसलमान शासकों ने बरसों-बरस इस देश पर शासन किया, तो उन्हें लगता है कि यह तो उनका विजित देश है। हिन्दुओं को लगता है कि मूल रूप से देश तो उन्हीं का है। ...जब सैंतालीस में पाकिस्तान बन गया था, तो उनको देश छोड़ कर चले जाना चाहिए था। इस विवाद को बनाए रखने के लिए बहुत से लोगों के निजी हित जुड़े हुए हैं।

मुसलमानों की दिक़्क़त शाहनवाज़ के अनुसार यह है कि सैंतालीस में देश छोड़कर जो लोग पाकिस्तान नहीं गए, वे इस देश को भी अपना नहीं मान पाए... गए भी नहीं है, और चिपके भी उसी से हैं।

अब्बा का फ़ोन आने पर शाहनवाज़ घर चला गया परन्तु घर से रामेश्वर को फोन पर बताया कि ख़ैरपुर को चारों ओर से घेर लिया गया है पूरी बस्ती को जला देने की बात हो रही है। चारों तरफ से पत्थर बरसाए जा रहे हैं।

ज़िला कलेक्टर वरुण कुमार से रामेश्वर की मित्रता थी, फोन कर शाहनवाज़ के घर की सुरक्षा की माँग की।

उधर हालात बिगड़ चुके थे। धारा एक सौ चवालीस लगाने पर भी गाड़ियाँ जलाई जा रही थीं। पथराव हो रहा था। शाहनवाज़ की सिम का नेटवर्क चला गया था। रामेश्वर शहनवाज़ की सुरक्षा को लेकर फिक्रमंद था। उसकी पत्नी हिना की तबियत बिगड़ती जा रही थी।

रामेश्वर अनसुलझे सवालों को तज नहीं पाता। 'उन्नीस सौ दस से लेकर उन्नीस सौ पचास तक की हिंसा देखी है पूरे विश्व ने 'दो दो विश्वयुद्ध, भारत-पाक विभाजन, उसके बार की हिंसा, जर्मनी में हिटलर और नाज़ियों की हिंसा... तीस-चालीस साल के समय में दुनिया की आबादी का कितना बड़ा हिस्सा मारा गया, मार दिया गया।...पूरी दुनिया एक बार फिर से धर्म के नाम पर होलोकॉस्ट की तरफ़ बढ़ गई है।'

भारत के साथ बातचीत करते हुए रामेश्वर ने कट्टरता पर टिप्पणी की, 'मुसलमानों ने अपनी कट्टरता नहीं छोड़ी और धीरे-धीरे यह हुआ, जो दुनिया के दूसरे धर्मों के मुकाबले में कम कट्टर था, वह भी कट्टर होता चला गया।'

(पृ.सं. ९३)

प्रतिक्रियावादी लोग सभी जगह हैं। विनय पाठक, अध्यक्ष हिन्दू युवा वाहिनी की मौजूदगी इसीलिए है। उनका शिष्य रहे होने के बावजूद उसकी आवाज़ में विनम्रता नहीं थी जबकि पुलिस अधिकारी होने पर भी भारत यादव ने कभी विनम्रता का त्याग नहीं किया था। विनय पाठक रामेश्वर को मिलने नहीं समझाने आना चाहता था, उनकी भलाई के लिए। शाहनवाज़ के बारे में समझना चाहता था कि उसे बहुत सिर चढ़ा रखा है। पूछा- 'कितने मुसलमान लड़के पाल रखे हैं आपने? एक ही तो है। अगर बेटा ही बनाना था, तो किसी अपने वाले को बनाते... वह आपकी बेटियों को दिन-दहाड़े मोटर सायकिल पर बिठाए-बिठाए घूमता है... यह लोग इतने भरोसे के लायक नहीं होते,' उसने धमकी भी दे डाली (अब शाहनवाज़ को कोचिंग से हटा लीजिए, वरना हमें भी मामला हाथ में लेना पड़ेगा।) वह कोर्ट को भी कुछ नहीं समझता 'कोर्ट के हिसाब से सारी परम्पराएँ, सारे संस्कार सब ख़त्म हो जाएँगे। कोर्ट का काम अपनी जगह है और धर्म का काम अपनी जगह।'

शाहनवाज़ के घर के आस-पास दंगा ग्रस्त घटनाक्रम के साथ-साथ उपन्यास आगे बढ़ता चला जाता है। गांधी के बारे में कहा गया कि गांधी के जिस विचार का पूरी दुनिया में सम्मान किया जाता है, स्वयं गांधी के देश में उनकी क्या स्थिति है? गांधी की पूरी विचार धारा को अब समाप्त किया जा रहा है। अहिंसा अब जाकर हिंसा के हाथों मारी जा रही है। उपन्यासकार की ओपन्यासिक दृष्टि से (दिव्य नहीं) नाथूराम गोडसे, मोहम्मद अली जिन्नाह को साक्षात खड़ा किया गया है।

रामेश्वर गोडसे से कह रहा हैं- 'तुम्हारा काम...? यही न कि एक अस्सी साल के बूढ़े आदमी की छाती पर तीन-तीन गोलियाँ दाग दीं।' उसका उत्तर है, 'जब धर्म को बचाने की बात हो, तो कोई भी बात कायरतापूर्ण नहीं होती। जैसे भी हो लक्ष्य को पूरा करना ही पहला उद्देश्य होता है। जब धर्म युद्ध ठन जाता है, तो फिर बस एक ही प्रयास किया जाता है कि जैसे भी ही धर्म की ही जीत हो। उसने देश बँटवा दिया, दो टुकड़े करवा दिए, उसके बाद भी उसे चैन नहीं था।'

रामेश्वर को यह ग़लत बयानी लगी। कहा- 'वह तो कहता था कि अगर देश के दो टुकड़े हुए तो मेरी लाश पर होंगे। वह चाह रहा था कि हिन्दुस्तान से पाकिस्तान गए लोग वापस आ जाएँ- विभाजन को नकार दिया जाए, सब कुछ एक बार फिर से पहले जैसा ही कर दिया जाए। वह बूढ़ा तो पैदल यात्रा पर पाकिस्तान जाने वाला था। वह तो एक बार फिर से सब कुछ जोड़ने वाला था। तुम लोग जहाँ-जहाँ और जितना-जितना लोगों को अलग करते थे, यहाँ-वहाँ वह फिर से एक कर आता था। इस कारण तुम लोग चिढ़ते थे न।'

नाथूराम गोडसे का उत्तर था- 'हमने तो

पचपन करोड़ रुपयों के कारण मारा था। वह पचपन करोड़ रुपये जिन्हें दिलववाने के लिए वह अनशन पर बैठ गया था और दिलवा कर ही माना था।' लेकिन रामेश्वर को असली बात यह लगी कि वह हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने की ताक़त रखता है। उसे उस समय का भारत पसंद है जब हिन्दुओं के भजनों में अल्लाह आता था और मुसलमानों के भजनों में कृष्ण। और ख़ैरपुर में जो कुछ घट रहा है वह उनकी (गोडसे की) सोच का ही नतीजा था।

उपन्यास में मुसलमानों में सलामुद्दीन और हिन्दुओं में विनय पाठक दोनों अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण रामेश्वर को ग़लत ठहरा रहे हैं, जबकि वह इन्सानियत का युद्ध ही लड़ रहा है।

जिन्ना विभाजन से हुए नुकसान के लिए गांधी को ज़िम्मेदार ठहरा रहा है। 'मैंने तो कोशिश की थी कि धर्म के हिसाब से सब इधर से उधर हो जाएँ। लेकिन बीच में गाँधी ने आकर रोक-रोक दिया मुसलमानों को। रोक दिया कि किसी को भी पाकिस्तान जाने की ज़रूरत नहीं है। असल गलती गांधी की है मेरी नहीं है।'

रामेश्वर ने व्यंग्य किया- 'गांधी... गांधी से ही समस्या थी असली। हिन्दुओं से नहीं बल्कि गांधी से समस्या थी।'

जिन्ना ने इसे कबूल किया। गांधी उनसे सात साल बड़े थे परन्तु कांग्रेस में वही बीस साल सीनियर थे 'लेकिन उसके बाद भी जब गांधी कांग्रेस में आए तो पूरी कांग्रेस जैसे गांधी की हो गई।' रामेश्वर का ऐतिहासिक ज्ञान कम नहीं। कहा कि वह गांधी के आने से दो साल पहले ही मुस्लिम लीग में शामिल हो गए थे।

स्पष्टीकरण दिया गया कि मुस्लिम लीग तो उन्नीस सौ छह में ही बन चुकी थी। 'मैं कांग्रेस का सदस्य ही बना रहा। कांग्रेसियों के कहने पर ही मैं मुस्लिम लीग के बनने के छह साल बाद उसका सदस्य बना और साथ ही कांग्रेस का भी सदस्य बना रहा। जाने कब ऐसा कहा जाने लगा कि मुसलमानों का ही नेता हूँ।'

रामेश्वर के पास लखनऊ समझौते को लेकर प्रश्न था। 'उसमें तो गांधी की कोई भूमिका नहीं थी। उस समय तो गांधी आए ही थे देश में। जिसने भारत के मुसलमानों के मन में पहली बार अपने लिए कुछ अलग की माँग को ताकत दी। मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाने की बात कही।'

सीधा सा उत्तर मिला कि वह अकेले इसके लिए ज़िम्मेदार नहीं, बाल गंगाधर तिलक ने उस समझौते का समर्थन किया था।

रामेश्वर ऐतिहासिक संदेह और प्रश्नों पर व्याख्या चाहता है। ज़रूरी लगी। वह विभाजन में अंग्रेज़ की भूमिका को समझ रहा है जिन्होंने आयरलैंड की तरह यहाँ भी फूट डालो और राज करो की नीति अपनाई। जब वह नाथूराम गोडसे, गांधी या जिन्नाह को सामने लाकर खड़ा करते है जब जरनल डायर और किसी लार्ड की भी प्रस्तुत करते क्योंकि विभाजन में उनकी भी कुटिल क्रूर भूमिका की नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता।

शाहनवाज़ के यहाँ बेटे का जन्म हुआ। नाम रखा गया 'भारत' 'मोहम्मद भारत ख़ान' रामेश्वर ने बच्चे को गले से लगाया और कहा- जिन्हें जुर्मे-ए-इश्क़ पे नाज़ था, उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई।

रामेश्वर इस उपन्यास का मज़बूत इरादों वाला इन्सान है। अपने इरादों में अविचलित और मानवता के प्रति समर्पित। जातिगत, धर्माधारित भेद-भाव उसके लिए मानी नहीं रखते। वह एक पीढ़ी के निर्माण में मददगार होना चाहता है। अपने पर आरोपों की उसे परवाह नहीं, क्योंकि ये निराधार है।

पंकज सुबीर की शोध प्रवृत्ति तथा सत्य की तलाश असंदिग्ध है। बताया गया कि उपन्यास की रचना के लिए उन्होंने लगभग एक सौ ग्रंथों का अध्ययन किया था। अध्ययन एक तरफ होता है, उसकी गुणशीलता और वाजिब संतुलित उपयोग अलग। यह उनके पक्ष में जाता है। उपन्यास धर्म और धर्म की कट्टरता तथा क्षति पर बल देता है विभाजन के कारुणिक दृश्य तक सीमित रहने की जगह। उपन्यास की विचार पक्ष के कारण अपनी एक भूमिका तो है ही।

000

नई पुस्तक

क़फ़स

(कहानी संग्रह)

लेखक : अंशु प्रधान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

युवा लेखिका अंशु प्रधान का यह कहानी संग्रह अभी हाल में ही शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस कहानी संग्रह में अंशु प्रधान की सत्रह कहानियाँ संकलित हैं, ये कहानियाँ हैं चन्दनबाड़ी, वैरागिनी, चिनार का दरख़्त, नूर महल, पगी हुई रोटियाँ, सीखचों के पार, एक कप कॉफी, ओखली, सज़ायाफ्ता, अश्लील कहानी, नील कंठ, आठवां फेरा, अपराधी कौन, गुलमोहर, शाहीन बाग़ , ओवर टेक , टूटता तारा। यह कहानियाँ जीवन की कहानियाँ हैं। इनके पात्र आम जीवन से लिए गए पात्र हैं। कहानियों में स्त्री विमर्श एक नए रूप में सामने आता है। कहानियों को अंशु प्रधान ने बहुत सीधी और सरल भाषा में लिखा है, इसलिए ये कहानियाँ बहुत पठनीय बन पड़ी हैं। इन सारी कहानियों को पढ़ते समय महसूस नहीं होता है कि यह किसी लेखक का पहला ही कहानी संग्रह है। कहानियों में सम सामयिक विषयों को लेकर बहुत से प्रयोग लेखिका ने किए हैं। यह कहानी संग्रह नई पीढ़ी से लेकर परंपरागत पाठकों तक सबको पसंद आएगा।

000

पुस्तक समीक्षा

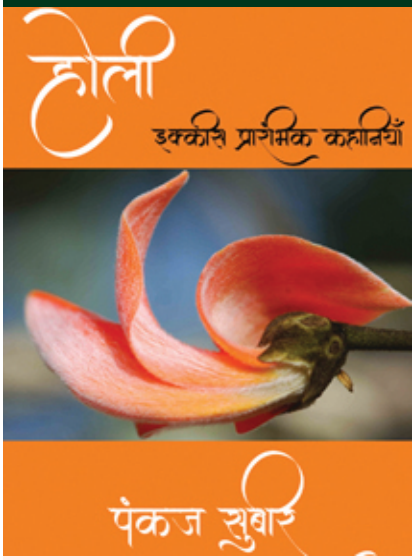

होली

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : अनीता सक्सेना

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

अनीता सक्सेना
बी- 143
न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल – 23
मोबाइल- 7552689899, 9424402456

वसंत ऋतु के उल्लास और उमंग के बाद फागुन का महीना होली की फगुआती मिठास लिए आता है ये कहानियाँ दोनों ऋतु के संगम और भावों को समेटे हुए हैं। होली की ये कहानियाँ, कहानी नहीं हैं हैं बल्कि ज़िंदगी की वो हक़ीक़तें हैं जो किसी के जीवन में हज़ारों तरह के रंग भर दी हैं। ये कहानियाँ एक तरह के गीत हैं। होली के वह गीत जिनकी मीठी धुन हर एक के मन में न सिर्फ घर कर जाती है बल्कि होली के रंगों की तरह वातावरण में घुल जाती है। सभी कहानियाँ बहुत अच्छी हैं।

होली एक ऐसा त्यौहार है जो मनुष्य को रंगों से कम रंगता है बल्कि दिल से ज़्यादा रंग जाता है। भारतीय संस्कृति को रंगमय बनाता है यह त्यौहार जहाँ सब लोग पुराने शिकवे-शिकायतें, झगड़े सब कुछ भूल जाते हैं और होली की लपटों में इनको दहन कर, एक-दूजे को रंग में डुबोकर, एक हो जाते हैं।

भारतीय संस्कृति का रंगों भरा त्यौहार 'होली' एक ऐसा त्यौहार है जिसमें होलिका की अग्नि की लपटों में लोग अपने सब राग-द्वेष जला डालते हैं, यह त्यौहार मनुष्य को रंगों से जितना रंगता है उससे ज़्यादा दिलों को रंगों से सराबोर करके एक कर देता है।

पंकज जी की कहानियों में सबसे बड़ी खूबी किरदारों द्वारा बोली गई मालवी बोली की मिठास है, मालवा की माटी की सुगंध है इन कहानियों में और इन दोनों का सम्मिश्रण कहानियों को और समृद्धशाली बना गया है। मालवी बोली सुनने में जितनी मधुर लगती है पढ़ने में और अच्छी लगी है। पंकज जी को इसके लिए बधाई देती हूँ।

पहली कहानी 'बागड़' दो बहनों कलूड़ी और सकूड़ी की मार्मिक कहानी है। दोनों बहनों की आपसी नोक-झौंक दिल को छूती है दिल की साफ़ कलूड़ी और उसकी बहन सकूड़ी दोनों पास-पास रहती हैं दोनों के घर के बीच कोई बागड़ नहीं है। एक बकरी के माध्यम से कहानी बुनी गई है। कलूड़ी की बकरी है जो सकूड़ी की साग-सब्जी खा जाती है। कलूड़ी और सकूड़ी की बातचीत कहीं पर एक अनूठा आनंद देती है तो कहीं पर उनकी लड़ना- रूठना और मनाना भी निराले अंदाज़ का है। कलूड़ी कहती है "इधर आ के बात करे नी ..उधर बैठी बैठी कईं कह रई है" और फिर तमतमा कर सकूड़ी का कहना कि "देख कलूड़ी थारे से ये बकरा-बकरी संभालने की ने बनी है, तो पाल क्यूँ लेवे है ?"इसके जवाब में शब्दों की सुन्दरता मालवी बोली में देखते ही बनती है। सकूड़ी के हिस्से का क्रोध पुन: कढ़ाई के पैंदे पर लगाते हुए कलूड़ी कहती है "दरखास्त दूँ थारे को कि पटलन माँ म्हारे बकरी पालणी है.... पालूँ कि नी पालूँ ..? तू तो थारी बागड़ ठीक करवा ले, काँटा लगवा ले, फिर खूब लगा ककड़ी, टमाटर ने के भटा।" यह पढ़ते ही पाठक के मुँह पर मुस्कान आ जाती है यह पंकज जी की लेखनी का कमाल है।

बकरी का सब्ज़ी को खा जाना और गुस्से में बागड़ का लग जाना दो बहनों के दिलों के बीच

भी एक बागड़ लगा जाता है। यह बागड़ टूटती भी है तो होली के दिन। न सिर्फ दिल की बागड़ टूटती है बल्कि लकड़ियों की लगी बागड़ भी टूट जाती है। होली के लिए लकड़ियाँ माँगने आये लड़कों से सकूड़ी कहती है "ऐ छोरा होन पीछे आ जाओ लकड़ी चइये तो।" उछलते-कूदते लड़कों की टोली पूरी बागड़ होलिका दहन के लिए ले जाते हैं। कहानी के अंत में लेखक का कथन "बागड़ टूटती जा रही थी, कलूड़ी का आँगन धीरे-धीरे फिर सकूड़ी के आँगन में समाता जा रहा था। कलूड़ी की बकरी ने मुँह उठाकर देखा बागड़ के उस तरफ हरे-हरे पौधे लहलहा रहे थे।" एक आत्मिक सुकून प्रदान करता है।

"लाड़ी माँ" वृद्धा कृष्णा की कहानी है जो दो साल से होली पर घर नहीं आये बच्चों का इंतज़ार करते थक चुकी है, उसका होली मनाने का उत्साह खत्म होने को है। "कईं मालूम आएगा कि नी आएगा,अबी तो कईं खबर नी आई। दो बार से तो असो हुई रयो है कि होली के टेम पे ही छोरा-छोरी होन की परीक्सा पड़ जाए है अब या बार की तो म्हारे नी मालूम।" होली के समय ही पड़ने वाली बोर्ड की परीक्षाओं का दर्द बयाँ कर रही है।

होली पर बच्चे और किशोर बदमाशी भी करते हैं। होलिका दहन के लिए लोगों के घरों से लकड़ी- कंडे चुरा ले जाते हैं। ये शैतानियाँ सब समझते हैं और बच्चों की निगरानी भी करते हैं। कहानी में उसका वर्णन वह भी मालवी बोली में एक अलग आनंद देता है "बाहरे नी सोऊँ तो कईं करूँ इनंग पूरे घर में म्हारे कंडे थुबे पड़े है, ने लकड़ी होन भी पड़ी हैं। छोरा होन के होली की मस्ती चढ़ री है, पता चले छोरा होन सगरा कंडा ने लकड़ी सब उठा के होली में डाल दे। फिर लड़ा करो बाद में घर-घर जाके, ओसे तो ये ही अच्छो है कि थोड़ी रखवाली ही कर लो।"

"छोरा होन अई रया है" बच्चों के होली पर आने भर की खबर सुनते ही वृद्धा के शरीर में जान आ जाती है। सबसे पहली चिंता होती है होली के पकवान बनाने की जो वह बना नहीं पाई है। मदद के लिए पड़ोसी को भी पुकारती है और ठाकुर को सामान लेने भी भेजती है "अब म्हारो मूँडो कंई देख रया हो, झटपट चला जाओ म्हारे भौत काम है, अबी कईं भी नी बन्यो है। जई के ले आओ नी तो बंद कर देगा दुकान।" फिर आँगन में आकर कुसुम को आवाज़ देकर कहना "म्हारे तो कईं भी संपट नी पड़ री है कईं करूँ, झट आजा री।"मालवी भाषा की मिश्री सी घोलते हैं।

'रंग दोस्ती के" कहानी में अब्बा जी का कहना कि "किताबें किसी जात या मजहब की नहीं होतीं वो तो इंसानियत के लिए ही होती हैं। प्रेरणादायक है। साथ ही बच्चों को समझाइश देते हुए कहना कि "तुम लोग टी वी वाली पीढ़ी के हो, हम लोग किताबों वाली। तुम्हारी मजबूरी है कि जो दिखाया जा रहा है उसी को देखना है। हम अपनी पसंद से तय करते थे कि हमें क्या पढ़ना है।" सार्थक है।

पंकज सुबीर की एक विशेषता और है आपका प्रकृति का वर्णन, ऋतुओं का वर्णन। इसमें आपका गद्य भी पद्य नज़र आने लगता है। एक उदाहरण ...पीली ज़र्द चाँदनी पेड़ों पर, पहाड़ों पर, हर तरफ बरस रही है। ये भी अपने ही तरह की एक होली है चंद्रमा और पृथ्वी की होली। इसी प्रकार ग्रीष्म और शिशिर का मिलन स्थल फागुन। बूढ़ी होती शिशिर सद्यजन्मा ग्रीष्म के हाथों में प्रकृति का कार्यभार देकर विदा हो रही है और प्रकृति नवान्तुक ग्रीष्म के स्वागत में उल्लासित होकर फागुन पर्व मना रही है। हवा में बौराए आमों, रसियाते महुए की गंध घुली है तो खेतों में दूर तक बासंती सरसों की चूनर लहरा रही है और जंगलों में तो मानों आग ही दहक रही है।

कहानियों में रंग तो हैं ही, रंगों से सराबोर प्रकृति भी है, खेत भी हैं, जंगल भी और इंसान तो हैं ही सम्पूर्ण यादों के रंगों से रंगे हुए। होली के पकवानों की महक है, गुझियों की मिठास है तो मठरियों की, कुरकुराहट भी। आपने अपनी कहानियों के माध्यम से संदेश दिया है कि होली सिर्फ रंग से ही नहीं मनाई जाती इसमें बनाये जाने वाले पकवान भी अपने स्वाद से एक-दूसरे को जोड़ते हैं। घर-घर से बुलौआ आता है कि आज मेरे घर आजाना गुझिया भरनी हैं, पपड़ियाँ बनानी हैं या मठरियाँ बनवानी हैं। सब इसी बहाने गप्पे मारते हुए, फाग गाते हुए तीज-त्यौहार की स्वादिष्ट चीजें बना डालते हैं, ये पकवान एक-दूजे के घरों में भेजे भी जाते हैं जो प्यार और भाईचारा बढ़ाते हैं। पंकज जी ने इसका सुंदर वर्णन किया है।

होली के रंगों का भी वास्तविक वर्णन किया है "हमारे समय की होली आज जैसी थोड़े ही होती थी। पक्के रंग तो होते ही नहीं थ। कच्चे रंगों और गुलाल की होती थी होली। पलाश के फूलों को उबालकर उसका केसरिया रंग बनाते थे, फाग गाते थे। लड़कियाँ ढोलक, मंजीरे लेकर बैठती थीं। आदमी लोग चौपाल पर बैठकर फाग गाते थ। कहानियों में हर तरफ फागुनी बयार का एक झौंका है जो सबको रंगों से सराबोर कर रहा ह। जीवन को जीना सिखा रहा है, रंगों में डूब कर ग़मों से बाहर आना सिखा रहा है। बता रहा है कि खुशियाँ बड़ी-बड़ी चीज़ों में नहीं छोटी-छोटी बातों में होती हैं उन बातों में जिन्हें हम किनारे रखकर दुखी होते रहते हैं।

ये कहानियाँ हैं खुशियों के गीतों को गुनगुनाती हुई, इनमें दुःख हैं भी तो उनका अंत सुख से ही हुआ है। गम यदि ज़िंदगी में समाये भी हैं तो उनको धोकर होली के रंगों ने खुशियों के रंग चढ़ा दिए हैं। जहाँ निराशा के बादल यदि छाए भी हैं तो आशा के रंग उनपर चढ़ भी गए हैं। कहते हैं कि स्मृतियाँ इंसान को अकेला देखकर ही दस्तक देती हैं। जब तक वह परिवार और दोस्तों के साथ है तब तक स्मृतियाँ उसे परेशान नहीं करतीं लेकिन अकेला पाते ही सब बिन बुलाये मेहमान की तरह आ जाती हैं, उसे घेर लेती हैं। उम्र की हर दहलीज़ पर होली के रंग अपने अलग रूप में सुहावने लगते हैं। होली की धुलेंडी, होली का हड़बोंग, होलिका दहन, घरों में बनते पकवानों से उठती घी की सौंधी खुशबु, फगुआया फागुन, ढोलक-मंजीरे सब समाये हुए हैं पंकज सुबीर जी की इन कहानियों में

पंकज सुबीर जी बधाई देती हूँ, उम्मीदों को जगाने वाली, स्नेह से लवरेज कहानियों के लिए। होली के ये रंग सबके जीवन में हमेशा यूँ ही चमकते रहें।

000

पुस्तक समीक्षा

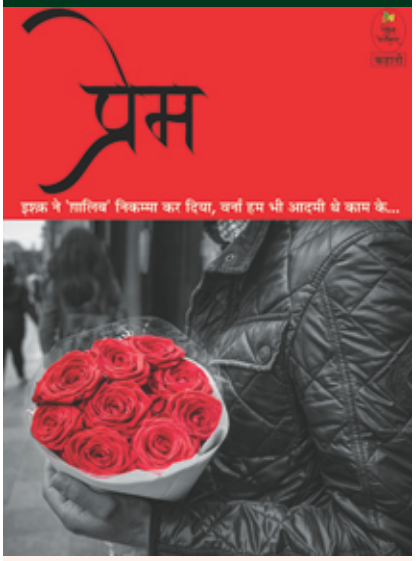

प्रेम

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : पारुल सिंह

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

पारुल सिंह
डब्ल्यू 903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, 201301, यूपी
मोबाइल – 9871761845

'प्रेम' नाम से आए कहानी संकलन में शामिल पंकज सुबीर की ये कहानियाँ और कुछ हो ना हो प्रेम ज़रूर हैं। इन कहानियों में क़स्बाई अल्हड़ता है। किसी गोरी का शर्माना है किसी बाँके का आई लव यू छोड़ बाकी सब कुछ कह जाना है। जब भी लेखन में हम प्रेम को ढूँढ़ने जाएँगे तो सरल से सरलतम भावों में लिखे शब्द ही हमें पसंद आएँगे। जब हम प्रेम को लिखना चाहेंगे तब हमें सरल और सीधी भाषा की ही आवश्यकता होगी। प्रेम को लिखने के लिए भाषा, रस का प्रयोग अनुचित या वर्जित नहीं है। उसका अलग आनन्द है। मगर प्रेम की अल्हड़ता, अंधापन, इठलाना और खासकर उस प्रेम की मासूमियत जो इन कहानियों में है, वह देखनी हो तो हमें इसी तरह के लेखन की तरफ जाना पड़ेगा। गुलशन नन्दा हैं, थे और रहेंगे। और न भी रहें तो, किसी व्यक्ति को केवल इतनी ही फ़िक्र करनी चाहिए की अपनी सोसायटी को वह क्या दे पा रहा है। उसके मरने के बाद की ज़िम्मेदारी के लिये अगली पीढ़ी पर विश्वास करना ही समझदारी है। गुलशन नन्दा से पढ़ने की शुरूआत कर स्थापित लेखक बन जाने वाले लेखक जब ये कहते हैं कि पढ़ने की शुरूआत तो हमने भी गुलशन नन्दा से ही कि थी। तो यह 'भी' गुलशन नन्दा और उनके लेखन पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न लगाता है। स्वयं पंकज सुबीर भी ऐसा ही कहते हैं। मगर कोरोना के इस समय ने हमसे माँग की है कि हम स्वयं के लिए भी और समाज के लिए भी लेस जजमेंटल हो जाएँ। दायरों को समेट दें, खाँचों को तोड़ दें, और परिभाषाओं को अलग कर नई सोच की दी हुई नई परिभाषाओं पर विचार करें। बदलाव को स्वीकारें और आलोचनाओं से पहले स्वयं को वैचारिक व तकनीकी स्तर पर आज से दस साल आगे देखें। क्योंकि हम दस से भी ज़्यादा साल आगे आ चुके हैं वास्तव में, इस कोरोना के कारण। ये स्वीकार न कर पाने वाले किसी भी क्षेत्र से हों पीछे छूट जाएँगे। ये जड़ होने का नहीं फ्लोटिंग प्लांट बनने का समय है।

बहरहाल इस बोझिल समय मे 'प्रेम' जैसी किताब का आना। जून के बेबादल आसमान में सावन की साँवली बदली का घिर आना ही तो है। इस घोर निराशावादी समय में साजन की चिट्ठी का आ जाना ही तो है। इस अनिश्चितता में सावन की झड़ियों की निरंतरता ही तो है। क्या कोई और समय सही हो सकता था कि जब इस किताब की कहानी 'काश' का नायक आपसे मिलने चला आये और बताए कि केमेस्ट्री लेब में वह और क्या-क्या था जो वह इतने साल अपनी नायिका विन्नी से कहना चाहता रहा, और कह नहीं पाया।

ये उस नॉस्टैल्जिक समय की कहानियाँ हैं जब प्रेम किया जाता था पर कहा नहीं जाता था। किसी और की कोई रोक टोक नहीं थी। असल में उस दौर की उस नौजवान पीढ़ी पर ओढ़े और उढ़ाये गए आदर्शों का बोझ था। ये ट्रांजिशन और ट्रांसफॉर्मेशन के दौर से गुज़र रहे उन वयस्कों

का दौर था जिनकी पहली और बाद वाली पीढ़ी अपने आदर्शों के साथ संतुलित थी। एक केवल ये बेचारे ही धोबी के .... बन कर रह गए थे। निरन्तर तुला में तुलती रहने वाली इस पीढ़ी ने एक ही कमाल किया कि संतुलन नहीं खोया। कहीं कहीं से ख़ुद ईरेज हो गए, पर उस संक्रांति काल की सुरंग से सकुशल निकल आये।

तभी तो पहली ही कहानी 'रंगून क्रीपर' का नायक अपने प्रेम को दिशा देते समय केवल अपनी समझदारी का प्रयोग करता है। प्रेम को बदले समय के सापेक्ष उचित दिशा देने के निर्णय में वह नायिका से पूछने की आवश्यकता ही नही समझता। क्योंकि उस दौर के अनुसार वह जानता था उसकी नायिका के लिए क्या सही है।

सुप्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार मनीषा कुलश्रेष्ठ जी कहती हैं कि अपनी आख़िरी रचना में ही उन्हें अपनी अगली रचना के बीज सूत्र मिल जाते हैं। क्योंकि मैंने इन कहानियों के बाद आये पंकज सुबीर के चारों कहानी संग्रह पढ़े हैं, तो मैं कह सकती हूँ कि उनकी बाद की कहानियों में इन कहानियों से भी कुछ झीलें, गुलमोहर, रंगून क्रीपर और पात्र चले आए हैं, जो एक विस्तृत और मुख्य पात्र के रूप में अपनी कहानी कहते हैं। ये झीलें और गुलमोहर ख़ुद की प्रतीकात्मकता के दूर तक फैले पठार के रूप में उनकी बाद कि कहानियों में अपनी जगह बनाते हैं।

उनकी बाद की दो कहानियाँ, जो मुझे बहुत पसन्द है, 'घुग्घू' और 'कितने घायल हैं कितने बिस्मिल हैं' के पात्र भी इन्हीं कहानियों में अपनी प्रयोगात्मकता के शैशवकाल को जीते हुए देखे जा सकते हैं। देह की बात न्यूनतम स्तर पर कहने के बावजूद इन कहानियों के पात्र अपने लेखक के तेवरों के ओर पहले ही इंगित मुद्रा में थे। जो बाद की कहानियों में विवेचनीय दृष्टि और भाषा की पकड़ से गम्भीर मुद्दों के साथ मुखरित होते हैं। आज इन्हीं कहानियों को दुबारा लिखना हो तो पंकज जी भी जानते हैं कि प्रयोग व लेखकीय आत्मविश्वास और बेबाकी के आ जाने के चलते इन कहानियों के अंत बदल जाएँगे और पात्रों का सशक्तिकरण हो जाएगा। पर यह ही तो नहीं चाहिए। इन कहानियों की अल्हड़ता और गाँव की गोरी सी मासूम चपलता ही तो है, वह जो अहसासों के एक के बाद एक रेशमी पर्दे को हटाती उघाड़ती, पार पाने की कोशिश करती पाठक की चेतनता इस कच्चेपन को जीती है, प्रफुल्लित होती है।

उनके यात्रा संस्मरण 'यायावर हैं,आवारा हैं,बंजारे हैं' का शीर्षक उनकी कहानी 'मेरा गीत अमर कर दो' में उल्लेखित एक गीत से लिया गया है। सम्भवत: यह गीत भी पंकज सुबीर ने स्वयं लिखा हो। प्रेम मनुष्य को वासनाविहीन करता है, प्रेम में प्रेमी यह ही तो चाहता है कि वो कुछ नहीं चाहता। प्रेमी को अपने प्रीतम के दर्शन सुख के अलावा कोई दरकार नहीं रहती। दरकार सिमट जाती हैं तो शिकायतें नहीं रहती। प्रेम में डूबे व्यक्ति को कुछ बुरा नहीं लगता, उसे हर शख्स प्यारा नज़र आता है। प्रेम में हो तो शीशे में प्रियतम का चेहरा नज़र आए तो तुम प्रेम में हो, प्रेम में हो तो तुम्हें देख कर लोगों को तुम्हारा प्रियतम याद आ जाए, तो तुम प्रेम में हो। प्रेम सामने वाले से प्रेम की परिभाषाओं पर खरा उतरने की उम्मीद करना तो बिल्कुल नहीं है, ऐसा व्यक्ति कभी प्रेमी नहीं हो सकता, वह प्रेम के नाम का प्रयोग करना वाला धूर्त होता है। ऐसे प्रेमियों की भी कमी नहीं, जिन्हें प्रेम की सब परिभाषाएँ रटी रहती हैं परंतु दूसरों के प्रयोग हेतु।

प्रेम की परिभाषाओं को जी कर नई नई परिभाषाएँ निश्छल प्रेमी लाते रहे हैं और लाते रहेंगे। धूर्तता प्रेम के सामने नहीं टिकती। संसार में धन, सुंदरता, वाक् चातुर्य, स्वास्थ्य, बुद्धि एक से बढ़कर एक नियामतें हैं। जिनको हर कोई पाना चाहता है और इस सब में कोई बुराई भी नहीं है लेकिन धन मनुष्य को घमंडी बनाता है, सुंदरता हमें विचलित करती है, बल और स्वास्थ्य अत्याचारी और क्रूर बनाते हैं, विद्वत्ता अहंकारी बनाती है, बुद्धि गुमराह करती है और वाक्चातुर्य हमें झूठा करता है; लेकिन इन सब में अगर प्रेम मिल जाए तो यह सारे के सारे गुण लाभदायक हो जाते हैं क्योंकि प्रेम लेना नहीं जानता सिर्फ देना जानता है, प्रेम निस्वार्थ होता है। तभी तो इस संग्रह की कहानी 'मेरा गीत अमर कर दो' बस देने के बात कहती है। प्रिया को ख़ुश देखना ही आख़िरी साँस तक लक्ष्य है।

भाषा, शैली और शिल्प की बात करें तो, इस परिप्रेक्ष्य में ये पंकज सुबीर के एक केटरपिलर के तितली बनने की दास्ताँ हैं। भाषा तो उनकी तब भी समृद्ध ही थी। उनका शिल्प कहीं-कहीं अपने तेवर ज़ाहिर भी कर रहा है। कहानी 'एक रात' और 'मनी प्लांट' में उनके शिल्प की ये कलाकारी देखी जा सकती है। जहाँ दूसरा पात्र केवल खनकती चूड़ियाँ ही हैं। मनी प्लान्ट तो आ हा, होटल के कमरे के दरवाज़े के बंद होने और खुलने, और कितनी बार बंद होने और खुलने ने जो शिल्प कथा में गूंथा गया है वह ही कथा रस है।

इन कहानियों में ग़ज़लों और गीतों का बहुत प्रयोग किया गया है। यह एक जोखिम भरी शैली है जिसका रिस्क पंकज सुबीर ने ख़ूब उठाया और इस में सफल भी हुए। होता क्या है कि गानों के पंक्तियों से कथा का अनकहा कहना एक कला है, इसमें सुनार सी बारीकी चाहिए लेखक की लेखनी में, और यह बारीकी पंकज सुबीर के पास है।

आज के दौर में लेखकों द्वारा असल में लेखन को बहुत सारी कसौटियों पर कसा जाने लगा है। लेकिन पाठक आपसे बहुत सारी योग्यताओं की माँग नहीं करता है, वह तो बस प्रेम रस चाहता है, वह प्रेम उसे भाषा रस में भी मिलता है, वह प्रेम उसे रचना की अल्हड़ता में भी मिलता है, वह प्रेम उसे एक साधारण शब्दों में भी मिलता है।

हमें समझना होगा कि हर लेखन के पाठक होते हैं या यूँ कह लें कि हर पाठक के जीवन में अलग-अलग तरह के लेखन को पढ़ने का समय आता है। कभी हम भाषा रस में डूब कर पढ़ना चाहते हैं, कभी हम यूँ ही ट्रेन के ऊपर वाली बर्थ पर लेट कर सीधी सपाट बातें कह देने वाले लेखन को पढ़ना चाहते हैं। दोनों में से कोई कम नहीं है।

किताब की भूमिका में पंकज सुबीर अपनी लिखी इन कहानियों को अपने अंदर जवानी

और मासूम लेखनी को अपने उन नाज़ुक से एहसासों को लगभग ख़ारिज करते नज़र आते हैं। लेकिन भीतर उन्हें भी मालूम है के प्रेम को लिखने और पढ़ने के लिए किसी खास तरह की शैली या क्लिष्ट भाषा की ज़रूरत नहीं होती और प्रेम इस तरह की कहानियों में भी महसूस किया जा सकता है। उनका यह ख़ारिज करने वाला व्यवहार किसी एक कारण से है, क्योंकि आज वह पंकज सुबीर हो गए हैं, लेकिन जब वह पंकज से मिलना चाहेंगे, तब तब उन्हें इन कहानियों की अल्हड़ गलियों में लौटना पड़ेगा।

आज पंकज सुबीर होकर वह कुछ भी कहें लेकिन यह कहानियाँ इतनी भी अनगढ़ नहीं है। इन कहानियों के संदर्भ में बात करते हुए अगर हम इन्हें जानना चाहें और इनके प्रेम को जानना चाहें, तो हमें सबसे पहले समझना होगा इनके लेखक को। इनके लेखक पंकज सुबीर को।

अल्हड़ विनम्रता वाला एक नौजवान, कुछ गानों, कुछ पीले बैंगनी फूलों, कुछ संगीत के सहारे अपनी एक अलग दुनिया को इस दुनिया के समानांतर जीता हुआ एक बौद्धिक नौजवान जो 90 के आख़िरी और 2000 के पहले दशक के शुरू के कुछ सालों में अपने शब्दों को इन कहानियों के ज़रिए कागज़ पर उतारता था।

पंकज जो रंगून क्रीपर और लता के गानों और ख़य्याम के संगीत की पोटली बगल में दबाए इस गुलमोहर से उस गुलमोहर जीवन में आने वाले नए और पुराने गुरुओं के साथ-साथ अपनी बौद्धिकता से इस दुनिया को समझने की कोशिश में रह होगा। तो बस इतना सा ही रहा होगा लेखक पंकज तो। इस छोटी सी परिभाषा से हम हज़ारों हज़ार आयाम पंकज सुबीर के व्यक्तित्व में निकाल सकते हैं। अपने लेखक को समझना बहुत ज़रूरी है हर पाठक के लिए, इसीलिए प्रेम में पगी इन कहानियों को पढ़कर हम पंकज से मिलेंगे। और सालों, महीनों के शोध और अध्ययन से लिखने वाले लेखक को, गंभीर लेखक को, गंभीर सोच रखने वाले सामाजिक कार्यकर्ता को, जो अपनी लेखनी से समाज सेवा कर रहा है, उससे मिलने के लिए हमें पंकज सुबीर के उपन्यासों वाले लेखक से मिलना पड़ेगा।

इन कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जो मैंने पहले पढ़ी थीं लेकिन क्योंकि तब इन्हें एक दायरे में नहीं बांधा गया था कि आरंभिक दौर की कहानियाँ है। तो मेरी और से इनकी परिपक्वता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं था आरंभिक दौर की कहानियाँ कहे जाने से इन कहानियों को पढ़ते हुए अनायास ही पाठक इनकी परिपक्वता और शब्दों को तोलने लगता है लेकिन ऐसा कुछ अनगढ़ वहाँ है नहीं।

यह कहानियाँ क्योंकि प्रेम में बसी हुई है तो प्रेम और गुलमोहर और रंगून क्रीपर से झड़ते हुए इस प्रेम के अलावा इन कहानियों में कुछ नहीं है। हमारे लेखकों को समझना होगा आरंभिक दौर की रचनाएँ के लिए हर वक्त अपने लेखन को कटघरे में खड़ा रखना भी सही नहीं है। लेखन को सँवारते रहना अलग बात है। जब भी पंकज सुबीर के लेखन में प्रेम को ढूँढ़ना होगा, तो वापस इसलिए इन्हीं कहानियों के पास जाना होगा। जिसका नाम 'प्रेम' है, ऐसी किताब को उठाना होगा। यह प्रेम उनके उपन्यासों में नहीं मिलेगा, वहाँ संघर्षों वाला प्रेम है, हालाँकि वो ही प्रेम का रूहानी रूप है नेक्स्ट लेवल है। क्योंकि वह पंकज सुबीर ने लिखा है।

आइए इन प्रेम भरी कहानियों के साथ जानते हैं प्रेम को कुछ और। जाहिदों की नमाज़ सजदा करने से अदा होती है और आशिकों की नमाज़ अपने आपको भूल जाने से। जाहिदों का वज्जु हाथ पैर और मुँह धोने से होता है तो आशिक का वजू दुनिया से हाथ धो लेने से होता है। यदि हम किसी से प्रेम करते हैं तो नफ़रत पूरी दुनिया में किसी से भी कर ही नहीं सकते। और इन कहानियों का नायक और कुछ जानता हो न जानता हो, प्रेम करना ज़रूर जानता है। जब वह प्रेम करता है तो वह न स्वयं को सँभालता है बल्कि अपनी प्रेमिका को भी सँभालता है। वह अल्हड़ है, वह क़स्बाई है लेकिन वह समझदार ज़रूर है। प्रेम में बेपरवाह भी है लेकिन शादी के बाद मिली हुई प्रेमिका को वह उसके गंतव्य तक काली अँधेरी बरसती रात में उसके घर तक पहुँचाना भी जानता है, वह कम पढ़ा-लिखा होकर अपनी डॉक्टर प्रेमिका को अपनी हद बता देता है। वह समझ जाता है कि उसकी प्रेमिका के हक में इस प्रेम का प्रदर्शन और इसे किसी परिणीति तक पहुँचाना उचित नहीं है। इन कहानियों का प्रेम एक वृद्ध का प्रेम भी है, जो समाज के विरुद्ध धर्म से ऊपर उठकर अपनी प्रेमिका को अपनाता है, और उसके धुर धाम चले जाने के बाद झील किनारे सुबह की हवा में उसे ढूँढ़ता है।

इश्क़ क्या शै है किसी कामिल से पूछा चाहिये

किस तरह जाता है दिल, बेदिल से पूछा चाहिये

प्रेम ना तो कोई रोग होता है ना बनावट ना बेजान होता है। सूफ़ी फ़कीरों ने इश्क़ ए हक़ीक़ी के लिए इश्क़ मजाज़ी का होना ज़रूरी माना है। मजाज़ी इश्क की सीढ़ियों से ही हक़ीक़ी तक पहुँचा जाता है। और हक़ीक़ी इश्क़ के लिए इसकी सीढ़ियाँ चढ़ना ज़रूरी है। खूबसूरत दुनिया से प्रेम करने वाला कभी किसी से नफरत कर ही नहीं सकता है।

जब आप प्रेम में हैं, तो आपको शीशे में महबूब नज़र आना चाहिए अपना चेहरा नहीं। यदि आप प्रेम में हैं, तो लोगों को आपको देखते ही आपका महबूब याद आ जाना चाहिए। आपके चेहरे में आपका महबूब झलकता दिखना चाहिए। यदि ऐसा है, तो हाँ आप प्रेम में हैं। और प्रेम में पड़े रहिए इससे खूबसूरत कुछ भी नहीं है। और पड़े-पड़े इन कहानियों को पढ़िए। आप करवटें लेंगे और मुस्कुराएँगे क्योंकि बहुत गंभीर साहित्य में ठंडी हवा का झोंका यह किताब 'प्रेम' है। लेखक के भूमिका में लिखने के बावजूद मैं पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कहती हूँ कि इस किताब को और इन कहानियों को पढ़िए आप प्रेम में डूब जाएँगे और मुझे धन्यवाद देंगे।

और हाँ लेखक से यह ज़रूर कहना चाहूँगी कि किताब की भूमिका लिखना ग़लत नहीं होता। भावुक होकर लिखना लिजलिजा नहीं होता।

000

शिवना प्रकाशन जुलाई 2020 सेट की पुस्तकें

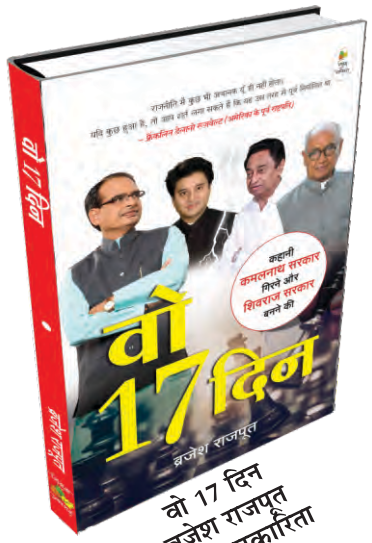

वो 17 दिन
ब्रजेश राजपूत
चुनाव पत्रकारिता

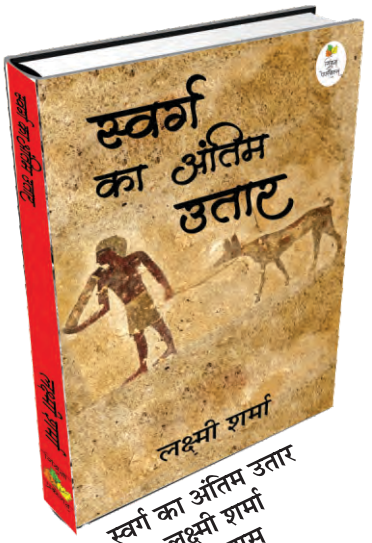

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

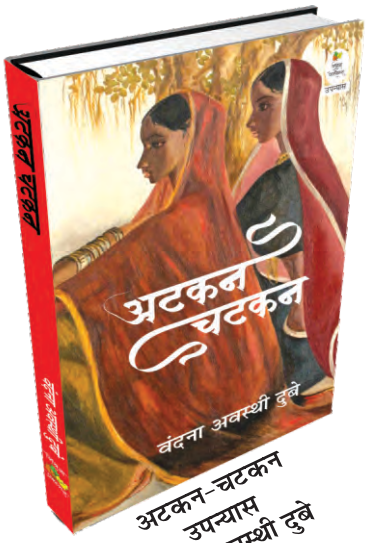

अटकन-चटकन
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

अल्पघात
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

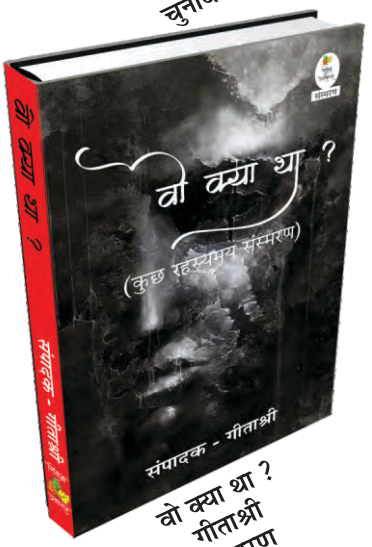

वो क्या था ?
गीताश्री
संस्मरण

साक्षात्कारों के आईने में
रेनू यादव
साक्षात्कार

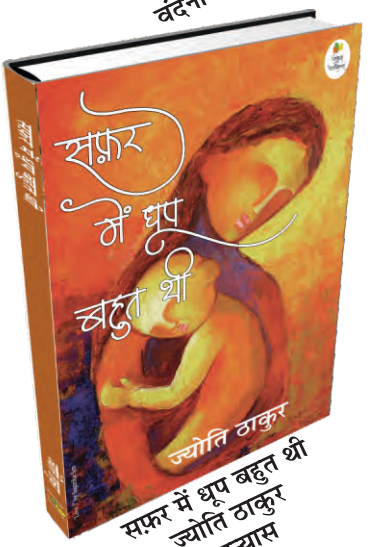

सफ़र में धूप बहुत थी
ज्योति ठाकुर
उपन्यास

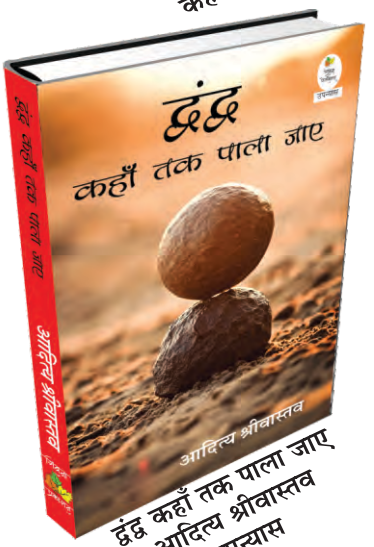

द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए
आदित्य श्रीवास्तव
उपन्यास

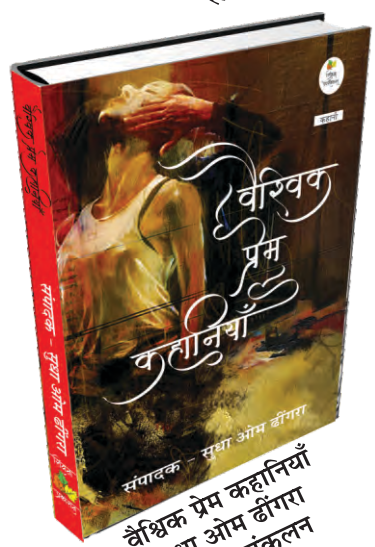

वैश्विक प्रेम कहानियाँ
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

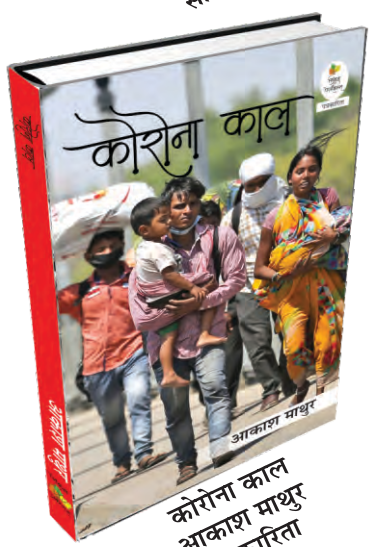

कोरोना काल
आकाश माथुर
पत्रकारिता

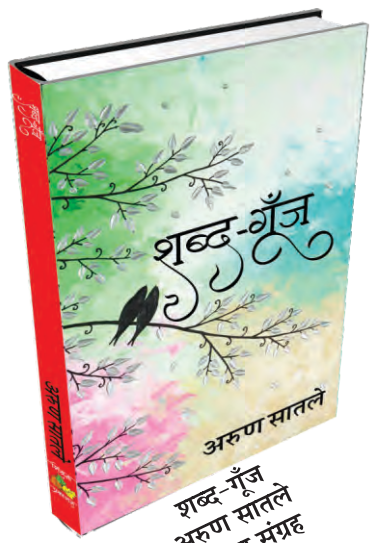

शब्द-गूँज
अरुण सातले
कविता संग्रह

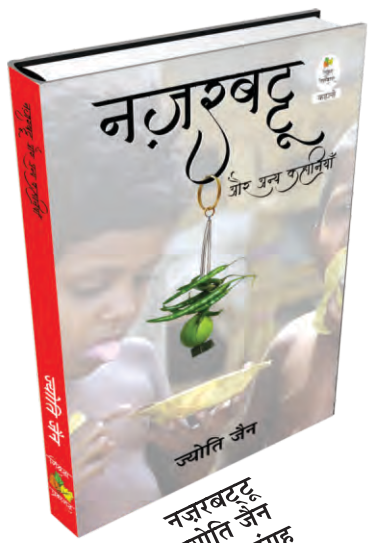

नज़रबट्टू
ज्योति जैन
कहानी संग्रह

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● October-December 2020 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

कम्प्यूटर सीखने से बढ़ जाते हैं नौकरी के अ
छात्राएं अपना 100 प्रतिशत दें: अखिलेश रा

निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र

कोरोना महामारी के कारण दो माह देर से प्रारंभ हुआ सत्र

को निशुल्क दिया जाएगा कंप्यूटर का प्रशिक्ष

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

भोपाल डिविज़न की अजाक पुलिस अधीक्षक मध्य प्रदेश शासन की वरिष्ठ पुलिस अधिकारी सुश्री ज्योति ठाकुर ने सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को कॅरियर गाइडेंस प्रदान किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।